महापुरुषों की खोज में

सात दशको की साहित्यिक, सास्कृतिक एव क्रान्तिकारी
गतिविधियो का दस्तावेज

महापुरुषों की खोज में

(आत्म-चरित)

बनारसी दास चतुर्वेदी

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक 428

महापुरुषों की खोज में
(आत्म चरित)
बनारसी दास चतुर्वेदी

प्रथम संस्करण 1983

मूल्य · 55 रुपये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/45-47, कनॉट प्लेस
नयी दिल्ली-110001

मुद्रक
शान प्रिंटर्स
शाहदरा, दिल्ली-110032

आवरण शिल्पी कुमारिल स्वामी

MAHAPURUSHON KI KHOJ MEIN Autobiography by Banarasi Das Chaturvedi
Published by Bharatiya Jnanpith, B/45-47, Connaught Place, New Delhi-110001.
Printed at Shan Printers, Shahdara Delhi-110032 First Edn, 1983 Rs 55.00

भूमिका

आत्म-चरित लिखने का मेरा कोई विचार नही था और जब कभी मेरे सहयोगियो ने यह प्रस्ताव मेरे सामने रखा, मैंने उसे मज़ाक मे ही उडा दिया। सर्वप्रथम कविवर माखनलाल चतुर्वेदी ने यह सुझाव दिया था तब मैंने उत्तर दिया था, "मेरे आत्म-चरित के छपने के बाद हिन्दी जगत् मे एक ऊधम-सा मच जायेगा। लोग कहेगे, जिसे हमने भलामानस समझा था वह बडा धूर्त निकला। चलते-चलते हम लोगो को चकमा दे गया।" इस पर माखनलाल जी ने कहा, "जनाब! आप कोई नया काम तो नही करेंगे। आपसे बहुत वर्ष पहले मध्य प्रदेश मे एक ठाकुर साहब ने यही करिश्मा कर दिखाया था। वह ज़िन्दगी-भर लोगो से लडते रहे, मार-पिटाई और मुकदमेबाज़ी की भी नौबत आ गयी। अन्त मे, उन्होने एक नाटक किया। मरणासन्न होने पर उन्होने अपने सभी विरोधियो को घर पर बुलाया और बडे दीन भाव से बोले, 'डाक्टरों और वैद्यो ने मेरे जीवन की आशा बिल्कुल ही छोड दी है और अब मैं जा रहा हूँ।' आगन्तुक लोग बोले, 'ठाकुर साहब! जो हो गया, सो हो गया, हम लोग उसे भूल चुके हैं। आप कोई पछतावा न कीजिये। इस पर ठाकुर साहब ने कहा, 'मेरे मन को तभी सन्तोष होगा, जब आप लोग एक काम करे।' लोगो ने पूछा, 'क्या काम ?' तब ठाकुर साहब बोले, 'आप लोग एक कील लाइये और उसे मेरे कण्ठ पर रखकर धीरे से दबाते हुए छू दीजिये। तब मैं समझूंगा कि मेरा प्रायश्चित हो गया।' सब लोग ठाकुर की अन्तिम इच्छानुसार ऐसा ही करने लगे। एक उत्साही व्यक्ति ने जरा जोर से कील ठोक दी। उसमे तत्काल ठाकुर साहब का देहान्त हो गया। उन सब पर मुकदमा चला और उन सबको छ-छ महीने की जेल हुई। जेल मे दुखित होकर वे सब कह रहे थे, 'ठाकुर अन्तिम चोट भी कर गया।' "

स्वर्गीय भाई हरिशकर जी शर्मा ने भी आत्म-चरित के लिए आग्रह किया था। उसके जवाब मे मैंने कहा था, "यदि मैंने अपने जीवन का सच्चा-सच्चा वृत्तान्त लिखा तो मेरे अनाचारो और दुराचारो के किस्से पढ़कर लोक-हृदय को धक्का लगेगा।" इस पर हरिशकर जी ने कहा, "हम तो यह चाहते है कि आप अपने साहित्यिक कार्यों का वर्णन करें। ऊल-जलूल विषयो पर न लिखे।"

इन दोनो बन्धुओ के सिवाय अन्य मित्रो और परिचितो ने भी यही आग्रह मुझसे किया था। 'नवनीत' के भूतपूर्व यशस्वी सम्पादक श्री नारायणदत्त जी की सेवा मे मैंने एक लेख 'महापुरुषो की खोज मे' भेजा था। उन्होने लौटती डाक से ओटावा (कनेडा) के विश्वविख्यात फोटोग्राफर यूसुफ कार्श की एक पुस्तक ही भेज दी जिसमे ससार के प्रसिद्ध पुरुषो के फोटोग्राफ थे। पुस्तक का नाम था, 'इन सर्च ऑफ़ ग्रेट मैन'। पुस्तक मुझे बहुत पसन्द आयी। यद्यपि फोटोग्राफर साहब की कीर्ति से मैं भली-भाँति परिचित था तथापि

नामो के इस टकराव से मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने इसी नाम से एक लेखमाला आरम्भ कर दी और बोलकर कई लेख लिखा भी दिये थे। उनमे से कितने ही मेरी नब्बेवी वर्षगाँठ पर नरेशचन्द्र चतुर्वेदी और श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी के सहयोग से पुस्तकाकार छप भी गये।

मैं कोई महापुरुष नही और न मैं यह आशा ही रखता हूँ कि इस पुस्तक के पाठक मुझसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे। हाँ, वे मेरी त्रुटियो से अवश्य ही सीख सकते है। सत्तर-इकहत्तर वर्षों से निरन्तर लिखते रहने के कारण मेरा नाम अवश्य ही अत्यन्त विज्ञापित हो चुका है और उससे लोगो मे भ्रम उत्पन्न हो गया है कि मैं भी कोई बडा आदमी हूँ।

एक बात मे मैं अवश्य सौभाग्यशाली रहा हूँ, वह यह कि इतने महापुरुषो को नजदीक से जानने का मौका हिन्दी के बहुत कम लेखको को मिला होगा। मेरे इस ग्रन्थ का मूल आधार महापुरुषो के सस्मरण ही हैं।

एक बात और भी, वह यह कि विज्ञापित महापुरुषो के विषय मे लिखना आसान है पर तथाकथित 'क्षुद्र' व्यक्तियो मे महत्त्व की तलाश करना अपेक्षाकृत कठिन ही है। मुझे इस प्रकार के साधारण व्यक्तियो मे अनेक खूबियाँ दीख पडी जिनका उल्लेख मैंने यथास्थान कर दिया है। मामूली व्यक्तियो के कृतज्ञतापूर्ण हार्दिक भावो को मैं महापुरुषो के आशीर्वादो से कम महत्त्व नही देता। एक युवा कवि ने मेरे सहयोगी श्री यशपाल जैन को पत्र लिखा था "मैं मरणासन्न हूँ। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि चतुर्वेदी जी के हाथ का लिखा एक पत्र तो मेरे पास हो।" मैंने लौटती डाक से पत्र लिख भेजा। उन कवि महोदय का देहान्त हो गया पर उनकी अन्तिम चिट्ठी को मैं अपने लिए सबसे बडा प्रमाण-पत्र मानता हूँ।

इस ग्रन्थ मे जहाँ मैंने विश्वविख्यात महापुरुषो का गुणगान किया है, वहाँ एक साधारण मजदूर बाज खाँ को भी मैं नही भूला। चरित्र-चित्रण मेरा प्रिय विषय है और पचासो रेखा-चित्र मैंने प्रस्तुत किये हैं। वे रेखा-चित्र 'हमारे आराध्य', 'सस्मरण' और 'विश्व की विभूतियाँ' नामक पुस्तको मे उद्धृत है। इनके अतिरिक्त बीसियो रेखा-चित्र पत्रो की पुरानी फाइलो मे अलग-थलग पडे हुए है।

मेरा प्रथम लेख मई-जून 1912 के 'नवजीवन' मे छपा था और पिछले सत्तर वर्षों से मैं निरन्तर लिखता ही रहा हूँ। अब इक्यानबेवाँ वर्ष समाप्त होने को है और वह समय आ गया है जब मैं अपने पिछले कार्यों पर एक विहगम दृष्टि डालकर काम को समेट लूँ। कविवर बच्चन जी की एक कविता है—"जाल समेटा करने मे भी समय लगा करता है माँझी, मोह मछलियो का अब छोड।" पर मेरे साथ मुश्किल यह है कि नवीन मछलियो का मोह मै छोड नही पाता। ज्योही किसी असाधारण व्यक्तित्व की झलक मुझे मिलती है, मैं उसे अपनी कलम की नोक पर उतारने के लिए व्याकुल हो जाता हूँ। जिस प्रकार कोई कुशल चित्रकार अपने द्वारा अकित चित्रो को बार-बार स्पर्श करता है, ताकि उसे अन्तिम रूप दे सके, उसी प्रकार का सयोग मेरे जीवन मे भी उपस्थित हो गया है।

चालीस पचास सन्दूको और सौ-सवा सौ फाइल बॉक्सो मे बिखरी पडी सामग्री को व्यवस्थित करना कोई आसान काम नही। मेरी 30-35 किताबें और सम्पादित विशेषांक छप चुके हैं और सैकडो ही लेख इधर-उधर पडे हुए हैं जिनमे 10-12 ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त मेरी महत्त्वपूर्ण सामग्री दो सग्रहालयो राष्ट्रीय अभिलेखागार, नयी दिल्ली और आगरा विश्वविद्यालय के चतुर्वेदी कक्ष केन्द्र मे सुरक्षित हो चुकी है।

हिन्दी जगत् से मुझे कोई शिकायत नहीं। मुझे अपनी योग्यता से कही अधिक सम्मान मिल चुका है। औसतन 10-12 रुपये मासिक पाने वाले एक मुदर्रिस के पुत्र को, जो इण्टर से आगे नही पढ सका, अत्यन्त दुर्लभ अवसर मिले और अब भी मिल रहे हैं। अगर मुझे किसी से शिकायत है तो खुद अपने से ही। पूरी ईमानदारी के साथ मै यह स्वीकार करूँगा कि मेरे द्वारा अपनी शक्ति, समय और साधनो का जो घोर अपव्यय हुआ है वह सर्वथा अक्षम्य है, पर कहावत है, "जब जग जाय तभी सवेरा है।" सो अब मैं जाग्रत हो गया हूँ और यह पुस्तक 'महापुरुषो की खोज मे' उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यह भी एक आकस्मिक घटना ही समझिये कि मेरे क्षुद्र जीवन का एक बडा भाग दूसरो की चिन्ता करने मे ही बीता। आस्ट्रिया के सुप्रसिद्ध तथा विश्व-विख्यात लेखक ज्विग ने फ्रांस के एक लेखक वेज़ेल गेट का उल्लेख करते हुए लिखा था कि उन्होने फ्रांसीसी प्रतिभाओ को आगे बढ़ाने मे ही अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी थी जब कि वह स्वय प्रतिभाशाली लेखक थे। वेज़ेल गेट के पथ का यत्किंचित् अनुसरण करते हुए मेरे मन को जो सन्तोष मिला है वही मेरा सबसे बडा पारिश्रमिक है और मैं बिना सकोच के कह सकता हूँ कि यह सौदा घाटे का नही है।

यह ग्रन्थ कदापि तैयार न हो पाता यदि बन्धुवर डॉ० मथुराप्रसाद मानव ने बार-बार तकाज़ा करके तथा दो घण्टे प्रतिदिन इस कार्य के लिए देकर मुझसे ये सस्मरण न लिखाये होते। भाई नरेशचन्द्र जी चतुर्वेदी (कानपुर) तथा जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी (नयी दिल्ली) ने प्रारम्भ से ही मुझे सहयोग दिया है। जगदीश जी तो पत्रकारिता के क्षेत्र मे मेरे वास्तविक उत्तराधिकारी हैं। मै केवल एक बार श्रमजीवी पत्रकार सघ का प्रधान रहा और वह दो बार रह चुके हैं। श्री नरेशचन्द्र जी चतुर्वेदी तो केवल साहित्य क्षेत्र के ही नही राजनीतिक क्षेत्र के भी जाने-माने नेता हैं।

ज्ञानपीठ का मैं अत्यन्त ऋणी हूँ। उसी के द्वारा मेरे तीन ग्रन्थ— रेखा-चित्र', 'सस्मरण' और 'मेरे आराध्य'—छपे थे और इस ग्रन्थ के प्रकाशित करने का अधिकार ज्ञानपीठ को ही है और उसी के द्वारा यह प्रकाश मे आ रहा है।

क्रम

● भाग . एक   जगबीती ●

● भाग दो आपबीती ●

● परिशिष्ट ●

स्वर्गीय अनुज प्रिय पटे को

समर्पित—

भाग : एक

जगबीती

महापुरुषों की खोज में

अपने विषय मे कुछ भी लिखना और सो भी तटस्थ वृत्ति से—कोई आसान काम नही। वह तो ऐसा ही है जैसे मनुष्य अपने अगो की चीर-फाड स्वय ही करे। यह बडा नाजुक काम है। विश्वप्रसिद्ध लेखक स्टीफिन ज्विग ने आत्म-चरित 'दि वर्ल्ड ऑफ यस्टर्डे' मे लिखा था कि आत्म-चरित साहित्य की सर्वोच्च विधा है और उसमे सफलता प्राप्त करना अत्यन्त ही कठिन है। आत्म-प्रशसा और आत्म-निन्दा इन दोनो मे सन्तुलन कैसे कायम रखा जाये, इसकी जानकारी बडी मुश्किल है।

महान् अमरीकी लेखक एमर्सन ने एक जगह लिखा था, "यदि कोई मुझे ऐसा कुतुबनुमा बतला दे, जो उस दिशा की ओर इशारा करता हो जिस दिशा मे महापुरुष रहते हैं, तो मैं अपना घर-द्वार बेचकर उस कुतुबनुमा को खरीद लूंगा और महापुरुषो की खोज मे चल पड़ूंगा।"

मुझे वह कुतुबनुमा श्रद्धापूर्ण पत्र-व्यवहार के रूप मे मिल गया, पर घर-द्वार हमारे पास था ही नही, इसलिए बेचने का सवाल ही नहीं उठा।

सर्वप्रथम जिन महापुरुष से मैंने पत्र-व्यवहार शुरू किया वह थे दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूज। 'मॉडर्न रिव्यू' मे उनका एक लेख पढकर मैं प्रभावित हो गया था और सम्भवत 1914 मे मैंने उनसे पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया था। 15 जून, 1914 को मैंने प० तोताराम जी के दर्शन भारती-भवन, फीरोजाबाद मे किये थे। दीनबन्धु के प्रथम दर्शन मैंने 1918 मे कलकत्ता मे तब किये जब मैं उनसे 'प्रवासी भारतवासी' की भूमिका लिखवाने गया और उसके तुरन्त बाद ही शान्ति-निकेतन मे गुरुदेव के दर्शन किये। 1920-21 मे चौदह महीने मैं शान्ति-निकेतन मे रहा और महात्मा जी के आदेश पर बम्बई चला गया और वहाँ डेढ-दो महीने रहकर साबरमती आश्रम आ गया। शान्ति-निकेतन और साबरमती, इन दोनो आश्रमो मे अनेक महान् कार्यकर्त्ता रहते थे और विदेश से यात्री भी आया करते थे। इन आश्रमो मे मुझे शास्त्री विधुशेखर भट्टाचार्य, क्षितिमोहन सेन, गुरुदेव के ज्येष्ठ भ्राता 'बडे दादा' द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, काका साहब कालेलकर, आचार्य किशोरी लाल मशरुवाला, आचार्य गिडवानी, धर्मानन्द कौशाम्बी के दर्शन हुए थे। मिस्टर पोलक के दर्शन भी साबरमती मे ही हुए थे।

पत्र-व्यवहार मेरा एक व्यसन ही रहा है और ब्रिटिश पार्लियामेट के मजदूर दल के सदस्य विलफ्रेड वेलॉक से मैंने 1927 मे ही पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया था। प्रवासी भारतीयो के कार्य के कारण मुझे स्वामी भवानीदयाल जी सन्यासी, मिस्टर पोलक, सर महाराज सिह, रेवरेंड जे० डब्ल्यू० बर्टन इत्यादि

से तो पत्र-व्यवहार करना आवश्यक ही था।

चूँकि मैं सन् 1912 में ही हिन्दी मे लेख लिखने लगा था और 1919 से अँग्रेजी में भी, इसलिए इन क्षेत्रो के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कार्यकर्ताओ से भी मेरा परिचय हो गया था। साहित्य-सम्मेलन के आठवें अधिवेशन मे, जो इन्दौर मे हुआ था, मैं साहित्य-विभाग का मन्त्री था और श्री सम्पूर्णानन्द जी उसके प्रधान। उन दिनो हम दोनो राजकुमार कॉलेज, इन्दौर, मे अध्यापक थे। 1918 के उस अधिवेशन के कुछ महीने पूर्व मैंने प्रयाग की यात्रा करके श्रद्धेय टण्डन जी के दर्शन किये थे और उन्हीं दिनो पूज्य महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के भी। तभी मैं श्रद्धेय राधाचरण जी गोस्वामी तथा श्री किशोरीलाल गोस्वामी जी की सेवा मे उपस्थित हुआ था। सम्मेलन के बम्बई, कानपुर, भरतपुर, बृन्दावन, गोरखपुर, मुजफ्फरपुर और कलकत्ते के अधिवेशनो मे मैं शामिल हुआ था, इसलिए हिन्दी-क्षेत्र के कार्यकर्ताओं से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया।

यहाँ एक बात अनुभव से कह सकता हूँ कि अँग्रेजी मे लेख लिखने के कारण मेरा परिचय अनेक अँग्रेजी पत्रकारो से भी हो सका था और सर्वश्री चिन्तामणि जी, कृष्णाराम मेहता, विश्वनाथ प्रसाद, सदाशिव गोविन्द वझे, कोदण्डराव, सैयद अब्दुल्ला बरेलवी, जी०ए० नटेशन और राणा जगबहादुरसिंह इत्यादि के सम्पर्क मे आ सका। कलकत्ते मे मुझे सुप्रसिद्ध विद्वान् सुनीति कुमार चटर्जी के सम्पर्क मे आने का मौका मिला और वही मैंने अमेरिकन लेखिका पर्ल बक के दर्शन किये थे। चूंकि मैंने ऐसे विषयो को अपनाया था जो विवादग्रस्त राजनीति से दूर थे, जैसे—प्रवासी भारतीय, शहीदो का श्राद्ध और साहित्य सेवियो की कीर्ति-रक्षा, इसलिए भिन्न-भिन्न दलो के कार्यकर्ताओ और नेताओ के सम्पर्क मे आने का मुझे मौका मिला। कई अँग्रेज बहनो के सम्पर्क मे भी मैं आ सका। मिस अगाथा हेरीसन, मिस मार्जरी साइक्स, मिस म्यूरिएल लीस्टर और मिस सेफर्ड से भी मेरा परिचय हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार लुई फिशर से मेरा वर्षों तक सम्बन्ध रहा और सुप्रसिद्ध रूसी विद्वान् सर्वश्री चैलिशेव, बारान्निकोव और चर्नीशोव से मेरा अब भी सम्बन्ध है। किसी भी पत्रकार के लिए इस प्रकार के सम्बन्ध अनिवार्य हैं। जिनके सम्पर्क मे मैं आया उनके बारे मे बहुत कुछ लिखने का अवसर भी मुझे मिला।

हिन्दी और उर्दू मे मैं कोई भेद नही करता। मैं स्व० मौलवी अब्दुल हक साहब को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाँति पूज्य मानता था। 'जमाना' के सम्पादक मुशी दयानारायण निगम के प्रति मेरी विशेष श्रद्धा थी।

मेरी महत्त्व की खोज अब भी जारी है और यावज्जीवन जारी रहेगी।

सन् 1918 एक ऐसा वर्ष था जिसने मेरे जीवन को एक और खास मोड दिया। सन् 1918 मे ही मैंने महात्मा जी के दर्शन प्रथम बार किये और उनके साथ ही उन प्रोफेसर गीडीज के भी जो जनपदीय कार्य के प्रवर्तक थे और नगर निर्माण कला के विशेषज्ञ भी। उसी वर्ष मुझे अकस्मात् इन्दौर छावनी की विक्टोरिया लायब्रेरी मे प्रिंस क्रोपाटकिन का आत्म-चरित दीख पडा—'मेमोयर्स ऑफ ए रिवोल्यूशनिस्ट' (एक क्रान्तिकारी के सस्मरण)। मैं तभी से प्रिंस क्रोपाटकिन का भक्त बन गया। इकतालीस वर्ष बाद सन् 1959 मे रूस की यात्रा करके मैंने उनकी समाधि पर पुष्प चढाए। सन् 1918 मे ही मैंने कलकत्ते मे दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के दर्शन प्रथम बार किये और तत्पश्चात् गुरुदेव कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन मे मुझे सस्कृत के महाविद्वान् शास्त्री महाशय विधुशेखर भट्टाचार्य और सन्त कवियो के विशेषज्ञ आचार्य क्षितिमोहन सेन के दर्शन हुए थे। सम्पादकाचार्य प० अम्बिका प्रसाद जी वाजपेयी के दर्शन भी मुझे उन्हीं दिनो हुए थे।

मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नही हुआ। अपने विस्तृत जीवन मे भी मैंने बहुत कम पढा है। उल्लेख योग्य बात यह भी है कि मैं ज्यादा पढ़ने मे विश्वास ही नही रखता। जिसे चलती-फिरती किताबो, स्त्री-पुरुषो के चरित्रो का अध्ययन करने का मौका मिले वह निर्जीव सूखी किताबो को पढकर क्या करेगा ? एक महान् चित्रकार से किसी ने पूछा, "आप केवल मनुष्यो के चित्र क्यो बनाते हैं ?" उसने तपाक से उत्तर दिया, "इसमे वैचित्र्य की भरमार है।"

एक और बात कह दूँ। मैं केवल महापुरुषो की ही वन्दना नही करता, बल्कि तथाकथित क्षुद्रपुरुषो की भी करता हूँ। जहाँ कही भी महत्त्व के दर्शन होते हैं, मैं उसकी पूजा करता हूँ। दरअसल महापुरुषो के गुणो का वर्णन करना आसान है, जबकि साधारण पुरुषो के गुणो की खोज कठिन। बिलायत के सुप्रसिद्ध रेखा-चित्रकार ए० जी० गार्डनर ने एक कलाकार का चित्रण किया है जो 40 50 फीट ऊची दीवार पर खडा हुआ उस दीवार को कुदाली से सावधानीपूर्वक गिरा रहा है। उसकी कुदाली बडी नाप-तौल के साथ पडती है। यदि एक बार भी गलती हो जाय तो वह धडाम से नीचे गिर सकता है और उसकी हड्डियाँ चकनाचूर हो सकती हैं। महात्मा गाधी जी जब साउथ अफ्रीका से भारत के लिए विदा हो रहे थे, तब उनकी प्रशसा मे कई भाषण दिये गये थे। उस समय उन्होने बडे मार्के की बात कही थी, "आप लोग मेरे त्याग और बलिदान की प्रशसा करते हैं, पर वह कुमारी वली अम्मा और हरवत सिंह के बलिदान के सामने नगण्य है क्योकि वे सग्राम मे शहीद हो गये।"

अब तक जो इतिहास लिखे गये हैं प्राय महान् नेताओ को केन्द्र मानकर उन्ही की दुदुभी बजाते हैं। भारत के स्वाधीनता सग्राम मे सहस्रो स्त्री-पुरुषो को शहादत मिली पर उनका कोई नाम नही जानता। अकेले चम्पारन मे ही 52 व्यक्ति शहीद हुए थे, जिन्हे हम बिलकुल भूल गये। नौ गोली खाकर शहीद होने वाले फुलैना बाबू को अब कौन याद करता है। हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने वाले सैकडो लेखक और कवि हुए है पर नाम केवल सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, और रहीम आदि इने-गिने व्यक्तियो का ही चलता है। मैंने अपने रेखा-चित्रो मे छोटे-बडे का कभी भेद नही किया। इनमे महात्मा गाधी और कवीन्द्र रवीन्द्र के साथ-साथ देवीदयाल गुप्त व रामधन के भी रेखाचित्र मैंने तैयार किये है। देवीदयाल जी सात रुपया पाने वाले मुदर्रिस थे और रामधन 'विशाल भारत' का चपरासी।

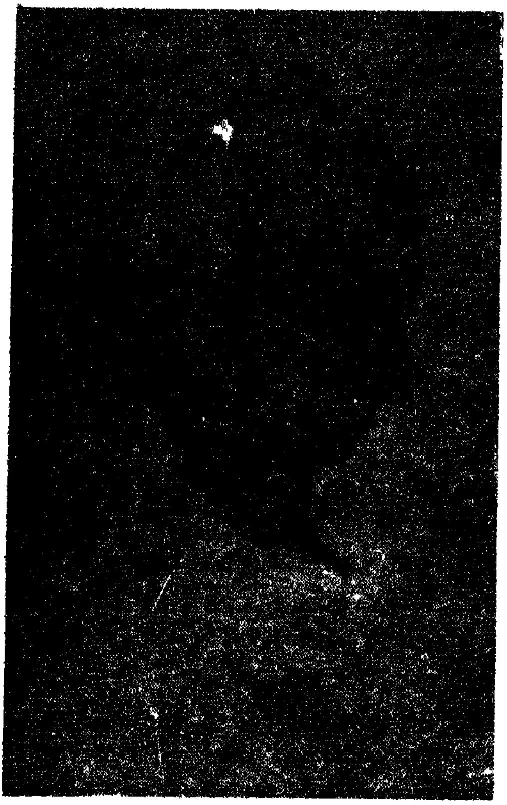
—बनारसीदास चतुर्वेदी

1

महात्मा गांधी जी

महात्मा गाधी जी का नाम मैंने तभी से सुन रखा था, जब उनका सत्याग्रह दक्षिण अफ्रीका मे चल रहा था। उनसे कुछ पत्र-व्यवहार भी सन् 1917 के आसपास हुआ था। तथापि उनके दर्शन प्रथम बार सन् 1918 मे ही हुए। सन् 1918 से लेकर जनवरी 1948 तक उनकी कृपा मुझ पर बराबर बनी रही। सन् 1918 मे बापू ने मेरी पुस्तक (प्रवासी भारतवासी) पढ ली थी और उसकी मोटी गलतियो के बारे मे उन्होने दीनबन्धु ऐण्ड्रूज को लिखा भी था। महादेव भाई की डायरी मे दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के नाम लिखा वह पत्र उद्धृत है, यद्यपि उसमे मेरे नाम का उल्लेख नही है। बापू का कथन सर्वथा ठीक ही था, क्योंकि प्रवासी भारतीयो के बारे मे मेरा कोई व्यक्तिगत अनुभव नही था, फिर भी मेरा चार वर्षों का सर्वोत्तम समय 'प्रवासी भारतवासी' नामक पुस्तक लिखने मे बीता। वह पुस्तक सर्वथा मिशनरी भावना से लिखी गई थी और उससे एक पैसा भी मैंने नही कमाया। साक्षात् परिचय होने के बाद बापू ने मेरी उस पुस्तक का उल्लेख कभी नही किया। हाँ, उन्होने एक बार मुझसे कहा था, "तुम्हारी किताब मे 'भारत-भक्त ऐण्ड्रूज' ही मुझे सबसे अधिक पसन्द है।" उस पुस्तक की भूमिका की भी अपनी एक कहानी है।

1920 की कलकत्ता कांग्रेस के बाद बापू विश्राम करने के लिए शान्ति-निकेतन पधारे थे। एक दिन प्रात काल मैंने उनकी सेवा मे पहुँचकर दस मिनट का समय मागा, जिसे उन्होने स्वीकार कर लिया। मैं पाँच मिनट तक दीनबन्धु ऐण्ड्रूज की प्रशसा करता रहा। बापू ने उसे सुनकर कहा, "ऐण्ड्रूज तो एक ऋषि है।" जब मैंने कहा, "मैं उनका जीवन-चरित लिख रहा हूँ," तब बापू ने कहा, "अवश्य लिखो।" तब मैंने निवेदन किया, "उसकी भूमिका आपको लिखनी होगी।" बापू ने कहा, "लिख दूँगा।" तब मैंने आग्रहपूर्वक कहा, "शान्ति-निकेतन से जाने से पूर्व भूमिका लिखकर आपको देनी है।" बापू ने कहा, "मै रेल की यात्रा मे भूमिका लिख दूँगा।" मैंने कहा, "नही बापू। लिख कर दे ही जाइए।" बापू ने मेरी जिद स्वीकार कर ली और दूसरे दिन जब मैं उनकी सेवा मे पहुँचा तो उन्होने पेन्सिल से लिखी हुई भूमिका मुझे देते हुए कहा, "तीन बार भूमिका लिखकर मैंने फाड दी, यह चौथा प्रयत्न है।" मैंने अँग्रेजी मे ही भूमिका लिखने के लिए कहा था क्योकि मैं अँग्रेजी मे भी पुस्तक लिखना चाहता था। भूमिका निम्न प्रकार है



महात्मा गाधी प्रसिद्ध चित्रकार
कुमारिल स्वामी की दृष्टि मे

भारत-भक्त ऐण्ड्रूज

शान्ति-निकेतन
17 9 1920

मिस्टर ऐण्ड्रूज और मेरे बीच सगे भाइयो से भी अधिक घना सम्बन्ध है, इसीलिए उनकी जीवनी की भूमिका लिखना मेरे लिए कोई आसान बात नही। फिर भी यदि धृष्टता न समझी जाये तो मैं अपना यह विश्वास लेखबद्ध कर देना चाहता हूँ कि सी० एफ० ऐण्ड्रूज से ज्यादा सच्चा, उनसे बढकर विनीत और उनसे अधिक भारत-भक्त इस भूमि मे कोई दूसरा देश-सेवक विद्यमान नही।

उनके जीवन से शिक्षा ग्रहण कर भारतीय युवक अपनी मातृभूमि की अधिकाधिक भक्ति करने के लिए उत्साहित हो—यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

—मो० क० गांधी

जब दीनबन्धु ऐण्ड्रूज कलकत्ता मे अपनी अतिम बीमारी मे पडे हुए थे, महात्मा गाधी जी शान्ति-निकेतन आये थे और कलकत्ते जाने के पहिले उन्होने वहाँ पूछा था, "क्या बनारसीदास की लिखी ऐण्ड्रूज की जीवनी शान्ति-निकेतन के पुस्तकालय मे है ?" तब भाई हजारीप्रसाद द्विवेदी ने वह पुस्तक निकालकर उन्हे दे दी थी। तत्पश्चात् बापू कलकत्ते मे दीनबन्धु ऐण्ड्रूज से मिले थे और अन्तिम क्षणो की वार्ता महादेव भाई ने प्रकाशित कर दी थी। ऐण्ड्रूज ने बापू से कहा था, "मोहन, स्वराज्य इज कमिग," अर्थात् स्वराज्य आ रहा है। और यदि भारतीय और अँग्रेज मिलकर काम करे तो वह जल्दी आ सकता है। दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के स्वर्गवास के बाद महात्मा जी ने उन्हे बडी भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी।

बापू के जिस गुण ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया, वह था, उनकी लोक-सग्रह की भावना। वह अपने सम्पर्क मे आने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर इतना एहसान लाद देते थे कि वह चकित रह जाता था। मैंने बीसियो ही पत्र उनकी सेवा मे भेजे थे पर मुझे एक भी मौका याद नही आता, जब उन्होने मेरे पत्र का उत्तर न दिया हो। दीनबन्धु ऐण्ड्रूज की मृत्यु 5 अप्रैल, सन् 1940 को हुई थी। उनकी पुण्य-तिथि के निकट आने पर कलकत्ते से मैंने एक कार्ड महात्मा जी को लिखा था "कृपा कर एक पत्र केदार बाबू को लिखिए कि वे 5 अप्रैल को दीनबन्धु ऐण्ड्रूज की समाधि पर पुष्प चढ़ाये।" उन्होने लौटती डाक से केदार बाबू को लिखा, "आप ऐण्ड्रूज की समाधि पर

फूल चढ़ावें और बनारसीदास से कह दें मैंने कि उसके आदेश का पालन किया है।"

सन् 1918 से 1947 तक, उनतीस वर्षों में न जाने मैंने अपनी फरमाइशों और सनकों से बापू को कितना तंग किया होगा। मेरी गार्हस्थिक दुर्घटनाओं में उन्होंने अपने हाथ से लिखकर सान्त्वनाप्रद पत्र भेजे थे। मेरी पत्नी की मृत्यु पर उन्होंने लिखा था, "इस दु ख में से शक्ति पैदा कर लो।" मेरे अनुज के स्वर्गवास पर उनका वाक्य था, "भाई रामनारायण जिस रास्ते गये हैं, उस रास्ते हम सभी को जाना है। केवल समय का ही फेर है।" पूज्य पिताजी के देहान्त पर उनका कथन था, "और मरता है कौन ? जीव, तो हरगिज नही, जिसके साथ हमारा सम्बन्ध था और है और रहेगा।" कक्का उम्र मे बापू से सत्रह वर्ष बड़े थे और उन्होंने बापू को अपने अन्तिम पत्र मे लिखा था, "आप खुश रहें, तन्दुरुस्त रहे और आपकी मनोकामना पूर्ण हो।" अपने पत्र मे बापू ने लिखा था, "पिताजी के अन्तिम वचन मुझे बहुत मीठे लगते हैं, और मैं उन्हे आशीर्वाद रूप मे मानूंगा।" बापू की यह महानता थी कि विश्वविख्यात व्यक्ति होने पर भी उन्होंने मामूली मुदर्रिस के प्रति इतनी श्रद्धा प्रकट की थी।

चार काम

सन् 1929 मे महात्मा जी आगरा आये हुए थे और फीरोजाबाद मे पधारने वाले थे। उस समय मैं कलकत्ता मे था। जब मुझे यह समाचार मिला तो मैंने एक कार्ड उन्हे लिख भेजा। उसके शब्द ये थे, "कृपया चार काम कीजिए : (1) दयालबाग देख लीजिए, (2) मेरे छोटे भाई रामनारायण को समय दीजिए, (3) फीरोजाबाद मे मेरे पिताजी से मिल लीजिए, और (4) लाला चिरंजीलाल का नाम फीरोजाबाद की मीटिंग मे ले लीजिए।"

महात्मा जी ने चारो काम विधिवत् किये। दयालबाग को साढ़े तीन घण्टे दिये, दयालबाग का नियम है कि वे किसी को निमन्त्रित नहीं करते पर कोई उनके बजाय किसी को निमन्त्रित कर देता है तो वे उसका हार्दिक स्वागत करते है। मैंने डा० कालीदास नाग तथा दीनबन्धु ऐण्ड्रूज से प्रार्थना करके उन्हे दयालबाग देखने के लिए भिजवाया था और महात्मा जी को भी। महात्मा जी ने मेरे छोटे भाई रामनारायण को बीस मिनट का टाइम दिया और जब टाइम पूरा हो गया तो कहा, "अब भाग जाओ।" फीरोजाबाद मे जब मेरे पिताजी बापू से मिलने गये तो बापू ने उठकर उनका स्वागत किया और बातचीत मे कहा, "आप सौ वर्ष जिन्दा रहे और स्वराज्य देखें।" फीरोजाबाद मे जो मीटिंग हुई थी उसमे 20-25 हजार व्यक्ति उपस्थित थे। बापू ने वहाँ पुछवाया, "बनारसीदास के घर से कोई मीटिंग मे आया है क्या ?" अकेली मेरी बहिन गई थी। फिर बापू ने कहलवाया कि लाला चिरंजीलाल कौन है, खडे हो जाये, बापू उन्हे देखना चाहते है। लाला चिरंजीलाल को बडा आश्चर्य हुआ कि बापू ने ऐसा क्यो किया। बात दरअसल यह थी कि लाला चिरंजीलाल जी से मैं रुपये उधार लिया करता था। वे न कभी तकाजा करते थे और न कभी ब्याज लेते थे। ढाई सौ रुपये तक की सीमा थी। कई वर्ष बाद 1937 मे मैंने चिरंजीलाल जी को ढाई सौ रुपया महाराज ओरछा से लेकर भिजवाए थे। कृतज्ञता स्वरूप ही लाला चिरंजीलाल का नाम मैंने बापू को लिख दिया था।

बापू अपने भक्तो को कभी नही भूलते थे। जब वह यरवदा जेल मे थे तो उन्होंने एक पत्र रामानन्द बाबू को 'मॉडर्न रिव्यू' भेजने को लिखा था और पत्र के अन्त मे उन्होंने लिखा था "प्लीज रिमेम्बर मी टू पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी" यानी बनारसीदास चतुर्वेदी को मेरी याद दिला दीजिए।

महात्माजी का स्वर्गवास 30 जनवरी, 1948 को हुआ था और उससे अठारह दिन पूर्व 12 जनवरी

को उन्होंने स्व० पंडित तोताराम जी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए लिखा था, "उनको आश्रम मे लाने का श्रेय पडित बनारसीदास चतुर्वेदी को है।"

अपने एक अँग्रेजी पत्र मे बापू ने 'सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया' के एडीटर सदाशिव गोविन्द वझे को लिखा था—"बनारसी दास हैज अननेसेसरिली इम्पावर्टेड हिमसेल्फ।" (अर्थात् बनारसीदास चतुर्वेदी ने फिजूल ही अपने को गरीब बना लिया है।)

बात यह हुई थी कि मैंने बापू से नाराज होकर लिख दिया था, "मुझे न आपकी सिफारिश की जरूरत है और न आपसे रुपये लेने की।" जबकि बात दरअसल यह थी कि मुझे दोनो चीजो की जरूरत थी। बापू हम लोगो के लिए पितृतुल्य थे और नासमझ छोटे बच्चो की तरह हम लोग उनसे नाराज भी हो जाते थे।

बापू के सामने दिल खोलकर बात लिखने मे हम लोगो को कोई सकोच नही होता था। एक बार मैंने उन्हे अपने दुराचारपूर्ण असयत जीवन का कच्चा चिट्ठा लिख दिया था और साथ ही यह भी लिखा था कि इसे पढकर आपके हृदय को धक्का लगेगा। मेरे पत्र के उत्तर मे बापू ने लिखा था, "हृदय को धक्का नही लगा। आखिर तो आदमी जो कुछ कर सकता है वही करे। मेरी सलाह है कि तुम शादी कर लो। उससे तीन काम सिद्ध होगे और 'विशाल भारत' का काम भी ठीक चलेगा।" बापू का वह पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित है। एक चिट्ठी मे बापू ने लिखा था, "जो आदमी अपनी गलती को महसूस करता है और उसे दूर करने का प्रयत्न करता है उसका आधा काम तो बन गया। इतना निराश होने का कोई कारण नही है।"

मेरे सग्रह मे महात्मा जी के एक सौ से अधिक पत्र और दस-बारह कागजो के पुर्जे भी थे। उनमे बापू के हाथ से पेंसिल से लिखा हुआ एक पुर्जा है। बात यह हुई थी कि पडित तोताराम जी की पत्नी गगा बहिन बीमार थी। बापू उनको देखने के लिए गये थे। सोमवार मौन-दिवस था इसीलिए कोई बात नही कर सके और जब रात को दो बजे उनकी नीद खुली तो उन्होने अपने हाथ से एक पर्चा लिखा, "जुलाब की कोई जरूरत नही है, आज भी दूध देना नही चाहता हूँ। नारगी का और द्राक्ष का रस पीती रहे। जितना पानी पी सकें उतना पीवें। कटि-स्नान करें और बर्फ की पुल्टिस कुनैन, नीबू और सोडा मे दे दो।"

(बापू 2 बजकर 5 मिनट)

यह चिट्ठी बापू ने एक महिला को जगाकर उसके हाथ पडित तोताराम जी को भेजी थी।

एक चिट्ठी मे बापू ने पडित तोताराम जी को लिखा था, "तुम्हारा विवरण अच्छा लगा। महादेव का भजन भेजा, वह भी अच्छा है और दोनो का मेल भी मुझे बहुत प्रिय लगा। हमारा प्रत्येक कार्य मे प्रभु का भजन ही होना चाहिए।

"विवरण दुबारा पढ लूँगा। मेरी आकाक्षा तो यह है कि हम इतने फल और इतनी भाजी पैदा करें जो हमारे लिए पर्याप्त हो। यदि गोमाता के लिए भी घास आदि पैदा करें और आश्रम के लिए अनाज तो खेती के पूर्ण आदर्श को हम पहुँचे। इसमें थोडा ज्यादा खर्च भी हुआ तो भी मैं उसे सफल समझूंगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सब मूर्खों का बकवाद है। खेती का काम सबसे कम किया और बातें सबसे मैंने इस बारे मे ज्यादा की हैं। क्या करूँ, खेती उन चीजो मे से है जो करने का ख्याल मुझको आधी आयु बीतने पर आया।" (बापू 26-4-33)

प्रातःकाल का उठना

बारडोली जाने से पहिले बापू ने सभी आश्रमवासियों को बुलाया था और उनसे अनुरोध किया था कि वे आश्रम मे आने के बाद जो उन्हे अनुभव हुए हैं उनका वर्णन करें। सबने अपने-अपने अनुभव सुनाए। एक व्यक्ति ने कहा, "जब से मैं आया हूँ तब से आश्रम

की उन्नति ही हुई है।" इस पर मजाक करते हुए बापू ने कहा, "इसका मतलब तो यह भी होता है कि यह उन्नति आपके आने से ही हुई है।" इस पर हम सब खिलखिलाकर हँस पड़े।

अब मेरा नम्बर आया तो मैंने कहा, "आश्रम मे आये हुए मुझे तो अभी चार महीने ही हुए हैं। कोई विशेष अनुभव नही हुआ।" इस पर बापू ने कहा, "जो भी अनुभव हुए हो, वही सुनाओ।" मैंने उत्तर दिया, "मुझे दो अनुभव खास तौर पर हुए। एक तो यह कि बाजरी रोटी मुझे नही पचती, दूसरा यह कि चार बजे मुझसे उठा नही जाता।" इस पर बापू ने कहा, "रोटी के बारे मे तो मैं पीछे कहूँगा। लेकिन सवेरे उठने के बारे मे मैं तुमको बतला देना चाहता हूँ कि अपने जीवन मे जो कुछ मैंने सर्वोत्तम लिखा है वह सवेरे चार और छ. के बीच मे ही लिखा है। मुझे आश्चर्य है कि लेखक होते हुए भी तुम प्रातःकाल उठने के महत्त्व को नही समझते।" मैंने कहा, "चाहे जब उठने की स्वतन्त्रता शान्ति-निकेतन मे थी।" इस पर बापू ने हँसकर कहा, "उसे स्वतन्त्रता नही स्वच्छन्दता कहना चाहिए।"

एक मराठी भाषा-भाषी सज्जन ने, जो हिन्दी ठीक-ठीक नही समझते थे, उस बातचीत की ग़लत रिपोर्ट अखबारो को भेज दी और उन्होने एक वाक्य अपनी तरफ से जोड दिया, "शान्ति-निकेतन सासारिक उन्नति के लिए है और मेरा आश्रम आध्यात्मिक उन्नति के लिए।" मराठी भाई की भयकर भूल के कारण बडी गलतफहमी पैदा हो गयी। शान्ति-निकेतन के मित्रो को कुछ बुरा लगा। इस पर बापू ने अपने पत्र 'यग इण्डिया' मे लिखा, "बनारसीदास और मेरी जो बातचीत हुई उसकी रिपोर्ट ग़लत है। हम दोनो ही शान्ति-निकेतन के प्रशसक हैं। और जहाँ बडे दादा जैसे महान् आध्यात्मिक सन्त विद्यमान हो उसके बारे मे मैं कोई धृष्टतापूर्ण बात नही कह सकता।"

आश्रम की महिलाओं की मीटिंग

बापू ने आश्रम की सभी महिलाओ को बुलाया और कहा, "लक्ष्मी को खाना बनाना कौन सिखायेगा?" बापू ने लक्ष्मी नामक एक ढेढ बालिका को गोद ले लिया था। वह उसे लडकी की तरह मानते थे। उपस्थित महिलाओं ने कहा, "लक्ष्मी को हम स्नान करायेंगे, सिर गुह देंगे पर अपने चौके मे नही बिठला सकते।" यहाँ तक कि माता कस्तूरबा तक ने मना कर दिया। इससे वातावरण कुछ गम्भीर हो गया। बापू ने कहा, "इसके मानी तो यह है कि मुझे अभी एक बडी लम्बी लडाई लडनी है।" मेरी पत्नी भी चि० गुपलेश के साथ उस मीटिंग मे गयी थी और उसने भी लक्ष्मी को चौके मे ले जाना अस्वीकार कर दिया था। गुपलेश उस समय दो-ढाई वर्ष का था। उसकी मुट्ठी मे तीन पैसे थे। बापू ने वातावरण की गम्भीरता को दूर करने के लिए उससे पूछा, "तुम्हारी मुट्ठी मे क्या है?" उसने कहा, "पैसे हैं।" बापू ने कहा "हमे दे दो।" गुपलेश ने कहा, "हम नहीं देंगे।" बापू ने पूछा, "तो पैसे का क्या करोगे?" गुपलेश ने कहा, "मलाई की बर्फ खायेंगे।" बापू ने कहा, "हमे तो मलाई की बर्फ नही मिलती।" गुपलेश ने कहा, "हमारे साथ फीरोजाबाद चलो, हम खिलायेंगे।" इसके बाद गुपली ने कोई बात कही जो बापू की समझ मे नही आई और बापू ने 'सू' (क्यो?) कहा। इस पर गुपली ने कहा, "बुड्ढा, सू-सू क्या करता है?" इस पर सब लोग हँसने लगे। गुपली ने बापू को पैसे दिये ही नही। दूसरे दिन जब मुझे यह बात मालूम हुई और आश्रम की एक महिला ने मुझे बतलाया कि गुपली ने बापू को बहुत तग किया तो मैं गुपली को लेकर बापू के पास क्षमा-याचना के लिए गया। बापू से मैंने कुछ निवेदन किया ही था कि वह बोले, "इसमे क्षमा-याचना की क्या बात है, यह तो मेरा पुराना दोस्त है।"

बारडोली जाने के पहले

बारडोली जाने से पहले बापू ने सब आश्रम-वासियो को बुलाकर कहा था, "मैं बारडोली मे असफल होकर जिन्दा नही लौटना चाहता, या तो स्वाधीनता लेकर लौटूंगा या फिर मेरा शरीर वहाँ अन्त ही हो जायेगा। मैं आप सबसे यह आशा नही रखता कि आप सब इस सत्याग्रह मे शामिल हों। पर इतनी आशा अवश्य रखता हूँ कि आप सब सयमपूर्वक रहेगे। जब महाराणा प्रताप मृत्यु शैय्या पर थे तो उन्हे अपने पुत्र अमरसिह के विषय मे चिन्ता थी कि कही वह स्वाधीनता को खो न दे। जब महाराणा प्रताप के सरदारो ने उन्हे विश्वास दिलाया कि वे अमरसिह को ठीक रास्ते पर रखेंगे तब कही वह शान्तिपूर्वक अपने प्राण विर्सजित कर सके। मैं भी बारडोली मे मारे जाने के पहले यह सन्तोष पा लेना चाहता हूँ कि आप सभी सयमपूर्वक रहेंगे।"

महात्मा जी छोटी से छोटी बात पर अधिक से अधिक ध्यान देते थे। उन्होने उस दिन भी, जब देश के भाग्य के निबटारे के लिए घमासान युद्ध होने वाला था, हम आश्रमवासियो से कहा था, "आप लोगो मे से कितने ही पेशाब को बहाते नही हैं और जहाँ-तहाँ थूक देते है, इन बातो पर सबसे पहले ध्यान देने की जरूरत है।" आश्रम-भर मे भी मगनलाल गाधी ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जो महात्मा जी की आज्ञाओ का अक्षरश पालन करते थे। वह कठोर नियन्त्रणकर्ता थे और उनके डर से हम लोग भी उनके नियमो का पालन मजबूरन करते थे।

महात्मा जी की हास्य-प्रवृत्ति

एक बार किसी सवाददाता ने महात्माजी से पूछा था, "क्या आपमे हास्य-प्रवृत्ति भी है?" इसका उत्तर देते हुए महात्मा जी ने कहा था, 'अगर मुझमे 'सेंस ऑफ ह्यूमर' न होती तो मैंने कभी का आत्म-घात कर लिया होता।"

यहाँ मैं एक निजी घटना सुना रहा हूँ

मेरे पास एक हॉकी-स्टिक थी और जब मैं प्रार्थना मे जाता तो उसे रेती पर बाहर रखकर प्रार्थना-स्थल पर चला जाता था। एक बार ऐसा हुआ कि प्रार्थना के बाद ज्यो ही मैंने वह हॉकी स्टिक अपने हाथो मे ली, बापू उधर आ निकले, और उन्होने कहा, "लाठी तो आपने बहुत मजबूत बाँध रखी है।" मैंने उत्तर दिया, कविवर माखनलाल चतुर्वेदी ने "इसका नाम मस्तक-भजन रखा है।" बापू बोले, "और सत्याग्रह आश्रम मे एक मस्तक-भजन रहना ही चाहिए।"

विलायत मे एक अग्रेज महाशय ने उनसे कहा था, "मेरे आठ बच्चे हैं और उनके पालन-पोषण मे मुझे व्यस्त रहना पडता है।" महात्मा जी ने उत्तर मे कहा, "आई कैन रन हाफ दि रेस विद यू"—यानी मैं आपके साथ आधी दौड दौड सकता हूँ। यह बतलाने की आवश्यकता नही कि महात्मा जी के चार पुत्र थे।

स्वाधीनता के पक्षपाती

प्रवासी भारतीयो के कार्य मे बापू ने मुझे पूरी-पूरी स्वाधीनता दे रखी थी। आश्रम तो असहयोगियो का गढ था फिर भी मैं सरकार से निरन्तर सहयोग ही करता रहा था। जब अहमदाबाद काँग्रेस के प्रधान हकीम अजमल खाँ साबरमती आश्रम मे पधारे और मेरे कमरे के सामने से गुजरे तो काका साहब कालेलकर ने मेरा परिचय देते हुए कहा, "आश्रम मे यही एक ऐसे आदमी हैं जो सरकार से सहयोग करते हैं।" महात्माजी का कहना था "प्रवासी भारतवासियो की सेवा मे आप जो भी नीति अगीकार करना चाहे, करें। उसके प्रति आप पूर्ण स्वतन्त्र है। हाँ, पैसे का इन्तजाम मैं करूँगा।"

एक बार बापू गुजरात विद्यापीठ मे पधारने वाले थे। आचार्य गिडवानी ने मुझसे कहा, "आप

कातते तो हैं नहीं, इसलिए एक कमरे में रुई धुनने के लिए बैठ जाइये।" बापू पधारे और अकस्मात् मेरे कमरे के सामने से गुजरे और उन्होंने पूछा, "पिजड़ करो छो," अर्थात् रुई धुन रहे हो। मैंने कहा, "हाँ साहब।" बापू के चले जाने के बाद मैंने सोचा कि यह तो बापू को धोखा देना है। क्योंकि मैं तो कभी रुई धुनता ही न था। कुछ दिनो बाद जब गुजरात विद्यापीठ का पदवी-दान समारोह हुआ तो कुलपति की हैसियत से बापू उसमे उपस्थित थे। उन्होने कहा, "यह विद्यापीठ उन लोगो के लिए नही है जिनका चर्खे मे विश्वास नही।" उस दिन मैं आश्रम मे स्नान करने के बाद एक-डेढ मील पैदल चलकर उस समारोह मे शामिल हुआ था। मेरा मस्तिष्क तरो-ताजा था। मैंने तुरन्त ही अपनी जेब से पैन निकाला और कागज के एक टुकडे पर अपना त्यागपत्र लिख दिया। त्यागपत्र के शब्द ये थे "श्रीमान कुलपति, गुजरात विद्यापीठ, चर्खे मे श्रद्धा न होने के कारण मैं अपने पद से त्यागपत्र देता हूँ। आशा है कि यह कार्य मेरे लिए और मेरे विद्यार्थियो के लिए स्वास्थ्यप्रद होगा।" त्यागपत्र लिखकर उसे मैंने मीटिंग समाप्त होने के बाद महात्मा जी को दे दिया। तत्पश्चात् विद्यापीठ के अध्यापको की मीटिंग प्रिंसिपल कृपलानी की अध्यक्षता मे हुई। महात्मा जी भी उपस्थित थे। महात्मा जी ने मेरा त्यागपत्र पढकर सुनाया और कहा, "बनारसीदास ने जो काम किया, वह ठीक है। दूसरे अध्यापको को भी, जिनका विश्वास चर्खे मे न हो, उनका अनुकरण करना चाहिए।" मीटिंग समाप्त होने के बाद बापू कार मे आश्रम जाने लगे। मैंने निवेदन किया, "मैं भी साथ चलूँगा।" बापू ने कहा, "बैठ जाइए।" मैं बैठ गया। मोटर चलने के बाद मैंने कहा, "बापू, आपके चर्खे के चारो ओर अन्धविश्वास इकट्ठा हो गया है। लोग यहाँ तक ख्याल करने लगे हैं कि जो चर्खा नही कात सकता वह कोई त्याग नही कर सकता। यहाँ मैं यह निवेदन कर दूँ कि मौका आने पर मैं मामूली चर्खा कातने वाले से पीछे नही रहूँगा।" निस्सदेह मेरी यह बात बडी दम्भपूर्ण थी। चर्खा बापू को सबसे अधिक प्रिय था और उस पर आक्षेप करके मैंने बापू के हृदय को जबरदस्त धक्का पहुँचाया था। पर बापू अत्यन्त उदार थे। उन्होने बडी शान्ति-पूर्वक मेरी धृष्टता को सहन कर लिया और कहा, "आपको गुजरात विद्यापीठ से जो 130 रुपये महीने वेतन मिलता है, उसका मैं आश्रम से प्रबन्ध कर दूंगा। आप आश्रम मे रहिए, और पहले की तरह अपना काम कीजिए। आपको यह खबर अपने घर भेजने की जरूरत भी नही कि आपने त्यागपत्र दे दिया है।"

मुझे आश्रम मे रहने के लिए मकान मिला हुआ था और विद्यापीठ से 130 रुपये महीने मिलते थे। मुझे प्रति सप्ताह मे नौ पीरियड हिन्दी पढानी पडती थी। इसके सिवाय 250 रुपये महीने प्रवासी भारतीयो के कार्यों मे व्यय करने के लिए अलग से मिलते थे। कार्य करने की पूरी स्वाधीनता तो थी ही पर अस्वस्थता तथा जलवायु प्रतिकूल होने के कारण मेरा मन आश्रम से उचट गया था। मैंने आश्रम छोडने का ही निश्चय कर लिया था। निस्सदेह मैंने बडा खतरा मोल लिया था। मेरे ऊपर कुटुम्ब का भार था और आमदनी का कोई भी जरिया न था। इस प्रकार मैंने अपने घर वालो को भी सकट मे डाल दिया था। तत्पश्चात् तीन वर्ष कितने कष्टो मे बीते उसकी कल्पना करके अब भी कँपकँपी आ जाती है। आगे चलकर जब महामना मालवीय जी से बातचीत हो रही थी तो सम्पूर्ण वृत्तान्त जानने पर उन्होने मुझसे कहा, "आपने साबरमती आश्रम छोडकर ठीक काम नही किया। मनु भगवान ने कहा है

वृद्धौ च माता पितरौ सती भार्या सुत शिशु।
अपकार्यं शत कृत्वा भर्तव्य मनुरब्रवीत ॥

—यानी वृद्ध माता-पिता, सती स्त्री और छोटे

बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए अगर आदमी को सौ अकारज भी करना पड़े तो करना चाहिए।"

आश्रम में टाइपराइटर

पहले आश्रम में कोई टाइपराइटर मशीन न थी। हाथ से लिखकर अथवा साइक्लोस्टाइल द्वारा ही काम चला लिया जाता था। चूँकि मुझे अपने लेख कई पत्रों को भेजने पड़ते थे इसलिए टाइपराइटर की सख्त जरूरत थी। मैंने एक पत्र युगाण्डा (पूर्व अफ्रीका) के प्रमुख उद्योगपति श्री नानजी भाई कालिदास मेहता की सेवा मे भेजा कि वह मेरे लिए एक टाइपराइटर का प्रबन्ध कर दें। उन्होने तुरन्त 500 रुपये तदर्थ भेज दिए तथा मैंने महात्माजी की सेवा मे उपस्थित होकर निवेदन किया, "मैं एक टाइपराइटर खरीदना चाहता हूँ।" महात्माजी ने कहा, "तुम्हारे अक्षर तो बहुत अच्छे हैं। तुम टाइपराइटर लेकर क्या करोगे ?" मैंने कहा, "मुझे अपने लेख की 8-8, 10-10 प्रतियां प्रचारार्थ तैयार करनी पड़ती हैं। इसीलिए टाइपराटर की जरूरत है।" इस पर बापू ने कहा, "मुझे टाइप की आवाज ही खटकती है। क्यो फिजूल पैसा खर्च करना चाहते हो।" तब मैंने उन्हें बतलाया कि नानजी भाई कालिदास मेहता ने पूर्व अफ्रीका से 500 रुपये टाइपराइटर खरीदने के लिए भेज दिये है। महात्माजी ने कहा, "तब तुम खरीद सकते हो।" मैंने टाइपराइटर खरीद लिया। इस प्रकार आश्रम मे पहले टाइपराइटर का प्रवेश हुआ। आश्रम छोड़ते समय वह टाइपराइटर मैं अपने साथ लेता आया। फीरोजाबाद मे उसके बाद दूसरों की कितनी ही चीजें टाइप करनी पड़ी और तब मुझे भी टाइपराइटर की आवाज बापू की तरह ही खटकने लगी।

चाय पर मजाक

डच गयाना से एक भारतीय पधारे थे और वह महात्मा जी के दर्शन करना चाहते थे। उसके लिए उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं उनके साथ चलूँ। मैं तैयार हो गया और मैंने इसकी सूचना बापू के पास भेज भी दी। जब मैं उन प्रवासी भाई के साथ वर्धा स्टेशन पर पहुँचा तो मुझे वहाँ मद्रास के हिन्दी प्रचारक हरिहर शर्मा दीख पड़े। मैंने उनसे पूछा, "आप यहाँ कैसे पधारे ?" वह बोले, "बापू ने मुझे आपका स्वागत करने के लिए भेजा है। पहले वह किसी और को भेजने वाले थे पर उन्होने आपको कभी देखा भी न था। तब उन्होने मुझे भेजा।" मुझे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ क्योकि मैं कोई अजनबी आदमी तो था नहीं। हम लोग आश्रम पहुँचे तो बापू के आदेशानुसार हम लोगो के लिए चाय का प्रबन्ध कर दिया गया। रात को साढ़े आठ बजे बापू से मिलने का समय था। निश्चित समय पर हम लोग उपस्थित हुए। बापू ने तुरन्त ही कहा, "खूब आराम से चाय पीना।" मैंने कहा, "क्या आपको मेरे चाय पीने की बात मालूम हो गई है ?" बापू ने कहा, "हाँ, काका साहब ने मुझे बतला दिया है कि तुम चाय पीने लगे हो।" मैंने पूछा, "मिस्टर ऐण्ड्रूज आपके छोटे भाई हैं ?" बापू ने कहा, "हाँ।" मैंने कहा, "और आप उनके बड़े भाई है?" बापू ने कहा, "हाँ।" मैंने कहा, "मैं छोटे भाई की बात मानता हूँ, बड़े की नहीं।" बापू ने तुरन्त ही उत्तर दिया, "तब तो मैं ऐण्ड्रूज को लिख दूँगा कि तुमको अच्छा शिष्य मिल गया है।" तत्पश्चात् बापू ने मुझे आधा घण्टा टाइम दिया और कहा, "सबेरे डेढ़ बजे का उठा हुआ हूँ और दिन मे केवल घण्टा-डेढ़ घण्टा विश्राम किया है। और अब नौ बज रहे हैं।" मुझे इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि बापू को कितना परिश्रम करना पड़ता है। बाहर आकर जब यह बात मैंने हरिहर शर्मा से पूछी कि बापू इतनी मेहनत क्यों करते हैं तो वह बोले, "हम लोग आलसी हैं, इसीलिए बापू को इतनी मेहनत करनी पड़ती है।"

दूसरे दिन डच गयाना के प्रवासी भारतीय को मैंने बापू से मिलाया और उन्होंने बापू से एक संदेश

देने की प्रार्थना की। बापू ने मुझसे कहा, "लिख दीजिए।" ज्यो ही मैंने जेब से पैन निकाला, बापू ने कहा, "डच गयाना वाले कहेंगे इनके पास घर की क़लम भी नही है। इसलिए कलम से लिखिए।" उन्होने तुरन्त ही नेजा और चाकू मँगवा दिया। मैंने क़लम बना ली। मुझे उन दिनो अच्छे काग़ज़ पर लिखने का शौक था। मैंने जेब से बैंक पेपर निकाला। बापू ने मजाक उड़ाते हुए कहा, "ऐसा बढ़िया काग़ज़ तो चाय पीने वालो को मिल सकता है। हम लोग तो शुद्ध पानी पीने वाले हैं। हमे ऐसा पेपर कहाँ से मिल सकता है!" फिर उन्होने हाथ का बना हुआ काग़ज़ मँगा कर दिया और हाथ की बनी हुई कलम भी रखवा दी। तत्पश्चात् बापू का सन्देश मैंने हाथ के बने कागज़ पर क़लम से ही लिख दिया। उसका ब्लाक मैंने 'विशाल भारत' मे भी छापा था।

बापू की सावधानी

बापू ने जो सन्देश डच गयाना के प्रवासी भारतीयो के लिए लिखाया था उसमे मेरा नाम भी था। मैंने जान-बूझकर, उनके आगे श्री नही लिखा था। बापू ने स्वय उसे पढा और 'श्री' अपने हाथ से जोड दिया।

फिर चाय का मजाक

शाम के वक्त हम लोग बापू के साथ भोजन के लिए बैठे। श्रीमती सरोजिनी नायडू की पुत्री पद्मजा नायडू भी साथ बैठी थी। उनके लिए दक्षिण के भोजन का प्रबन्ध था। उनके थाल मे कॉफी का कप भी था। मुझे मजाक सूझा और मैंने कहा, "बापू, मेरी वोट बढ रही है, पद्मजा जी कॉफी पीती हैं, 'बा' भी चाय पीती हैं और मैं भी चाय पीता हूँ।" बापू ने कहा, "बुरी चीजो के प्रचार के लिए वोट की ज़रूरत नहीं पडती। वे तो अपने आप फैलती हैं।"

भसाली भाई उसी पार्टी मे बैठे थे। उन्होंने इशारे से कहा, "पहले तो तुम दुबले-पतले थे और अब मोटे हो गये हो।" मैंने बापू से शिकायत की कि भसाली भाई मेरा मजाक उडा रहे हैं। बापू बोले, "वह यह भी कहते हैं कि आप चाय पीकर बहुत मोटे हो गये हैं।"

चाकलेट-काण्ड

स्वर्गीय उग्र जी ने एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम 'चाकलेट' था। उसमे उन्होने अप्राकृतिक दुराचारो का मनोमोहक चित्रण किया था। उसमे कई वाक्य अत्यन्त अनुचित थे। एक व्यक्ति के मुख से कहलाया गया था कि "महाकवि तुलसीदास ने भगवान राम के बालरूप का जो वर्णन किया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी इस दुराचार के शिकार रहे होंगे।" इस वाक्य से मेरे हृदय को इतना धक्का लगा कि मैंने इस विषय पर एक लेख अंग्रेज़ी मे महात्मा जी के 'यग-इण्डिया' के लिए लिख भेजा और 'चाकलेट' पुस्तक भी साथ मे भेज दी। महात्मा जी ने 'चाकलेट' पुस्तक को पढ़ा और मुझे एक पत्र लिखा जिसमे उन्होने लिखा था कि उन पर पुस्तक का वैसा प्रभाव नही पडा था जैसा कि मुझ पर पडा। लेखक ने अप्राकृतिक दुराचार के प्रति घृणा उत्पन्न करने का ही प्रयत्न किया है। महात्मा जी ने मेरा लेख नही छापा। तब मुझे कलकत्ता से वर्धा की यात्रा करनी पडी। वहाँ जो बातचीत हुई उसका विवरण यहाँ दे रहा हूँ। उन्होने कहा था, "आपने अच्छा किया कि यहाँ आये, नही तो मैं गलत चीज का समर्थन कर देता।"

2

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

"क्या शान्ति-निकेतन न देखोगे?" यह प्रश्न दीनबन्धु ऐण्ड्रूज ने 3 मई, सन् 1918 को किया था। मैं उनके दर्शनार्थ कलकत्ता गया था और वह कविवर के जोडासाँको वाले मकान पर ठहरे हुए थे।

मैंने उत्तर दिया, "शान्ति-निकेतन तो हम लोगो के लिए तीर्थ-स्थान की तरह है। अवश्य ही वहाँ की यात्रा करूँगा।"

इस प्रकार आज से चौसठ वर्ष पूर्व मुझे शान्ति-निकेतन जाने का अवसर प्रथम बार मिला था। सौभाग्य से दूसरे दिन बुधवार था और वहाँ प्रत्येक बुधवार को प्रार्थना-मन्दिर मे गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रवचन हुआ करता था। मन्दिर मे एकत्रित थे विद्यार्थी-समाज, अध्यापकगण तथा अतिथि लोग और वे गुरुदेव की प्रतीक्षा कर रहे थे। धीरे-धीरे वह पधारे और वेदी के निकट बैठ गये। गुरुदेव का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था। उनका दिव्य मुखमण्डल दर्शक को मन्त्रमुग्ध-सा कर देता था। दीनबाबू और उनकी पार्टी ने बडे मधुर स्वर मे गुरुदेव का कोई गीत गाया, और तत्पश्चात् गुरुदेव का प्रवचन हुआ। वाणी की वह तेजस्विता, स्वर का वह उतार-चढ़ाव और शब्दो का वह चयन, सभी चीजें निराली थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो हम उपनिषद्-काल के ऋषि का प्रवचन सुन रहे हो। बँगला भाषा मैं थोडी ही जानता था, इसलिए उसका साराश ही समझ पाया।

दूसरे दिन जब मैं गुरुदेव की सेवा मे उपस्थित हुआ और चरण-स्पर्श करके उनकी आज्ञानुसार बैठ गया तो गुरुदेव ने अग्रेज़ी मे पूछा, "मेरा कल का भाषण क्या आप समझ सके? मैंने प्रार्थना-मन्दिर मे उसी समय सोचा था कि सम्भवत आप मेरी बँगला न समझ पा रहे होगे।"

मैंने निवेदन किया, "गुरुदेव, विद्यासागर और बकिम की बँगला तो मैं कुछ समझ लेता हूँ, पर आपकी बँगला का तो साराश ही मैं समझ पाया।" गुरुदेव ने मुसकराकर कहा, "वे लोग सस्कृतमय भाषा लिखते थे और मैं बोल-चाल की भाषा का व्यवहार करता हूँ।"

बातचीत के प्रसग मे मैंने गुरुदेव को सत्यनारायण कविरत्न के स्वर्गवास का खेदप्रद समाचार सुनाया। गुरुदेव ने कहा, "वह कवि तो अभी युवक ही थे। अपनी सुदर कविता मे 'रवि' और 'इन्द्र' किस चतुरता से लाए थे, इसका मुझे अब भी स्मरण है। उनकी असामयिक मृत्यु की बात सुनकर मैं दुखित हूँ।"

सन् 1914 मे जब गुरुदेव आगरा पधारे थे तो

सत्यनारायण कविरत्न ने उनकी अभ्यर्थना के लिए एक कविता लिखी थी, 'रवीन्द्र-वन्दना'। उसमे एक जगह पर ये पक्तियाँ आयी थी

रवि इन्द्र मिले दोउ एक जहँ, तउ अचरज कैसो अहै।
यह हिन्दी प्यारी चातकी तव रस कौं तरसत रहै॥

उस बार मैं शान्ति-निकेतन मे केवल तीन-चार दिन ही रह सका, पर उसके दो वर्ष बाद सन् 1920-21 मे तो चौदह महीने तक वहाँ रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ और तब गुरुदेव के दर्शन प्राय नित्य ही हुआ करते थे। उनसे वार्तालाप करने के अनेक अवसर भी प्राप्त हुए। मुझे इस बात का पछतावा है कि मैंने उसी समय गुरुदेव की सभी बातचीतो को लिखा नही। हाँ, कुछ के तो मैंने तभी लिपिबद्ध कर लिया था।

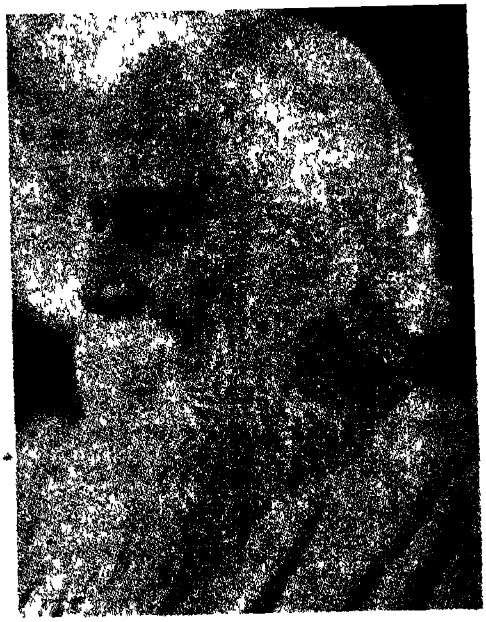
दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के निवास-स्थान वेणुकुज मे गुरुदेव पधारे थे। दीनबन्धु ऐण्ड्रूज से उनकी बातचीत चल रही थी, तत्पश्चात् गुरुदेव ने मेरी ओर देखकर कहा, "मैं तुमसे हिन्दी सीखना चाहता हूँ। मैं हिन्दी कुछ-कुछ तो जानता ही हूँ। हिन्दी भाषा मे स्त्री-लिंग-पुलिंग का जो भेद है वह मुझे सबसे अधिक कठिन प्रतीत होता है। क्या तुम कुछ समय मेरे लिए निकाल सकोगे?"

मैंने निवेदन किया, "यदि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ तो उसमे मैं अपना परम सौभाग्य ही समझूँगा।"

गुरुदेव "मैं अपनी शान्ति-निकेतन पुस्तक-माला मे से कुछ का अनुवाद स्वय ही हिन्दी मे करना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि थोडा-सा प्रयत्न करने पर मैं यह कर सकूँगा।"

मैंने कहा, "हम हिन्दी-भाषी आपकी किसी हिन्दी रचना को पाकर अपने को धन्य मानेंगे और हम लोग उस पर अभिमान भी करेंगे।"

शाल वृक्षो के कुज के नीचे गुरुदेव टहल रहे थे और मैं उनके पीछे-पीछे चल रहा था। अंग्रेजी मे



विश्वकवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर

एकाध बात मैंने निवेदन की। गुरुदेव ने मुडकर कहा, "आप मुझसे अंग्रेज़ी मे बातचीत क्यो करते हैं? जब मैं आपसे हिन्दी सीखना चाहता हूँ तो हिन्दी में वार्तालाप कीजिए, नही तो बँगला मे।"

जब मैंने निवेदन किया कि बँगला समझ तो लेता हूँ पर बोल नही सकता तो गुरुदेव ने कहा, "तब आप बँगला बोलना सीखिए।"

मैंने प्रार्थना की, "विधिवत् बँगला पढने का अवसर मुझे नही मिला। हिन्दी-बँगला शिक्षक से छ-सात वर्ष पूर्व जो कुछ सीखा था उसी से काम चलाता रहा हूँ।"

गुरुदेव ने कहा, "तब आप विधिवत् बँगला सीखिये। मैं पढ़ाऊँगा।" अत्यन्त व्यस्त होने पर भी गुरुदेव ने मुझे और पूर्व अफ्रीका से लौटे हुए एक गुजराती सज्जन श्री पटेल को बँगला पढाना प्रारम्भ किया। दुर्भाग्यवश यह क्रम बहुत दिनो तक नही चल सका, क्योंकि मुझे शान्ति-निकेतन छोडकर बम्बई चले

जाना पड़ा। परन्तु एक चिट्ठी मैंने अपनी टूटी-फूटी बँगला में उन्हें अवश्य भेजी थी और उसके उत्तर में गुरुदेव ने लिखा था, "आपनार बाँगला चिठि खानि सुन्दर होइया छे—दुइ एकटि जा भूल आछे ताहा यत्सामान्य।" (आपने सुन्दर बँगला चिट्ठी लिखी है। जो दो-एक भूलें हैं, वे मामूली हैं।)

गुरुदेव के एक जन्म-दिन के समारोह का मुझे अब तक स्मरण है। कवीन्द्र की वर्षगाँठ का दिन था। सघन आम्रवृक्षो के नीचे एक चौक पूरा गया था। उसमे गुरुदेव के बैठने के लिए स्थान बनाया गया था। आम की डालियो मे पतली डोरियो से चारो ओर कमल-पुष्प बाँधे गये थे। कवीन्द्र पधारे और श्री विधुशेखर शास्त्री महाशय ने निम्नलिखित कविता पढ़ी। नमूने के रूप मे कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत हैं

स्वस्ति साधु सकलै सभागतै-
र्गीयता सहृदयै समन्तत
श्रीमत समुदितो महाकवे
वर्षवृद्धिदिवस समृध्यताम्।

मगल भवतु ते जगत्कवे
मगली भवनी ते प्रियस्य न,
मगल भवतु नस्त्वदाश्रयाद्
मगल भवतु विश्वतोमुख।

शास्त्री महाशय विधुशेखर भट्टाचार्य के उस मुस्कराते हुए चेहरे की याद मुझे इस समय आ रही है, जब वह गुरुदेव के हाथ मे राखी बाँध रहे थे या माथे पर चन्दन लगा रहे थे।

अनेक हिन्दी लेखको तथा कवियो को गुरुदेव के दर्शन कराने मैं ले गया था और अत्यन्त व्यस्त होने पर भी उन्होने समय देने से कभी इन्कार नही किया। दिन-भर काम करने के बाद चाहे वह कितने ही थक गये हो, मेरे लिए पद्रह-बीस मिनट सदैव निकाल लेते थे और मैंने भी यह नियम बना लिया था कि जहाँ कोई हँसी की बात आई और गुरुदेव ने उल्लास के साथ कोई मजाक किया कि उसके बाद मैं इटरव्यू को समाप्त करते हुए नमस्कार करके शीघ्र ही चल देता था। 'मधुरेण समापयेत्' की नीति का मैंने निरन्तर अवलम्बन किया। इस बात का हमेशा ख़याल रखा कि गुरुदेव ऊबने न पावे।

गुरुदेव बड़ा मधुर मजाक करते थे। हिन्दी लेखको के एक दल के सामने बातचीत आरम्भ करते हुए उन्होने अग्रेजी मे कहा "आई होप यू विल एक्सक्यूज मी फार नॉट बीइग एबल टू स्पीक इन यूअर लैंग्वेज, हिन्दी, एज आई एक्सक्यूज बनारसीदास फॉर नॉट बीइग एबल टू स्पीक इन माई लैंग्वेज, बगाली।"

अर्थात् "मुझे आशा है कि आप मुझे हिन्दी न बोलने के कारण उसी प्रकार क्षमा कर देंगे जैसे मैंने बनारसीदास को बगला न बोलने के लिए कर दिया है।" पौने घण्टे की बातचीत मे एक बार फिर उन्होने मुझ पर मधुर व्यग्य किया, "पचास वर्ष पहले जब मैं हिन्दी सीखना चाहता था, तब इन महाशय का, जो मेरे दाहिने हाथ की ओर बैठे है, जन्म भी नही हुआ था।"

इस मजाक को सुनकर हम सबको हँसी आ गई। दाहिनी ओर मैं ही बैठा हुआ था।

पर इससे यह न समझना चाहिए कि गुरुदेव हिन्दी जानते न थे। उन्होने अनेक हिन्दी ग्रन्थ पढ़े थे। जब हिन्दी-शब्द-सागर निकला था तो उन्होने न जाने उसके कितने पृष्ठो पर निशान लगा दिये थे। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ के लेख भी वह बड़ी सरलता से पढ़ लेते थे। मुझे भली भाति स्मरण है कि 'विशाल भारत' के प्रथम अक मे प्रकाशित 'प्रेमचन्द का गद्य काव्य' नामक लेख को उन्होने प्रारम्भ से अन्त तक पढा था। वह लेख श्री रामदास गौड का लिखा हुआ था। जब मैं शान्ति-निकेतन गया तो गुरुदेव ने उस लेख का जिक्र किया और श्री प्रेमचन्द जी से मिलने की इच्छा भी

प्रकट की। स्वयं मेरी भी यह बड़ी अभिलाषा थी कि मैं इन दोनों महान् कलाकारों के सभाषण को सुन सकूँ, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं अपने उद्देश्य मे सफल नही हो सका।

इस बार मैंने गुरुदेव की सेवा मे अपनी इस असफलता का जिक्र करते हुए कहा, "प्रेमचन्द जी बड़े सकोचशील हैं, शायद इसी कारण वह शान्ति-निकेतन नही पधार सके।" इस पर गुरुदेव ने मुसकराते हुए कहा, "प्लीज डोण्ट फारगेट दैट आई एम ए पोएट एण्ड आई टू एम वैरी शाई बाई नेचर, दो आई हैव हैड टू ट्रेवल ऑल ओवर दि वर्ल्ड।"

(कृपया यह न भूलिये कि मैं कवि हूँ, और मैं भी स्वभावत बहुत सकोचशील हूँ यद्यपि मुझे तमाम दुनिया की यात्रा करनी पडी है।)

गुरुदेव हिन्दी भाषा के लचीलेपन पर मुग्ध थे और उन्होने कई बार 'आँख की किरकिरी' ('चोखेर बाली' के हिन्दी अनुवाद) की प्रशसा की थी। उन्होने एक बार बन्धुवर श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी से कहा था, "तुम्हारी भाषा बडी शक्तिशाली है। खेद इसी बात का है कि इस युग मे उसे कोई वैसा ही शक्ति-शाली आदमी नही मिला।"

गुरुदेव हिन्दी के परम शुभचिन्तक थे और न जाने कितने परामर्श उन्होने श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा श्री भगवतीप्रसाद चदोला को हिन्दी ग्रन्थो के लिखने-लिखाने के विषय मे दिये थे। हिन्दी बोलते मे उन्हे सकोच इसलिए होता था कि उन्हे बार-बार यह आशका बनी रहती थी कि कही उनसे कोई भूल न हो जाये। किसी भी भाषा को अशुद्ध बोलने मे उनकी अन्तरात्मा हिचकती थी।

गुरुदेव हिन्दी का प्रचार चाहते थे और खूब चाहते थे, यद्यपि उनकी कार्य-पद्धति भिन्न थी। उन्होंने एक बार कहा था "डू नॉट रेस्ट कन्टेण्टेड विद दी एक्सीडेंटल एडवांटेज ऑफ यूअर नम्बर। एट्रैक्ट पीपल बाई क्रिएटिंग ग्रेट लिटरेचर।"

(आप लोग इस बात से सतुष्ट न रहें। हमारी भाषा हिन्दी के बोलने वाले इतने ज्यादा हैं, क्योंकि सख्या का अधिक होना आकस्मिक ही है। आप लोग उच्च साहित्य की सृष्टि करके अन्य भाषा-भाषियो को अपनी ओर आकर्षित करें।)

पारस्परिक सहयोग की भावना

जब श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार तथा उनकी पार्टी शान्ति-निकेतन गई थी, उस समय गुरुदेव ने 40-45 मिनट तक बडे आनन्दपूर्वक हम सबके साथ वार्तालाप किया था। इस बातचीत के सिलसिले मे उन्होने कहा था "हम लोग एक-दूसरे को बहुत ही कम जानते हैं। हम एक-दूसरे की मनोवृत्ति को नही समझते, निकट सम्पर्क मे नही आते और वस्तुत एक-दूसरे से अलग रहते हैं। इस अज्ञान से असत्य धारणाएँ उत्पन्न होती है और वे ही सर्वव्यापी प्रान्तीयता के मूल मे हैं। प्रान्तीयता की यह भावना मूर्खतापूर्ण ही नही, धूर्तता-पूर्ण भी है। जैसा कि मैंने कहा है, इसकी जड अज्ञान मे है। हम आपको नही जानते, मानो आप हमारे लिए विदेशी हो। हमे एक-दूसरे से परिचित होना चाहिए।"

जब कविवर श्री माखनलाल चतुर्वेदी तथा जैनेन्द्र जी गुरुदेव के दर्शनार्थ शान्ति-निकेतन गये थे, तब उन्होने कहा था "मैं हिन्दी भाषा-भाषी लोगो के निकट सम्पर्क मे आने के लिए उत्सुक हूँ। यहाँ हम लोग सस्कृति-प्रचार के लिए जितना कुछ भी कर सकते हैं, कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि हिन्दी-भाषी लोग यहाँ आयें, हमारे अनुभव मे हिस्सा बटाएँ और अपने अनुभव से हमे लाभान्वित करें।" इस पर जब मैंने कहा, "हम लोगों को तो यहाँ तीर्थ-यात्रा के विचार से भी आना चाहिए," तो गुरुदेव ने तुरन्त उत्तर दिया, "हम तो यह चाहते हैं कि हिन्दी कवि और लेखक यहाँ पधार-कर हमारे साथ रहें, न कि सिर्फ तीर्थ-यात्रा के ख्याल

से यहा आवें। मैं हिन्दी को आश्रम मे एक सजीव भाषा बनाना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि शान्ति-निकेतन समस्त भारतीय सस्कृतियो का एक केन्द्र बने। मेरी अभिलाषा है कि शान्ति-निकेतन मे समस्त भारतीय भाषाओ और एशिया की सस्कृतियो के बीच सरलतापूर्वक पारस्परिक सहयोग तथा आदान-प्रदान हो।"

गुरुदेव के इस आदेश को ध्यान मे रखकर हमने वहाँ शान्ति-निकेतन मे हिन्दी-भवन बनवाने का निश्चय किया था। तीन वर्ष के प्रयत्न के बाद हमारा वह स्वप्न सत्य सिद्ध हुआ। हलवासिया ट्रस्ट की ओर से हिन्दी-भवन का निर्माण हो गया। यह बात ध्यान देने की है कि उसकी नीव दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ ने रखी थी और उस भवन का उद्घाटन श्रीमान् प० जवाहर-लाल नेहरू ने किया था। इस महान् यज्ञ मे श्रीमान् भागीरथ जी कानोडिया तथा सीताराम जी सेक्सरिया ने बडी मदद दी थी।

अनेक हिन्दी भाषा-भाषियो को शान्ति-निकेतन की तीर्थ-यात्रा और गुरुदेव के दर्शन कराने का ज़िम्मा मेरा ही था। एक बार मैंने मजाक मे गुरुदेव से कहा, "गुरुदेव, आई एम दि पाण्डा ऑफ शान्ति-निकेतन एज़ वैल एज़ ऑफ वर्धा।" (अर्थात् गुरुदेव, मै शान्ति-निकेतन और वर्धा दोनो का पडा हूँ।)

गुरुदेव ने तुरन्त उत्तर दिया, "एण्ड यूअर ट्रेड इज़ फ्लोरिशिंग दीज़ डेज़ वेरी मच।" (अर्थात्, आजकल आपकी पडागिरी का यह व्यापार खूब चमक भी रहा है।)

बात यह हुई कि मैं उन्ही दिनो अनेक साहित्यिको को गुरुदेव के दर्शन कराने ले गया था। भाई हजारी-प्रसाद जी द्विवेदी मेरे असिस्टेंट पडा ही नही थे, वह हिन्दी-भवन की आत्मा भी थे।

एक बार मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की, "कृपा कर आप अपनी उस सुन्दर बँगला कविता को, जो आपने दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ के स्वागत मे सन् 1913 या 1914 मे लिखी थी, मेरे लिए अपने अक्षरों में नकल कर दीजिए।"

गुरुदेव ने पूछा, "आपको वह कविता मिल कहाँ गयी?" निवेदन किया, "यही की एक पुरानी हस्त-लिखित पत्रिका मे।"

गुरुदेव ने कहा, "अच्छा लाइये, मैं पुन लिख देता हूँ।"

गुरुदेव के अक्षरो की लिखी हुई वह कविता आज भी मेरे सग्रहालय की शोभा बढ़ा रही है

प्रतीचिर तीर्थं हते प्राण रसधार।
हे बन्धु, ऐनेछ तुमि, करि नमस्कार।
प्राची दिल कंठे तव वरमाल्य तार,
हे बन्धु, ग्रहण कर, करि नमस्कार।
खुलेछे तोमार प्रेमे आमादेर द्वार,
हे बन्धु, प्रवेश कर, करि नमस्कार।
तोमारे पेयेछि, मोरा दानरूपे जार,
हे बन्धु, चरणे तार करि नमस्कार।

—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गुरुदेव के दर्शन मैने अनेक परिस्थितियो मे किये थे। उन्हे शान्ति-निकेतन के लिए आर्थिक चिन्ताओ से युक्त देखकर हृदय को बडा क्लेश होता था। एक बार निजी बातचीत मे उन्होंने कहा था—

"देश के एक बडे नेता ने मुझसे पूछा, 'आपको शान्ति-निकेतन के लिए कितना रुपया चाहिए,' मैंने कहा, 'यही पाच-छ लाख रुपये पर्याप्त होगे।' उन्होने कहा, 'बस, केवल इतने ही?'

"इतनी छोटी रकम बतला कर मैं उनकी इज्जत मे गिर गया, पर वह कुछ भी सहायता न कर सके।"

यद्यपि नेता महोदय शान्ति-निकेतन को कुछ न दिला सके, तथापि आगे चलकर महात्मा गाधी जी ने एक अच्छी रकम उन्हे दिलाकर उस समय चिन्ता-मुक्त कर दिया था। यहाँ पर यह बतला देना आव-श्यक है कि हमारे स्वर्गीय राष्ट्रपति श्रद्धेय बाबू राजेन्द्र

प्रसाद जी ने विशेष रूप से उस दिशा मे प्रयत्न किया था। उन्होने पटना से आकर महात्मा गांधी जी की सेवा मे शान्ति-निकेतन के आर्थिक सकट की बात रखी थी।

गुरुदेव का आत्म-दान निरन्तर चलता ही रहता था। अपनी भाषा, अपने देश और फिर ससार को उन्होने क्या नही दिया ? अपने ग्रन्थो की समस्त आय वह शान्ति-निकेतन को ही अर्पित कर देते थे और सबसे अधिक श्रम उन्हें तब पडता था, जबकि वृद्धावस्था मे भी उन्हें चन्दा मागने के लिए देश-विदेश की यात्रा करनी पडती थी। सैकडो, सहस्रो शिक्षको-तथा विद्यार्थियो के जीवन को विकसित करने मे उन्होने अपूर्व सहायता दी थी। घी, स्याही इत्यादि बीसियो चीजो के उन्हे प्रमाणपत्र देने पडते थे। एक बार किसी आश्रमवासी ने गुरुदेव की प्रवृत्ति की आलोचना की तो मुसकराकर उन्होने कहा, "देखो, एक चीज के लिए मैं कभी प्रमाणपत्र न दूंगा— यानी सेफ्टी रेजर के लिए।"

एक बार लोकमान्य तिलक ने गुरुदेव से प्रार्थना की थी, "आप विलायत की यात्रा कीजिए।" उन्होने उत्तर दिया, "मैं तो कोई राजनैतिक नेता नही। मेरी यात्रा से क्या लाभ होगा ?" लोकमान्य तिलक ने तुरन्त ही कहा, "विलायत मे आपकी उपस्थिति ही हमारे स्वराज्य-सग्राम मे सहायता प्रदान करेगी।"

गुरुदेव का जिक्र करते हुए स्वर्गीय रामानद चट्टोपाध्याय का स्मरण आ जाना स्वाभाविक ही है। बडे बाबू ने शान्ति-निकेतन के लिए क्या-क्या नही किया ? उन्होने लिखा था कि गुरुदेव ने 67-68 वर्ष तक अपनी साहित्य सेवा निरन्तर जारी रखी थी और मुद्रित रूप मे उनकी रचानएँ बडे रायल आठपेजी साइज के 17-18 हजार पृष्ठो मे आवेगी।

जब गुरुदेव स्वर्गवासी हुए थे तो बडे बाबू ने लिखा था, "मेरी आकाक्षा थी कि कवि के सामने ही मेरी मृत्यु हो। रवीन्द्र-विहीन जगत् की कल्पना मैंने कभी न की थी।" निस्सन्देह बडे बाबू गुरुदेव के बड़े भक्त थे। यही बात दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूज के विषय मे भी कही जा सकती है। उन्होने भी शान्ति-निकेतन के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था।

उन दिनो का स्मरण करके हृदय मे एक हूक-सी उठती है जबकि गुरुदेव, ऐण्ड्रूज और बडे दादा की त्रिमूर्ति के दर्शन प्राय नित्यप्रति शान्ति-निकेतन मे होते थे।

गुरुदेव के अन्तिम दर्शन करने का सौभाग्य मुझे 1940 मे प्राप्त हुआ था। उस समय उनके नेत्रो की ज्योति मन्द हो चली थी। गुरुदेव ने मजाक मे कहा, "तुम्हारी लम्बाई से ही मैंने अनुमान कर लिया कि तुम बनारसीदास हो।"

जब मैंने यह बात बधुवर सियारामशरण जी गुप्त को लिखी तब उन्होने उत्तर मे लिखा, "जिन नेत्रो ने इतना देखा और हम लोगो को इतना दिखलाया, उनकी ज्योति का मन्द होना अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है।"

शान्ति-निकेतन मे गुरुदेव के चरणो के निकट बिताए हुए दिनो की अनेक मधुर स्मृतियाँ इस समय मेरे दिमाग मे चक्कर काट रही है।

गुरुदेव अपनी 'सेकाल' शीर्षक कविता (आमि यदि जन्म निलेम कालिदासेर काले'—यदि मैं कालिदास के समय मे जन्म लेता) पढ़ रहे हैं और श्रोतागण उसका आनन्द ले रहे हैं। द्वार पर खडा हुआ मैं भी उनके शब्दो की ध्वनि से मुग्ध होकर सुन रहा हूँ और आधीपढ़ी जो कुछ बँगला समझ मे आ रही है उसी से अपना सन्तोष कर रहा हूँ। (मालूम नही कि उस कविता को गुरुदेव की वाणी मे टेप रिकार्ड पर ले लिया गया था या नही।)

अपने मारवाडी मित्रो को लेकर मैंने शान्ति-निकेतन की यात्रा की है और उनमे से किसी ने गुरुदेव से प्रार्थना की है, "गुरुदेव, आप गायत्री मन्त्र पढ़-

कैर सुनाइए।" गुरुदेव उनकी इस फर्माइश को पूरा कर रहे हैं। उसी समय मैंने भी धृष्टता करके एमर्सन का एक अँग्रेज़ी जीवन-चरित गुरुदेव के हस्ताक्षरो के लिए आगे बढ़ा दिया है और गुरुदेव ने उस पर एक वेद-मन्त्र लिख दिया है

यो विद्यात् सूत्र वितताम् यस्मिन्नोता प्रजा इमा ।
सूत्र सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मण महत् ॥
(अथर्ववेद)

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

असहयोग आन्दोलन के दिन है और गुरुदेव अभी अमेरिका की यात्रा से लौटे हैं। कुछ उत्साही, किन्तु नासमझ असहयोगियो द्वारा उन पर दबाव डाला जा रहा है कि वह आन्दोलन के पक्ष मे अपना सहयोग प्रदान करें। उन्ही दिनो एक विदेशी यात्री शान्ति-निकेतन आए हुए हैं और गुरुदेव उनसे कह रहे हैं, "इस देश मे जब भगवान गौतम बुद्ध पधारे थे तब सब लोगो ने उन्हे अपनी सर्वोत्तम चीजे भेट की थी। उसी तरह महात्मा गाधी जी के आगमन पर मैं अपनी सर्वोत्तम वस्तु, शान्ति-निकेतन, उन्हे भेट करना चाहता हूँ। वसन्त के आगमन पर प्रत्येक वृक्ष या पौधा अपना विशेष फल या पुष्प भेंट करता है। कोई यह नही चाहता कि गुलाब का पौधा जूही का पुष्प प्रदान करे या गेंदे का पौधा चमेली दे दे। फिर मुझसे अन्य किसी दान की आशा क्यो की जाती है ?"

मैं भी दूर खडा-खडा छिपकर इस बातचीत को सुन रहा हूँ।

अपने प्राचीन नियमानुसार मैं अतिथिशाला मे दोपहर का विश्राम कर रहा हूँ कि किसी ने आकर मुझे जगा दिया है "गुरुदेव आपको याद कर रहे हैं।" मैं उठकर उनकी सेवा मे उपस्थित होता हूँ। गुरुदेव कहते है, "मैं आपके मारवाडी मित्रों से अपील करना चाहता हूँ कि वे हमारे महिला विद्यालय के छात्र-निवास के लिए एक-आध कमरा बनवा दें। क्या यह ठीक होगा ?" और मैं आग्रहपूर्वक कह रहा हूँ, "नही गुरुदेव, आपको 'हिन्दी-भवन' के लिए ही माँग करनी चाहिए।" गुरुदेव मेरी प्रार्थना पर वैसे ही कर रहे हैं। वह दृश्य अब भी मेरी आँखों के सामने है जब मैं मारवाडी बालिका विद्यालय की छात्राओं के साथ श्री सीताराम जी सेक्सरिया को गुरु-देव की सेवा मे ले गया था और गुरुदेव ने उनसे 'हिन्दी-भवन' के लिए सहायता की प्रार्थना की थी। वस्तुत शान्ति-निकेतन के 'हिन्दी-भवन' की नीव उसी दिन पडी थी।

और उस रात की बात मुझे अब भी याद है जब लगभग बारह बजे मैंने अपनी पुस्तक 'भारत-भक्त ऐण्ड्रूज' को समाप्त किया था, जिसकी भूमिका बहुत महीने पहले महात्मा जी ने लिख दी थी और बाद मे गुरुदेव ने भी लिखी। शान्ति-निकेतन के उन प्रात -कालो की याद मुझे अब भी आ रही है जब चिडियो के चहचहाने के साथ-साथ विद्यार्थी अपना गान गाते हुए निकलते थे। आश्रम के शाल वृक्ष, लताएँ, अशोक और आम्रवृक्षो तथा लताओ और पारिजात के पुष्पो की स्मृति भी ज्यो-की-त्यो ताजा है।

15 जून, सन् 1920 को दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के आदेश का पालन करके डेली कॉलेज (इन्दौर) की प्राध्यापकी छोडकर चौदह महीने मुझे शान्ति-निकेतन मे रहने और गुरुदेव के नित्यप्रति दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसे मैं अपने पूज्य माता-पिता के आशीर्वाद अथवा पूर्वजन्म के पुण्यो का फल ही मानता हूँ।

3

दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़

पुस्तकालयो से मुझे प्रेम रहा है। जहाँ कही भी मैं रहा सप्ताह मे तीन-चार बार स्थानीय लाइब्रेरी मे समाचार-पत्र पढने के लिए अवश्य जाया करता था।

दीनबन्धु का परिचय मुझे फर्रुखाबाद की सार्वजनिक लाइब्रेरी मे मिला। 'मॉर्डन रिव्यू' के एक अक मे मैंने यह पढा कि जब मिस्टर ऐण्ड्रूज अफ्रीका गये थे तो डरबन स्टेशन पर अनेक भारतीय उनके स्वागतार्थ पधारे थे। तब तक रेडियो का आविष्कार नही हुआ था। यह बात 1913 की है। मि० ऐण्ड्रूज का अनुमान था कि सभी लीडर जेल मे होगे। पोलक साहब को स्टेशन पर देखकर मिस्टर ऐण्ड्रूज ने पूछा, "आप यहा कैसे आ गये?" पोलक ने जबाब दिया, "हम सब जेल से छूट चुके है।" मि० ऐण्ड्रूज ने कहा, "तो मि० गाधी कहाँ है?" गाधी जी वही खडे हुए थे। उन्होने कहा, "मैं ही गाधी हूँ।" मि० ऐण्ड्रूज ने तुरन्त ही झुककर उनके चरण स्पर्श किये और चरण-रज माथे पर लगा ली। इससे यूरोपियन लोगो मे तहलका मच गया। कई पत्रो ने ऐण्ड्रूज की कठोर आलोचना की। मैं तब तक महात्मा जी का भक्त बन चुका था। दीनबन्धु ऐण्ड्रूज की इस श्रद्धा का मेरे ऊपर जबरदस्त प्रभाव पडा और उस समय मैंने अपने मन मे कहा, "यह व्यक्ति दरअसल अभिनन्दनीय है जो शासक जाति का होते हुए भी हमारे एक गण्यमान्य नेता का इतना सम्मान करता है। इसके दर्शन कभी न कभी अवश्य करूँगा।" यह बात सन् 1914 की है। उस दिन भी मैंने कल्पना नही की थी कि दीनबन्धु का प्रथम जीवन-चरित मेरे द्वारा ही लिखा जायेगा और उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण सामग्री, जिसमे उनके 290 पत्र हैं, राष्ट्रीय अभिलेखागार मे मेरे द्वारा ही सुरक्षित हो जायेगी।

आगे चलकर होरेस अलेक्जेण्डर तथा मिस अगाथा हैरीसन के अनुरोध पर मैंने मिस मार्जरी साइक्स के साथ मिलकर दीनबन्धु ऐण्ड्रूज का जीवन-चरित अँग्रेजी मे लिखा। ग्रन्थ तो दरअसल कुमारी साइक्स का ही लिखा हुआ है, यद्यपि उन्होने मेरा नाम भी अपने साथ जोड दिया है। हाँ, मेरे द्वारा सगृहीत सामग्री का उपयोग उन्होने अवश्य किया था।

हाल ही मे लकास्टर यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर रिकर साहब ने दीनबन्धु का एक नवीन जीवन-चरित 'ऑरडील ऑफ लव' के नाम से लिखा है। पहले उनका विचार दीनबन्धु का नवीन जीवन-चरित लिखने का नहीं था पर राष्ट्रीय अभिलेखागार मे मेरे सग्रह को देखकर वह इतने प्रभावित हुए कि उन्होने मि० ऐण्ड्रूज की एक नवीन जीवनी लिखने का निश्चय कर लिया।



कुछ आत्मीय क्षण दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के साथ लेखक

दीनबन्धु से मेरा पत्र-व्यवहार तो 1914 से ही हो रहा था पर उनके दर्शन उन्नीस सौ अठारह मे हुए। तत्पश्चात् बाईस वर्ष तक उनसे मेरा निकट सम्पर्क रहा। एक प्रसिद्ध लेखक ने लिखा था, "भारत मे जितने अँग्रेज आये उनमे केवल तीन का ही नाम खास तौर पर स्मरण किया जायेगा। उनमे दीनबन्धु ऐण्ड्रूज का नाम सर्वोपरि है। शेष दो के विषयमे मत-भेद हो सकते है। महात्मा गाधी उन्हे अपने छोटे भाई के समान ही मानते थे और मेरी पुस्तक की भूमिका मे उन्होने लिखा था, "दीनबन्धु से बढ़कर सच्चा, विनम्र, और भारत-भक्त दूसरा व्यक्ति देश मे विद्यमान नही है।"

बाईस वर्षों मे दीनबन्धु से मिलने और बातचीत करने के सैकडो ही अवसर मुझे मिले। जितना ऋणी मैं उनका हूँ उतना किसी दूसरे का नही। उन्हीके कारण मैं गुरुदेव कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चरणो के निकट पहुँच सका और तत्पश्चात् महात्मा गाधी जी के आश्रम मे भी जाकर चार वर्ष रहा। दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के जीवन की मुख्य घटनाएँ अनेक हिन्दी-अँग्रेज़ी ग्रन्थो मे छप चुकी हैं। उनको यहाँ दुहराने की जरूरत नही। महात्मा जी ने एक बार लिखा था, "जब तक अँग्रेज़ जाति मे एक भी ऐण्ड्रूज विद्यमान है तब तक हम अँग्रेज़ो से घृणा नही कर सकते।" गाधी जी के इस कथन की पुष्टि बडे आश्चर्य-जनक ढग से हुई। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी अर्जुनलाल सेठी अहमदाबाद कॉंग्रेस मे पधारे थे और उन्होने साबरमती पहुँचकर मुझे भी दर्शन दिये थे। उन्होने मुझे कहा, "हम लोग मि० ऐण्ड्रूज को मार डालना चाहते थे।" मेरे हृदय को धक्का लगा। मैंने पूछा, "ऐसा क्यो?" वह बोले, 'ऐण्ड्रूज जैसे व्यक्ति के जीवित रहते हम अँग्रेज़ो से घृणा नही कर पाते, वह हमारे मार्ग मे बाधक हैं।" जब मैंने यह घटना दीनबन्धु ऐण्ड्रूजको सुनाई तो वह हँसकर बोले, "श्री अर्जुनलाल सेठी के लड़के को तो मैंने ही शान्ति-निकेतन मे भर्ती कराया था।"

मि० ऐण्ड्रूज के जीवन की एक घटना मुझे याद आ रही है। पजाब मे मार्शल लॉ उठ जाने के बाद वह सर्वप्रथम पजाब गये। जगह-जगह घूम-घूमकर उन्होने ब्रिटिश सिपाहियो के अत्याचारो के बारे मे छान-बीन की। उस समय एक सिख सिपाही उनके सामने आया और उसने अपने ऊपर हुए अत्याचारो का विवरण सुनाया, "किसी एक गाँव मे तार कट गये थे। ब्रिटिश सिपाहियो ने उस गाँव को घेर लिया और मुझे, चूकि मैं नम्बरदार था, पकडकर पेड़ से

बांध दिया और मेरे चूतड़ों पर कोड़े लगाए।" इतना कहकर उस सिख नम्बरदार ने अपनी धोती खोलकर कहा, "देखिए साहब, पीठ पर कोड़े के निशान अब भी हैं। अगर कोई जहाज का किराया दे दे तो मैं ब्रिटेन के बादशाह के पास जाकर कहूँ, देखिये आपके सिपाहियों ने मेरे साथ क्या बर्ताव किया है।" वह सिख सिपाही ब्रिटिश फौज मे काम कर चुका था। यह सुनकर मि० ऐण्ड्रूज का हृदय द्रवित हो गया और उन्होने झुककर उस सिपाही के चरण छू लिये। वह बोला, "साहब यह आप क्या करते है?" मि० ऐण्ड्रूज ने कहा, "मैं अँग्रेज हूँ और मेरी जाति वाले ने आपका यह अपमान किया।" वह सिख सिपाही ऐण्ड्रूज से ऊँचा था। उसके आँसू टपक कर ऐण्ड्रूज के कधे पर गिरने लगे। वह बोला, "इतने महीने बाद मुझे तसल्ली की यह बूँद मिली है।" मि० ऐण्ड्रूज का उसके ये दो शब्द 'तसल्ली की बूँद' याद रह गये थे।

ऐण्ड्रूज का जन्म इग्लैंड मे 12 फरवरी, 1871 ई० मे हुआ था और 1904 मे वह भारत पधारे थे। उस दिन को वह अपना द्वितीय जन्म-दिवस मानते थे। भारत की पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव उन्होने सन् 1910 मे जनता के सामने रखा था। प० जवाहर लाल नेहरू ने अपने आत्म-चरित मे इसका उल्लेख भी किया है। यद्यपि दीनबन्धु ऐण्ड्रूज ने पूरे छत्तीस वर्ष तक विभिन्न क्षेत्रो मे भारत की सेवा की तथापि उन्हे भारतीय समझना भूल होगी। वह तो एक विश्व नागरिक थे।

मैं इसे अपने जीवन का परम सौभाग्य मानता हूँ कि मैं उनके निकट सम्पर्क मे आ सका। यद्यपि मेरी महापुरुषो की खोज की यात्रा क्रोपाटकिन से ही आरम्भ हो चुकी थी तथापि मुझे मार्गदर्शन मिला, दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के सम्पर्क से।

4

ऋषिवर रामानन्द चट्टोपाध्याय

कलकत्ता काग्रेस का अवसर था। महात्मा गाधी जी ने मुझे शाम को पन्द्रह मिनट का वक्त दिया था। मैं ठीक समय पर पहुँचा भी। महात्मा जी ने कहा, "मुझे जीवन लाल अलम्यूनियम वाले के घर जाना है। तुम रास्ता जानते हो, साथ-साथ चलो। बातचीत भी हो जायेगी।" मैं ठीक-ठीक रास्ता तो नही जानता था, फिर भी साथ हो लिया। हम लोगो के भटक जाने से आधा घटा ज्यादा टाइम लग गया। मैंने काफी बातचीत की। प्रसगवश रामानन्द बाबू का जिक्र आ गया तो महात्मा जी ने तुरन्त ही कहा, "रामानन्द बाबू तो ऋषि है।"

इस वाक्य मे बापू ने बडे बाबू के सम्पूर्ण चरित्र को मानो चित्रित ही कर दिया था। बड़े बाबू की भव्य मूर्ति अत्यन्त आकर्षक थी। वह लम्बी साधना तथा निरन्तर तपस्या की प्रतीक थी और उसका जादू जैसा प्रभाव पडता था। जब फ्रास के महान् कलाकार रोमा रोला ने उन्हे पहली बार देखा था तो इस आशय का पत्र लिखा था, "स्वभाव से वह (रामानन्द चटर्जी) कितने सहृदय हैं! जिस क्षण कोई उनका दर्शन करेगा, उसी क्षण से उन्हें प्रेम करने लगेगा। उनसे मानो प्रेम तथा सज्जनता की किरणें फूटती हैं और कितनी सादगी तथा विनम्रता है उनमे! उनकी भव्य मूर्ति मुझे टालसटाय की याद दिलाती है, पर उनमे माधुर्य तथा करुणा टाल्सटाय से अधिक ही है।"

ऐसे महामानव के चरणो के निकट दस वर्ष तक बैठने का सौभाग्य मुझे कब और कैसे प्राप्त हुआ उसकी कहानी शायद दूसरो के लिए मनोरजक हो। सन् 1917 ई० की बात है। उन दिनो मै 'अभ्युदय' मे काम करता था और श्रीकृष्णराम मेहता जी की कृपा से लीडर भवन मे एक कमरा मुझे रहने के लिए मिल गया था। शाम को टहलते-टहलते मै श्री रामरखसिह सहगल के 'चाँद' कार्यालय पर जा निकला। वहाँ श्री सहगल जी ने मुझे बतलाया कि 'मॉडर्न रिव्यू' आफिस से एक हिन्दी मासिक पत्र निकलने वाला है। मैंने उनसे पूछा कि यह खबर उन्हे कहाँ से मिली? तब उन्होने श्री रामदास जी गौड का नाम लिया जो कायस्थ पाठशाला मे रामानन्द बाबू के अधीन काम कर चुके थे।

मैं सीधे पण्डित सुन्दरलाल जी के निवास-स्थान पर गया। उनसे मेरा परिचय सन् 1917 से ही था और वह मेरे लिए गुरुतुल्य पूज्य रहे हैं। पण्डित जी ने मुझे तुरन्त ही आदेश दिया कि मैं उस पत्र के सम्पादक पद के लिए अर्जी भेज दूँ, वह सिफारिश कर देंगे। यद्यपि मुझे आशा नही थी कि मुझे वह कार्य मिल ही

जायेगा, तथापि पण्डित जी की आज्ञा का पालन मैंने कर दिया। पण्डित सुन्दरलाल जी ने अलग से, अपनी चिट्ठी मे क्या लिख दिया, इसका मुझे पता नही, पर श्रद्धेय रामानन्द बाबू ने उनकी बात मान ली। पण्डित जी का उनका बहुत पुराना परिचय था और पण्डित जी के हृदय मे रामानन्द बाबू के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रही है।

उस वक्त मैंने जो धृष्टतापूर्ण पत्र श्रद्धेय रामानन्द बाबू की सेवा मे भेजा था, उसकी प्रति अकस्मात् मेरे पुराने कागजो मे रह गई। यह चिट्ठी अंग्रेजी मे 17-5-27 को फीरोजाबाद से लिखी गई थी। उसका सारांश यह था।

" यद्यपि मैं आपके 'मॉडर्न रिव्यू' को सर्वोत्तम मासिक पत्र मानता हूँ, तथापि मैं यह नही चाहता कि 'विशाल भारत' उसका अनुवाद मात्र हो। मुझे विश्वास है कि आप भी ऐसा न चाहते होगे। हमारे हिन्दी पत्र का अपना अलग ही व्यक्तित्व होना चाहिए। निस्सदेह कुछ वर्षों तक उसे 'मॉडर्न रिव्यू' की सामग्री पर निर्भर रहना पडेगा फिर भी उसका व्यक्तित्व भिन्न ही रहे, ताकि वह 'मॉडर्न रिव्यू' से बहुत कुछ लेकर उसे कुछ दे भी सके। आपकी जानकारी के लिए मैं इतना और भी निवेदन कर दूँ कि मेरा सम्बन्ध किसी भी राजनैतिक दल से नही है और मैं अपने हृदय के अन्तस्तल मे साम्प्रदायिकता से घृणा करता हूँ। मुझे शान्ति-निकेतन मे (जो आपके सुपुत्र मुलू का निवास-स्थान था) स्वाधीनता मिली थी और मैं उसकी रक्षा के लिए अत्यन्त इच्छुक हूँ। यदि आपने अपनी हिन्दी पत्रिका को सम्पादित करने का अवसर मुझे प्रदान किया तो मैं आपका कृतज्ञ होऊँगा क्योंकि मेरा विश्वास है कि आपके अधीन काम करते हुए मुझे अपने सिद्धान्त बेचने नही पडेंगे। मि० ऐण्ड्रूज का मेरे प्रति वैसा ही स्नेह है जैसा किसी माता का अपने पुत्र के प्रति होता है और यदि मुझे काम करने का मौका मिला तो उन्हें अत्यन्त हर्ष होगा। वह मेरी बढ़िया से बढ़िया सिफारिश कर सकते है, लेकिन मैं आपको धर्मसकट मे नही डालना चाहता।

"आप सम्पादक की जगह के लिए पत्रों में विज्ञापन छपा सकते हैं, और फिर अपने मन का आदमी चुन सकते हैं।"

छियालीस वर्ष पहले की अपनी चिट्ठी को पढकर मुझे आज लज्जा आती है। तब मैं कुल जमा 34-35 वर्ष का ही था और अपनी अनुभवहीनता के कारण मैंने ऐसा हिमाकत-भरा पत्र लिख भेजा था। पर बड़े बाबू बहुत सुलझे हुए दिमाग के व्यक्ति थे और उन्होंने मेरी बचपने की धृष्टता को क्षमा कर दिया होगा।

मेरा यह भी अनुमान है कि अपने स्वर्गीय पुत्र मुलू (प्रसाद) के नाम के उल्लेख ने उनके हृदय को स्पर्श कर लिया होगा।

रामानन्द बाबू बडे स्नेही जीव थे और प्रसाद की पवित्र स्मृति को वे कभी नही भूले। उन्होने निजी व्यक्तियो को भेंट देने के लिए 'प्रसाद' पर एक पुस्तिका छपवाई थी, जिसकी प्रति सन् 1920 मे मुझे दीनबन्धु ऐण्ड्रूज से प्राप्त हुई थी।

जब मेरा कलकत्ता जाना करीब-करीब तय हो चुका था तो मैंने एक मूर्खता और भी कर दी। मैंने अपने रिश्तेदार से सुन रखा था कि कलकत्ते का जलवायु अच्छा नही है और इसी भ्रम मे पडकर मैंने रामानन्द बाबू को अस्वीकृति का पत्र भेज दिया।

यही नही, उनकी सेवा मे एक चिट्ठी बन्धुवर जयचन्द्र जी विद्यालकार की जोरदार सिफारिश करते हुए भेज दी। उस पर रामानन्द बाबू ने पण्डित सुन्दरलाल जी को लिखा और उनका आग्रहपूर्ण पत्र मुझे मिला। मैं उन दिनो पचास रुपये महीने पर बन्धुवर हरिशकर जी शर्मा के अधीन 'आर्यमित्र' मे सहायक सम्पादक का कार्य कर रहा था और 175 रुपया मासिक की 'विशाल भारत' की नौकरी मैंने



अध्ययन मे व्यस्त रामानन्द चट्टोपाध्याय

अस्वीकृत कर दी थी। भाई हरिशकर जी ने भी 'विशाल भारत' के कार्य को स्वीकार कर लेने पर ज़ोर दिया और इस प्रकार मैंने 31 अक्तूबर, 1928 को कलकत्ते पहुँचकर 'विशाल भारत' का कार्य प्रारम्भ कर दिया। मैं वहा 10 अक्तूबर, 1937 तक रहा और उन दस वर्षों को मैं अपने पत्रकारिता जीवन के सर्वोत्तम वर्ष मानता हूँ।

स्व० रामानन्द बाबू के, जिन्हे हम सब बड़े बाबू के नाम से पुकारते थे, जीवन के विषय मे बहुतो ने लिखा है, इसलिए मै केवल अपने अनुभव की बात ही लिखूँगा।

रामानन्द बाबू स्वय बड़े स्वाधीनता प्रेमी थे। उन्होने दस वर्षों मे मुझे पूरी स्वाधीनता दी, यहाँ तक कि जब मैंने उनके हिन्दू महासभा के प्रधान बनने पर उन्ही के पत्र मे उनके विरोध मे लिखा तो उन्होने बड़ी सज्जनतापूर्वक उस आलोचना को सहन किया।

जब सूरत मे हिन्दू महासभा के अधिवेशन का सभापतित्व करके वह लौटे तो 'विशाल भारत' के कमरे मे आकर उन्होने मुझसे कहा, "पण्डित जी, अगर हिन्दी पत्रो ने मेरे भाषण पर कुछ लिखा हो तो मुझे बतलाइये।"

मैंने कहा, "आपके पत्र 'विशाल भारत' ने जो लिखा है, कृपया उसे पढ लीजिए।" और 'विशाल भारत' की प्रति मैंने उन्हे दे दी। उसमे लिखा था कि हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक सस्था का सभापतित्व किसी राष्ट्रीय विचारधारा वाले व्यक्ति को नही करना चाहिए। बड़े बाबू ने मेरे नोट को पढ़ लिया और पूछा, "क्या आप इसका उत्तर अपने पत्र मे छाप सकेगे ?" मैंने कहा, "अवश्य छाप दूँगा।" इस पर बड़े बाबू बोले, "मैं हिन्दी बोल तो लेता हूँ पर हिन्दी लिख नही सकता। क्या आप मेरे अँग्रेज़ी लेख को अनुवाद सहित छाप सकेंगे ?" मैंने यह बात स्वीकार कर ली। बड़े बाबू ने बड़ा तर्कपूर्ण करारा उत्तर अँग्रेज़ी मे लिख भेजा और मैंने उसे अनुवाद सहित छाप दिया। उनका वह पत्र 19 अप्रैल, 1929 को लिखा गया था और चवालीस वर्ष बाद उसे पढकर मुझे अपनी धृष्टता पर लज्जा आती है। आज तो मैं इस प्रकार की आलोचना—और सो भी वैसे महान् पत्रकार के विषय मे—करने की कल्पना भी नही कर सकता। उस समय पूज्य द्विवेदी जी तथा प० पद्मसिह जी ने उस नोट को नापसन्द किया था। पूज्य द्विवेदी ने तो यहाँ तक कहा, "हम तो रामानन्द बाबू को गुरुतुल्य मानते हैं। नोट लिखना हमने उन्ही से सीखा है। आपको उनकी आलोचना नही करनी चाहिए थी।"

पर मेरे उस नोट का एक अच्छा प्रभाव भी पडा। उसने यह स्पष्टतया प्रमाणित कर दिया कि बड़े बाबू कितने स्वाधीनता-प्रेमी थे। प्रेस कमीशन

के सामने गवाही देने वाले किसी सुयोग्य पत्रकार ने इस घटना का उल्लेख अपनी गवाही मे किया था। यही नही, कितने ही लेखको ने इसका जिक्र किया था। स्वर्गीय केदारनाथ चट्टोपाध्याय, श्री रगील दास कापडिया और प० सुन्दरलाल जी ने भी रामानन्द बाबू के स्वर्गवास के बाद इस घटना पर लिखा था। जब महासभा के मन्त्री श्री पद्मराज जैन ने बडे बाबू से यह शिकायत की कि स्वय उनके पत्र 'विशाल भारत' मे हिन्दू महासभा के विरुद्ध नोट क्यो छपा है, तो उन्होने सिर्फ इतना ही कहा, "मैं पण्डित जी को अपने समान ही स्वाधीन मानता हूँ और उनकी स्वतत्रता मे बाधा नही डाल सकता।"

अपने दस वर्षों के कार्यकाल मे मुझे एक भी ऐसा मौका याद नही आता जब कि बडे बाबू ने मुझ पर कुछ भी नियन्त्रण किया हो। मैं चाहे जब आफिस जाता था, चाहे जब लौट आता था, जो चाहे वही लिखता था और अपने कार्यालय मे चाहे जिसको नियुक्त कर सकता था। केवल एक बात की स्वाधीनता मुझे नही थी, किसी अधीनस्थ की नौकरी छुडाने की। बडे बाबू इस मामले मे बडे सावधान थे। छोटे से छोटे चपरासी की भी बरखास्तगी वह सहन नही कर सकते थे।

एक बार अवश्य बडे बाबू ने मुझे बुलाया था। 'विशाल भारत' मे नाटक मे काम करने वाली नर्तकियो के चित्र छप गये थे। उस पर उन्होने कहा था " मैं आपकी स्वाधीनता मे बाधक नही हो सकता, पर चूंकि मेरा अनुभव आपसे कुछ अधिक है, इसलिए यह सुझाव दे सकता हूँ कि नर्तकियो के चित्र आप 'विशाल भारत' मे न छापे। वे प्राय चरित्रहीन होती हैं।"

धृष्टतावश मैं उनसे बहस करने लगा। मैंने कहा, "कोई सम्पादक किस-किसके चरित्र की खोज-बीन कर सकता है? चरित्र तो बहुत से लीडरो और लीडरानियो के भी शायद अच्छे नही हैं।" इस पर बडे बाबू ने केवल इतना ही कहा, "नेता और नेत्री मंच पर चढ़कर अपने हाव-भाव से जनता को पथभ्रष्ट तो नही करते, जब कि नर्तकियाँ वैसा करती हैं।"

बडे बाबू ने यद्यपि मुझे इस बारे मे भी स्वाधीनता दे दी थी, पर स्वय विचार करने के बाद मैंने उनकी बात मान ली। कुछ दिनो बाद श्री राखाल दास बनर्जी (सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता) हमारे कार्यालय मे पधारे और जब मैंने उन्हें बडे बाबू की उक्त बात सुनाई तो उन्होने हँसकर कहा, "मैं भी अपना एक किस्सा सुना दूँ। प्रयाग मे मैं एक बार केदार बाबू से मिलने गया हुआ था। वह भी विद्यार्थी थे और मैं भी। गलती से एक ऐक्ट्रेस का चित्र, जो मेरे पास था, बडे बाबू की मेज पर ही छूट गया। दूसरे दिन जब मैं वहाँ पहुँचा तो वह चित्र चार टुकडो मे बँटा हुआ, जहाँ का तहाँ रक्खा दीख पडा। मैंने केदार बाबू से पूछा कि क्या मामला है? उन्होने कहा, 'यह शिक्षा आपको बडे बाबू ने ही दी है। बडे बाबू प्राचीनतावादी विचारो के है। आपको उनसे बहस नही करनी चाहिए।' यह बात ध्यान देने योग्य है कि बडे बाबू ने अपने जीवन मे न कोई नाटक देखा था, न कोई फिल्म। हाँ, शान्ति-निकेतन मे विद्यार्थियो के नाटक उन्होने अवश्य देखे थे।"

'विशाल भारत' छोडने के बाद भी जब मैंने सन् 1939 मे उस पत्र मे अराजकवाद तथा अराजकवादियो पर नोट तथा लेख लिखे तो बडे बाबू ने मुझे रोका नही, सिर्फ इतना ही कहा कि इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि वैसे लेख वर्तमान कानून के शिकजे मे तो नही आते।

बडे बाबू यह हर्गिज नही चाहते थे कि 'विशाल भारत' मे बँगला अथवा बगालियो के पक्ष मे कोई प्रचार-कार्य हो और इसके लिए उन्होने एक पत्र लिखकर मुझे सावधान भी कर दिया था।

यहाँ एक दुर्घटना का जिक्र कर देना प्रासगिक होगा। उत्तर प्रदेश के एक हिन्दी पत्र ने अपने

3 दिसम्बर, 1935 के अक मे एक लेख छापा था, जिसका शीर्षक था 'हिन्दी शोषक एजेन्सियाँ' और उसमे 'विशाल भारत' पर यह इलजाम लगाया था कि वह हिन्दीवालो का पेट काटकर बगालियो का पेट भरता है, उसका बायकाट होना चाहिए। प्रारम्भ से अन्त तक वह सर्वथा निराधार आक्षेपो से परिपूर्ण था। उन सम्पादक महोदय ने अपने उस लेख की प्रति रामानन्द बाबू को भी भेज दी थी। बडे बाबू उस लेख को पढकर बडे दुखी हुए और उन्होने मुझे अपने घर बुला भेजा। फिर कहा, "पण्डित जी! आप जानते ही है कि हम लोग 'विशाल भारत' मे हजारो रुपये प्रतिवर्ष का घाटा देते रहते हैं। फिर भी यदि हिन्दीवाले हमे 'शोषक' मानते हैं तो यही उत्तमतर होगा कि पत्र को बन्द कर दिया जाये।"

बडे बाबू की इस बात से मैं चिन्तित हो गया और मैंने समझ लिया कि अब तो आठ वर्ष के 'विशाल भारत' का खातमा ही हो रहा है। फिर भी मैंने हिम्मत करके दृढता तथा नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "बडे बाबू, यह मेरी इज्जत का सवाल है। अगर 'विशाल भारत' अभी बन्द कर दिया गया तो मैं तो कही का नही रहूँगा। इसलिए आप साल-भर का टाइम मुझे दीजिए। यदि इस बीच वह उन्नति न करे, तो आप उसे बन्द कर सकते हैं।"

बडे बाबू ने कृपा कर मेरी बात मान ली। फिर उन्होने उक्त सम्पादक का परिचय पूछा तो मैंने नाम बतला दिया। वह महानुभाव बडे बाबू के एक भूतपूर्व शिष्य के पुत्र थे। इससे बडे बाबू को और भी खेद हुआ। 'विशाल भारत' की जान उस वक्त बच गई और उसके बहुत वर्ष बाद तक वह निकलता रहा। एक बार रामानन्द बाबू ने 'मॉर्डन रिव्यू' मे लिखा भी था कि 'विशाल भारत' मे हमे हजारो का घाटा हुआ है।"

बडे बाबू मितभाषी तथा अत्यन्त सकोचशील व्यक्ति थे। वह बहुत कम बातचीत करते थे। जब वह सत्तर वर्ष के हुए तो लोगो ने उनका सार्वजनिक सम्मान करना चाहा, पर इसके लिए वह तैयार नहीं हुए। बहुत आग्रह करने पर वह केवल इस बात के लिए राजी हुए कि उनके प्रवासी प्रेस के कर्मचारी प्राइवेट तौर पर दो-चार मित्रों को बुलाकर एक मीटिंग कर सकते हैं। वह छोटी-सी निजी मीटिंग बगीय साहित्य परिषद् के कार्यालय मे हुई थी। प्रवासी प्रेस के मित्रो ने मुझे ही उसका प्रधान बना दिया था। मेरे लिए वह बडा गौरवपूर्ण अवसर था, यद्यपि मैं उसका अधिकारी नही था। इस मीटिंग के दो-चार दिन बाद मैंने दृढतापूर्वक बडे बाबू से भी पूछा, "इस उम्र मे भी आप इतना परिश्रम कैसे कर लेते हैं?"

उन्होने उत्तर दिया, "मैं क्या परिश्रम करता हूँ। परिश्रम तो डॉ० सण्डरलैण्ड (अमेरिकन लेखक) करते हैं, जो नब्बे वर्ष की आयु मे भी 'मॉर्डन रिव्यू' के लिए बराबर लेख भेजते रहते हैं। हाँ, कभी मैं भी परिश्रम करता था। सबेरे चार-पाँच घण्टे, दोपहर को घण्टा भर विश्राम करके तीन-चार घण्टे और फिर रात को भी दो घण्टे। अब इतना नही कर पाता।"

बडे बाबू का सर्वोत्तम चित्र

जब तक उनका स्वास्थ्य ठीक रहा, बडे बाबू अपने लेखो तथा नोटो के अन्तिम प्रूफ खुद ही आफिस आकर देखते थे। अन्तिम वर्षों मे दिल की कमजोरी के कारण वह सीढिया चढ नही पाते थे और नीचे के तल्ले मे बैठकर ही प्रूफ देखते थे। एक दिन वह प्रूफ देख रहे थे और मैंने बिना उनके जाने उनका एक चित्र ले लिया। जब उस फिल्म को डेवलप करने भेजा तो कोडक वालो ने लिख भेजा कि उस चित्र को बृहदाकार मे बनवा लेना चाहिए। अकस्मात् बडे बाबू का वह चित्र सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ।

उस चित्र का बृहदाकार डॉ० कालीदास नाग के घर पर टँगा हुआ था। उसे देखकर एक अतिथि ने पूछा, "क्या यह किसी जर्मन फोटोग्राफर का लिया

हुआ है ।" उन्होंने मुसकराते हुए कहा, "हाँ, एक जर्मन पण्डित का, जो टीकमगढ़ में रहता है।" श्री केदार बाबू ने भी कहा था, "बड़े बाबू की भव्य मूर्ति चित्र के लिए बहुत उपयुक्त थी, पर उनका सर्वोत्तम चित्र तो आपका ही है।"

दस वर्ष मे मैंने उनसे क्या सीखा, क्या नही—मैं यहाँ ईमानदारी के साथ स्वीकार करूँगा कि मैं दस वर्षों की लम्बी अवधि मे बहुत कुछ सीख सकता था पर सीख नही पाया। पहला असाधारण गुण, जो उनमे मुझे दीख पडा, वह था उनका सामजस्ययुक्त जीवन। उन्होने जहाँ देश के प्रति अपने कर्त्तव्य का भली भाँति पालन किया, वहाँ अपने माता-पिता, पत्नी और पुत्रियो के प्रति भी पूरा-पूरा ध्यान दिया। उनके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के साधन उन्होने प्रदान किये। श्री केदारनाथ तथा श्री अशोक को उन्होने विलायत से उच्च से उच्च शिक्षा दिलवाई तथा लडकियो को भी सुशिक्षित कर दिया। अनेक महा-पुरुष ऐसा नही कर पाते। उनका बहुत बढ़िया जीवन-चरित उनकी पुत्री श्रीमती शान्ता देवी नाग ने ही लिखा है। एमर्सन का यह कथन कि "तुम्हारा प्रेम दूसरो से है, द्वेष घर वालो से" उन पर चरितार्थ होता है। पर रामानन्द बाबू इस विषय मे सर्वथा निर्दोष थे।

द्वितीय गुण जो उनमे था वह यह था कि दूसरो से अहसान वह बहुत कम लेते थे, पर दूसरो पर अपने अहसान अधिक लाद देते थे। अपने विस्तृत जीवन मे उन्होने केवल दो ही व्यक्तियो से आर्थिक सहायता ली—श्री चिन्तामणि घोष से और दूसरे मेजर वामनदास बसु से और वह सहायता सिर्फ इस रूप मे थी कि वह श्री चिन्तामणि को प्रवासी की छपाई का बिल वर्ष के अन्त मे देते थे और बसु जी अपनी पुस्तक की छपाई के पैसे पेशगी भेज दिया करते थे।

कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के वह अनन्य भक्त थे और उनकी सेवा करने का कोई अवसर उन्होंने नही छोडा, पर उन्होने शान्ति-निकेतन अथवा विश्वभारती से कोई अहसान नही लिया। गुरुदेव की किताबो के हिन्दी अनुवाद के अधिकार भी उन्होने रायल्टी देकर ही लिए थे। एक बार मुझे कुछ ब्लाकों की जरूरत थी, जो विश्वभारती वालो के पास थे। मैंने विश्वभारती से माँगना चाहा तो बाबू जी ने कहा, "अगर न माँगो तो ठीक हो।"

तीसरा गुण जो उनमे था वह था, अपने ऊपर कम से कम खर्च करना और सादे से सादा जीवन व्यतीत करना। कागज़ के टुकडो का भी वह उपयोग कर लेते थे। अपने समय तथा शक्ति के क्षण-क्षण और कण-कण की भी वह रक्षा करते थे। सन् 1927 तक वह सार्वजनिक मीटिंग मे नही जाते थे। पर लीग ऑफ नेशन्स के निमन्त्रण पर जब उन्हे विलायत जाना पडा तो उन्हे अपना नियम तोड देना पडा। लोग कहते, "जब आप विलायत जा सकते हैं तो हमारे यहाँ क्यो नही चलते हैं?" इसका कोई समुचित उत्तर उनके पास नही था।

लीग ऑफ नेशन्स के निमन्त्रण पर वह गये अवश्य, पर उन्होने एक पैसा भी मार्गव्यय आदि के लिए नही लिया। इस प्रकार कई हज़ार रुपयो का घाटा उन्होने सहर्ष सह लिया। उनका तर्क था कि यदि मैं पैसे लूँगा तो मेरे अवचेतन मस्तिष्क पर उसका असर पड सकता है और तब शायद मैं स्पष्ट सम्मति प्रकट न कर सकूँ।

विलायत से लौटने पर जब उन्होने लीग ऑफ नेशन्स की कठोर आलोचना की तो लाहौर के 'सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट' ने लिखा था, "यह लीग के आतिथ्य का दुरुपयोग है।"

इसका बडा करारा उत्तर बडे बाबू ने दिया था। उसमे लिखा था, "क्या मैं 'सिविल एण्ड मिलि-टरी गज़ट' के सम्पादक को बतला सकता हूँ कि लीग ऑफ नेशन्स का मैं चाय के एक प्याले के लिए भी

ऋणी नहीं हूँ।"

सम्पादकीय अधिकार के मामले मे वह बडे सावधान थे—चाहे कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर का लेख हो या लाला हरदयाल का। उनका कहना था कि तमचा दिखाकर यदि कोई लेखक अपना लेख ज्यो-का-त्यो छपाना चाहे तो उसके लिए एक ही जवाब हो सकता है, "लेख नही छपेगा।"

सुनते हैं कि एक बार बडे बाबू काशी मे गगा-स्नान करते हुए डूबने लगे तो एक बगाली युवक ने उन्हे बचा लिया। बडे बाबू ने उस युवक को अपना कलकत्ते का पता बतलाकर कहा कि अगर आपका कभी कलकत्ते आना हो तो मेरी सेवा योग्य कार्य बतलाना। वह युवक जब कलकत्ता पहुँचा तो अपनी एक कविता लेकर 'प्रवासी प्रेस' आया और बडे बाबू को कविता दे दी। कविता बहुत मामूली-सी थी। बडे बाबू ने कहा, "आपकी इस कविता को तो मैं नही छाप सकता, अगर चाहो तो आप मुझे हुगली मे डुबा सकते हो।"

लाला हरदयाल ने अपना एक लेख 'मॉडर्न रिव्यू' तथा लाहौर के किसी उर्दू पत्र को साथ-साथ भेजा था। बडे बाब ने उसका सम्पादन करके उसे छापा, जब कि उर्दू पत्र पर सरकार ने मुकदमा चला दिया। बडे बाबू को गवाही के लिए लाहौर जाना पडा था। गुरुदेव ने मि० ब्रेलसफोर्ड की सुप्रसिद्ध पुस्तक 'रेवेल इण्डिया' की आलोचना लिखकर भेजी थी, पर बडे बाबू ने उसके कुछ अशो को कानून की दृष्टि से आपत्तिजनक समझा और गुरुदेव को स्पष्टतया लिख भेजा, "यह मेरी लाचारी है। इस प्रकार की अस्वीकृति से मेरी नीद हराम हो जाती है, पर मौजूदा कानूनो के शिकजे मे मै फसना नही चाहता।"

बडे बाबू अत्यन्त अध्ययनशील थे। बिना प्रमाण के कोई बात लिखना वह नही चाहते थे। शहीदो तथा क्रान्तिकारियो पर जितना उन्होने लिखा उतना शायद ही किसी अन्य मासिक ने लिखा हो। 'मॉडर्न रिव्यू' की पुरानी फाइलों के लेखक तथा नोट इस बात के प्रमाण हैं। श्री जोगेश चन्द्र चटर्जी ने मुझसे स्वयं कहा था कि जब जेल मे उनपर अमानुषिक अत्याचार हुए थे तो उनके बारे मे बडे बाबू ने उनके कुटुम्बियो से पूछताछ कर 'मॉडर्न रिव्यू' मे एक जोरदार नोट लिखा था। अडमान द्वीप मे एक बगाली युवक श्री इन्द्रभूषण ने जब फाँसी लगा ली थी तो उसका विवरण भी सन् 1912 के 'मॉडर्न रिव्यू' के एक अक मे दिया गया था। जाने कितनी बार 'मॉडर्न-रिव्यू' आफिस की तलाशी ली गई थी। डॉ० जे०टी० सण्डरलैण्ड की 'इण्डिया इन बॉण्डेज' के जब्त हो जाने से बडे बाबू को बहुत घाटा उठाना पडा। उन्होने सब प्रतिया पुलिस के हवाले कर दी। सुना जाता है पुलिस वाले उन प्रतियो को चालीस-चालीस रुपयो मे बेचकर पैसा कमाते रहे।

एक साधनहीन युवक ने अपने पत्र 'मॉडर्न रिव्यू' को विश्व के सर्वश्रेष्ठ पत्रो के मुकाबले मे कैसे खडा कर दिया इसकी कहानी बडी लम्बी और स्फूर्तिप्रद है। डॉ० सण्डरलैण्ड ने एक बार लिखा था, "अमरीका मे तो 'मॉडर्न रिव्यू' के मुकाबले का कोई पत्र है ही नही और मुझे शक है कि यूरोप मे भी शायद ही कोई निकले।"

जब 'मॉडर्न रिव्यू' के दो-चार अक ही निकल पाये थे तब विलायत के एक पत्र ने लिखा था, "ऐसा गम्भीर तथा विविध विषय सम्पन्न पत्र हमारे देश मे भी शायद ही कोई हो।"

बडे बाबू निष्काम कर्मी थे। 'कर्मण्येवाऽधिकारस्ते' के उपदेश के अनुयायी थे। एक बार सी० वाई० चिन्तामणि जी ने उनके बारे मे बोलते हुए 'नोबलेस्ट, एबलेस्ट एण्ड दि बेस्ट' इत्यादि कई गुण-वाचक सज्ञाओ का प्रयोग किया था। बडे बाबू ने मुझे बुलाकर कहा, "आप तो चिन्तामणि जी को जानते हैं। आप उन्हे लिखिये, कि उन जैसा अनुभवी सम्पादक ऐसी असन्तुलित भाषा क्यो लिखता है?"

मैंने बड़े बाबू की बात सुन तो ली पर चिन्तामणि जी को लिखने की हिम्मत मुझे नही हुई। यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'लीडर' के प्रारम्भिक दिनो मे चिन्तामणि जी रामानन्द बाबू से प्राय. मिलते रहते थे और बडे बाबू उनका पथ-प्रदर्शन भी किया करते थे।

जब उन्होने 'मॉर्डन रिव्यू' निकाला था तो तीन वर्ष के लिए पहले से मसाला इकट्ठा कर रखा था। उनके पत्रों की सफलता का श्रेय अनेक अशो मे उनकी धर्मपत्नी (सर्वश्री केदार बाबू, अशोक बाबू, शान्ता बहन तथा सीता बहन की पूज्य माताजी) को मिलना चाहिए। वह पत्रो के प्रबन्ध-विभाग मे भरपूर सहयोग देती थी पर प्रमाद की असामयिक मृत्यु ने उनके हृदय को जबरदस्त धक्का दिया और तब से उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया।

यह बात बहुत कम लोगो को ज्ञात होगी कि 'सरस्वती' के निकालने का सुझाव बडे बाबू ने ही श्री चिन्तामणि घोष को दिया था। आज भी 'मॉर्डन रिव्यू' की पुरानी फाइलें भारत के विषय मे एक विश्वकोष का काम कर रही हैं। ससार के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयो मे वे पाई जाती है।

बडे बाबू मे कितने ही ऐसे गुण थे जो भारतीय पत्रकारो के लिए अनुकरणीय हैं। वह बडे सयम-नियम से काम लेते थे। अपने अधीनस्थ लोगो से वह नियम (डिसिप्लिन) के अधीन काम करने की आशा रखते थे और जब वह शान्ति-निकेतन आश्रम मे आचार्य थे तो दीनबन्धु ऐण्ड्रूज तक को वह अनियमितता नही करने देते थे। आत्मनियन्त्रण उनके जीवन की सफलता की कुजी थी और शक्ति तथा ईमानदारी और कर्तव्यशीलता उनके लिए स्वाभाविक गुण बन गये थे। बड़े बाबू विनम्र होते हुए भी बडे स्वाभिमानी थे।

ऐसे महापुरुषो के चरणो के निकट बैठने का सौभाग्य मुझे दस वर्ष तक मिला। मैं इसे पूर्व जन्म के पुण्यो का परिणाम मानता हूँ।

5

क्रान्तिकारी लाला हरदयाल

"लाला हरदयाल भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ सपूतों में से थे, उनकी बौद्धिक शक्ति अद्भुत तथा विलक्षण थी और अगर शान्तिमय मौका उन्हें मिल जाता तो अपनी बुद्धि द्वारा वह आश्चर्यजनक काम कर सकते थे। क्योंकि जितने महान् से महान् मस्तिष्क मेरे देखने में आये हैं, उनमें लाला हरदयाल का दिमाग भी एक ही था और उनका चरित्र भी सत्यपूर्ण तथा पवित्र।"[1]

—सी० एफ० ऐण्ड्रूज

अपने अन्तिम दिनो मे जब दीनबन्धु ऐण्ड्रूज बीमार पडे हुए थे, मैंने एक धृष्टता की। उन्हे लाला हरदयाल की याद दिला दी और साथ ही यह प्रार्थना भी कर दी कि स्वस्थ होने पर वह लालाजी के विषय मे कुछ लिख भेजें। दीनबन्धु ने तुरन्त ही उस बीमारी की हालत मे अपनी श्रद्धाञ्जलि एक लेख के रूप मे अर्पित कर दी। उसी मे से उपर्युक्त वाक्य लिया गया है।

मैं खुद लालाजी का बहुत वर्षों से भक्त रहा हूँ, और उनकी पुस्तक 'हिंट्स फॉर सेल्फ कल्चर' (आत्म सस्कृति के उपाय) को प्राय प्रात काल मे पढता रहा हूँ। वह मेरा स्वाध्याय ग्रन्थ है। जिन दिनो सन् 1910-11-12 मे लाला हरदयाल जी के लेख 'मॉडर्न रिव्यू' मे निकल रहे थे, उनकी धूम मच गई थी। उनका हिन्दी-अनुवाद श्री नारायणप्रसाद जी अरोडा ने किया था और हिन्दी जगत् मे भी उनके बहुत-से प्रशसक बन गये थे। 'मॉडर्न रिव्यू' की पुरानी फाइलो मे आज भी वे लेख पढे जा सकते हैं। उनमे ताजगी ज्यो-की-त्यो मौजूद है। क्या भाषा और क्या भाव, उनके लेख दोनो दृष्टियो से अपना सानी नही रखते और उनके प्रवाह का क्या कहना। उनके लेख 'कार्ल मार्क्स—ऋषि' का अनुवाद स्व० ब्रजमोहन वर्मा ने 'विशाल भारत' के लिए किया था और वह पुस्तकाकार मे प्रकाशित भी हुआ था।

हम लाला जी के पुराने सहपाठी और अनन्य मित्र वयोवृद्ध लाला हनुमन्त सहायजी से बातचीत कर रहे थे। उन्होने लाला जी के विद्यार्थी जीवन के अनेक सस्मरण सुनाये। लाला जी की स्मरणशक्ति

---

1 Lala Hardayal was one of India's noblest children and in happier times would have done wonders with his gigantic intellectual power For his mind was one of the greatets I have ever known and his character also was true and pure —C F.Andrews

अद्‌भुत थी और प्रत्येक परीक्षा मे वह सर्वप्रथम ही उत्तीर्ण नही हुए थे, बल्कि उन्होने इतने अच्छे नम्बर पाये थे कि आज तक कोई दूसरा उनसे आगे नही बढ सका ।

अपनी आश्चर्यजनक स्मरणशक्ति के चमत्कार उन्होने एक दिन लाहौर के विद्यार्थी-समाज के सम्मुख दिखाये । उनके दर्शको मे थे पण्डित सुन्दर-लाल जी जो उन दिनो लाहौर मे ही पढ रहे थे । दो दिन पूर्व एक महाराष्ट्रीय सज्जन श्री सहस्रबुद्धे ने कुछ चमत्कारो का प्रदर्शन किया था, इस पर लाला जी ने कहा—"इसमे क्या है ? ये तो मैं भी कर सकता हूँ ।" और विद्यार्थियो द्वारा चुनौती दिये जाने पर उसके दूसरे-तीसरे दिन ही हरदयाल जी ने उनसे बढकर करिश्मे कर दिखाये । लाला हरदयाल जी सरकारी वज़ीफा लेकर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे पढने के लिए विलायत गये । कहा जाता है कि वहाँ वह बिलकुल तपस्वियो जैसा जीवन व्यतीत करते थे । उन दिनो दीनबन्धु एण्ड्रूज ऑक्सफोर्ड मे उनसे मिले थे । उन्होने लिखा है

"लाला हरदयाल ने अपनी आवश्यकताओ को कम से कम कर लिया था और वह एक बहुत छोटे-से कमरे मे जिसमे सजावट का कोई नामोनिशान न था, रह रहे थे । वह स्वभाव से ही तपस्वी थे ।"

उनकी इस तपस्यापूर्ण साधना का उल्लेख एक अमरीकन लेखक वान विक ब्रुक्स ने भी अपनी पुस्तक 'सीन्ज एण्ड पोर्ट्रेट्स' मे किया है । दरअसल मि० ब्रुक्स ने लालाजी का जैसा रेखाचित्र खीचा है, वैसा किसी भारतीय से नही बन पडा । लाला जी उन दिनो कैलीफोर्निया मे सिर्फ रूखी रोटी और दूध पर ही रहते थे । वह ज़मीन पर सोते थे और सिरहाने के लिए तकिया वगैरह कुछ भी नही रखते थे। उन्होने अपने एक पत्र मे मि० ब्रुक्स को लिखा था

"आई एम ए रिवोल्यूशनिस्ट फर्स्ट एण्ड एवरीथिंग एल्स आफ्टरवर्ड्स ।" (मैं सर्वप्रथम क्रान्तिकारी



प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाला हरदयाल

हूँ, उसके बाद और कुछ ।)

उन्होने रूस के प्रसिद्ध अराजकतावादी बाकूनिन के नाम पर 'बाकूनिन इन्स्टीट्यूट' स्थापित किया था। उसका मुख्य कार्य था—क्रान्तिकारियो को तैयार करना । उन्होने खास तौर पर प्रिंस क्रोपाटकिन और लुई माइकेल नामक अराजकवादियो तथा कार्ल मार्क्स के जीवन-चरित पढने की सिफारिश अपने ग्रन्थ मे की थी । जब वह विलायत मे रह रहे थे, मैंने उनकी सेवा मे दो पत्र भेजे थे, जिनका उन्होने तुरन्त ही उत्तर दिया था । अपने 12 जुलाई, सन् 1936 के पत्र मे उन्होने ऐजबेयर, इग्लैण्ड, से लिखा था

"यहा स्वीडन देश के पत्र-पत्रिकाओ के लिए लेख लिखने मे मेरा बहुत-सा समय चला जाता है । मेरा स्वास्थ्य भी अच्छा नही है । सो 'विशाल भारत' की सेवा करने के लिए समय निकालना कठिन ही होगा । क्षमा करे ।

"लाउस माइकेल का जीवन-चरित अग्रेजी मे

नहीं लिखा गया है । फ्रांसीसी भाषा में उन पर पुस्तकें हैं। वह आदर्श महिला थी।

"यदि आप कभी लन्दन आयें, तो जरूर दर्शन दें। कृपा होगी। सेवक—
हरदयाल"

उनका एक अन्य पत्र भी, जो उन्होंने स्व० पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा को लिखा था, यहाँ उद्धृत किया जाता है

"मान्यवर श्रीमान् पण्डितजी के चरणकमलो मे नमस्कार स्वीकार हो। मैं आपका बहुत ही कृतज्ञ और अनुगृहीत हूँ कि आपने बिहारी सतसई मेरे पास भेजी है। यह आपने बडी कृपा की है। मैंने पहले यह कविता पढी थी, जब मै जर्मनी मे था, परन्तु टीका न होने से भली भाति समझ मे नही आई थी। अब आपकी टीका की सहायता मे खूब समझ मे आ जायेगी। आपकी तुलनात्मक समालोचना सर्वथा प्रशसनीय है। हिन्दी साहित्य मे अब इसकी बहुत आवश्यकता है। आपकी पुस्तको से मुझे बडा आनन्द प्राप्त हुआ है, और होता रहेगा। मैं काव्य का बहुत प्रेमी हूँ।

"यदि मैं यूरोप मे आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ तो लिखियेगा। मैं कुशल से हूँ।

अप्लीकेन (स्वीडन) सेवक—
8-4-25 हरदयाल

जीवन की कुछ घटनायें

लाला जी का जन्म दिल्ली के एक कायस्थ परिवार मे सन् 1885 मे हुआ था। बी० ए० तक वह दिल्ली मे ही पढे। वह सेण्ट स्टीफन्स कॉलेज के विद्यार्थी थे। एम० ए० की परीक्षा उन्होने फोरमेन क्रिश्चियन कॉलेज, लाहौर, से पास की थी। 1906 मे उन्हे पजाब सरकार से 200 पौण्ड प्रतिवर्ष की छात्रवृत्ति ऑक्सफोर्ड जाने के लिए मिली थी। वह वहाँ सेण्ट जॉन्स कॉलेज मे भर्ती हो गये। विलायत मे वह सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा के सम्पर्क में आये और उनकी विचारधारा मे पूर्ण परिवर्तन हो गया। साल भर बाद उन्होंने छात्रवृत्ति ठुकरा दी और भारत लौट आये। यहाँ पहुँचकर वह साधु वेश में रहने लगे और उन्होने लाहौर मे एक आश्रम स्थापित किया, जहाँ वह राजनैतिक सन्यासी बनने के लिए विद्यार्थियो को शिक्षित करते थे। उनके साथियो मे दो सज्जन थे—एक श्री जे० चटर्जी देहरादूनवाले और दूसरे डा० ताराचन्द्र जी। उन्होने पर्याप्त राजनैतिक कार्य भी किया। परिणाम यह हुआ कि वह भारत सरकार की आँखो मे काँटे की तरह चुभने लगे। इस बात की पूरी-पूरी आशका थी कि वह गिरफ्तार कर लिये जायेंगे। इसलिए वह देश छोडकर फ्रास के लिए रवाना हो गये। यह बात शायद सन् 1908 की है और उसके बाद फिर उन्हे मातृभूमि भारत के दर्शन नसीब नही हुए।

अनुसन्धान की आवश्यकता

लाला जी का 30-31 वर्ष का प्रवासी जीवन भारतीय इतिहास का एक ऐसा अध्याय है कि जिसके अनुसन्धान के लिए कई सुयोग्य इतिहासज्ञो की आवश्यकता है।

लाला जी ने रूसी, मिस्री, तथा आयरिश क्रान्तिकारियो से किस प्रकार परिचय प्राप्त किया, अमेरिका की गदर पार्टी मे कितना हिस्सा लिया, प्रथम युद्ध के जमाने मे उनके द्वारा क्या-क्या कार्रवाहिया हुईं, अमेरिका से उन्हे किस तरह निर्वासित होना पडा, स्वीडन मे कैसे रहे इत्यादि प्रश्नो पर प्रकाश डालने के लिए काफी खोजबीन करनी पडेगी।

विदेशो मे लाला जी ने जिस तपस्यापूर्ण ढग पर अपना जीवन व्यतीत किया और जो-जो कष्ट उन्हे सहने पडे उनका वृत्तान्त पढकर आश्चर्य तथा खेद होता है। भारतवर्ष से उन्हे बहुत कम सहायता मिली। कुछ रकम समय-समय पर उन्हे उनके दिल्ली

निवासी मित्र लाला हनुमन्त सहाय जी ने भिजवाई थी। चूँकि लालाजी ने पन्द्रह वर्ष स्वीडेन मे बिताये थे, सो वहाँ के कुछ मित्र पुस्तको द्वारा उनकी मदद कर देते थे।

उन्होंने स्वामी सत्यदेव जी को कई पत्र इस विषय मे लिखे थे, जिन्हे स्वामी जी ने अपनी पुस्तक 'जर्मन यात्रा' मे छापा भी था। लालाजी ने स्वामी जी को लिखा था "भारतीय देशभक्तो के पास रुपये की कमी नही, परन्तु मैंने विदेशी मित्रो और परिचितो की दानशीलता पर अपना निर्वाह किया है। यह स्थिति उत्साहवर्द्धक नही। मेरे त्याग और व्यक्तित्व की तारीफ तो बहुत-से लोग करते थे, परन्तु रुपये-पैसे से परदेश मे मेरे काम मे या मेरी निजी सहायता किसी ने नही की।"

लाला जी हिन्दी-उर्दू मे यूरोप और अमेरिका के प्रजातत्रीय आन्दोलनो के विषय मे तथा वहाँ के बडे-बडे नेताओ के जीवन-चरितो पर ग्रन्थ लिखना चाहते थे और राजनैतिक तथा समाजशास्त्र की प्रसिद्ध यूरोपियन किताबो का अनुवाद भी करना चाहते थे। अर्थाभाव के कारण यह सम्भव न हुआ।

लाला जी की विद्वत्ता का कुछ अनुमान उनके उन ग्रन्थो से, जो उन्होने विलायत मे प्रकाशित किये, लगाया जा सकता है। हमे इस बात मे शक है कि 'हिंट्स फॉर सेल्फ कल्चर' जैसा ग्रन्थ भारत का कोई अन्य विद्वान् इतनी सफलतापूर्वक लिख सकता। बोधिसत्त्व सिद्धान्त पर अपना अन्वेषण ग्रन्थ लिखकर उन्होने लन्दन विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि ली थी। उनका एक ग्रन्थ था 'ट्वेल्व रिलीजस एण्ड मॉर्डन लाइफ' (बारह धर्म और आधुनिक जीवन)।

भाई परमानन्द, कर्नल वैजवुड, दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूज, मि० ब्रेल्स फोर्ड और डॉक्टर सप्रू इत्यादि ने लालाजी को भारत आने का अनुमति दिलाने के लिए बहुत प्रयत्न किया और उन्हे नवम्बर 1938 मे अनुमति मिल भी गयी। तत्पश्चात् वह अमेरिका गये और कुछ महीने वहाँ रहकर वह भारत आना चाहते थे। उनके मित्र मि० ब्रुक्स ने एक स्थान पर लिखा है "लाला हरदयाल ने इग्लैण्ड मे मॉडर्न कल्चर इस्टीट्यूट (सास्कृतिक विद्यापीठ) की स्थापना की थी और ज्यूलोजी, बोटैनी तथा फिजिक्स, (जीव-शास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, भौतिक शास्त्र) इत्यादि वैज्ञानिक विषयो का वह अध्ययन कर रहे थे। वह अमेरिका इसलिए पधारे थे कि यहाँ पर उन्हे कुछ भाषण देने थे। एक दिन वह मेरे घर भी आये थे और मेरी पत्नी के लिए लाल गुलाब के फूल लाये थे। उन्हे भारत जाने की अनुमति मिल चुकी थी। पर उन्हे पूरा-पूरा यकीन नही हो रहा था। वह बोले,'दि रोड टू इण्डिया इज ओपन' अर्थात् भारत के लिए रास्ता साफ है। इस कथन के दस दिन बाद ही फिलेडैल्फिया मे हृदय की गति रुक जाने से उनका स्वर्गवास हो गया। उस समय वह 54 वर्ष के थे।"

4 मार्च, 1939 को लाला जी परलोक सिधारे पर रॉयटर ने भारतवर्ष को यह समाचार तार से भेजना जरूरी न समझा। यहाँ यह खबर महीने-भर बाद मिली। लाला लाजपतराय ने एक जगह लिखा था : "लाला हरदयाल लाखो भारतीयो की आँखो के तारे हैं और उनका व्यक्तित्व अनुपम है।"

जब श्रीमान् पण्डित जवाहरलाल नेहरू अमेरिका गये थे, तो मि० ब्रुक्स ने उनसे पूछा था, "क्या आपको लाला हरदयाल की याद है ?" तो उन्होने उत्तर दिया, "वी ऑल रिमेम्बर हरदयाल" (अर्थात् लाला हरदयाल को हम सभी याद करते हैं)।

ब्रुक्स लिखते हैं, "लाला हरदयाल को कैसे याद करते है, यह मैंने जान-बूझकर नही पूछा।"

पुरानी दिल्ली मे एक गली है, जहाँ लाला हरदयाल का जन्म हुआ था। दिल्ली निवासियो ने उस गली का नाम बिना एक धेला खर्च किये 'हरदयाल गली' रख दिया है। यही गली उस महान् क्रान्तिकारी की एकमात्र यादगार है।

6

नेताजी सुभाष के सम्पर्क में

प्रात स्मरणीय नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के सम्पर्क मे आने का सौभाग्य मुझे अकस्मात् ही प्राप्त हुआ। बात यह हुई कि कलकत्ते मे 1928 के दिसम्बर मे कांग्रेस का अधिवेशन होने वाला था। उस अवसर पर 'लोकमान्य' के सम्पादक भाई रामशकर त्रिपाठी ने यह निश्चित किया कि तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार एक राष्ट्रभाषा कान्फ्रेस भी होनी चाहिए। वह मेरे पास पधारे और उन्होने यह प्रस्ताव किया कि मै महात्मा जी की सेवा मे एक पत्र भेज कर, उनसे राष्ट्रभाषा परिषद् के सभापति होने की प्रार्थना करूँ। मैने उनके आदेशानुसार महात्मा जी की सेवा म पत्र भेज दिया और उन्होने सभापति बनना स्वीकार भी कर लिया। तत्पश्चात् यह सवाल उठा कि स्वागतकारिणी का प्रधान किसे बनाया जाये। त्रिपाठी जी की राय नेता जी सुभाषचन्द्र के पक्ष मे थी। मैने कहा कि वह मुझसे परिचित न होगे, उनसे प्रार्थना कौन करे! तब त्रिपाठी जी ने कहा, "यह काम आप हम पर छोड दीजिए। हम उन्हे राजी कर लेगे।" नेता जी ने वह उत्तरदायित्व सभाल लिया। अब सवाल उठा उनसे भाषण लिखाने का। नेता जी उस समय स्वयसेवको के कप्तान थे और उन्हे अत्यन्त व्यस्त रहना पडता था। मैं साहस करके उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ और स्वागतकारिणी के सभापति का भाषण लिखाने का अनुरोध किया। नेता जी हिन्दी बखूबी बोल लेते थे, वह बोले, "आप देखते ही है। मेरे पास तो समय है ही नही। आप स्वय मेरे लिए भाषण लिख दें। मैं कुछ प्वाइण्ट्स बतला सकता हूँ। पहला प्वाइण्ट तो यह है कि बगालियो ने भी हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए कुछ काम किये है। दूसरा यह है कि हम बगाली लोग अपनी मातृभाषा के उत्कट प्रेमी भी हैं। तीसरा यह है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी सरल और सुबोध होनी चाहिए, यो कहिए कि हिन्दुस्तानी। बस इन्ही प्वाइण्ट्स को बढाकर मेरा भाषण तैयार कर दीजिए। एक बात और, जो भी पत्र-व्यवहार आप आवश्यक समझें, उसे मेरे नाम से कर सकते है। मेरे हस्ताक्षर के लिए मेरे पास आने की जरूरत नही। आप स्वय ही मेरे हस्ताक्षर कर दिया करें।" सकोच-वश मैने कहा, "यह तो अनुचित प्रतीत होता है।" तब वह बोले, "जब मैं यह अधिकार आपको देता हूँ तो इसमे अनौचित्य कहाँ रह जाता है?" फिर मैने निवेदन किया, "मैं काग्रेस अधिवेशन देखना चाहता हूँ। कृपया श्री विधान बाबू को पत्र लिखकर मुझे पास दिलवा दीजिये।" सुभाष बाबू ने उसी समय एक पत्र श्री विधानचन्द्र राय को लिख दिया। मूल पत्र तो

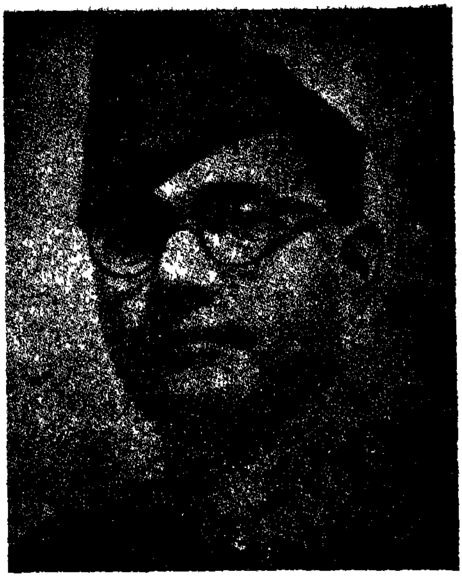
श्री विधान बाबू की सेवा मे भेज दिया गया पर उसकी नकल मैंने अपने पास रख ली। उसे यहा उद्धृत कर रहा हूँ [1]

कांग्रेस स्वयसेवक समिति
(बगाल स्वय सेवक)

मुख्यालय, कलकत्ता
दि० 19-12-28 ई०

मेरे प्रिय डॉ० राय,

यह पत्र मैं श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी का परिचय देने के लिए लिख रहा हूँ जिनके बारे मे आपने सुना ही होगा। वह एक प्रसिद्ध पत्रकार हैं, 'विशाल भारत' के सम्पादक है और प्रवासी भारतीयो के विषय के विशेषज्ञ भी। उन्होने प्रेस टिकट के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा है। कृपया यह उन्हे दिलवा दीजिए।



नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

वह राष्ट्रभाषा कान्फ्रेंस की स्वागतकारिणी कमेटी के मंत्री भी है—जिसका कि मैं प्रधान हूँ। हम लोगो को कान्फ्रेंस करने के लिए 28 तारीख को सबेरे कांग्रेस का पण्डाल चाहिए। हम लोग दो-तीन घटे से ज्यादा समय न लेगे। कृपा करके तदनुसार कांग्रेस पण्डाल की व्यवस्था कर दीजिए। सम्भवत यह तो आप जानते ही होगे कि महात्मा जी राष्ट्रभाषा कान्फ्रेंस के सभापति हैं और उन्होने यह आदेश दिया है कि परिषद् की कार्यवाही सक्षिप्त और विषयानुसार ही हो। इसलिए कांग्रेस की कार्यवाहियो के बीच कोई बाधा पडने की सम्भावना नही है क्योकि वह कार्यवाही तीसरे पहर होगी। हम लोग राष्ट्रभाषा कान्फ्रेंस का कार्य प्रातःकाल ही झडा अभिवादन के बाद शुरू कर देगे।

आपका—
सुभाषचन्द्र बोस

Congress Volunteer Corps

Head quarter,
Calcutta
Dated the 19-12-28

My dear Mr Roy,

This is to introduce Sh Banarasi Das Chaturvedi of whom you have heard He is a prominent Journalist, Editor of 'Bishal Bharat' and an expert in colonial and overseas topics He wants a press ticket which he has applied for Please see that he gets one

He is also secretary of reception committee of 'Rashtriya Bhasha Conference' and I am its humble chairman We want Congress Pandal for the morning of 28th inst for our Rashtriya Bhasha Conference It won't take more than 2 or 3 hours Kindly book the Pandal for us and oblige You probably know that Mahatma Gandhi is the president of the conference and he has ordered that proceedings should be short and business like So there is no danger of our encroaching on the convention proceedings in the afternoon We shall begin the proceedings after the flag-hoisting in the morning

Your V Sincerely
(Sd) Subhas C Bose

राष्ट्रभाषा कान्फ्रेंस की तिथि तो निश्चित हो चुकी थी पर बीच मे ही एक बाधा आ गयी । 28 तारीख की प्रात काल ही कांग्रेस की कार्यकारिणी मे भारत की स्वाधीनता के प्रस्ताव पर विचार करने का निश्चय किया गया था। जब यह समाचार बापू तक पहुँचा तो उन्होने तुरन्त ही कहा, "मैं तो 28 तारीख का सबेरे का वक्त बनारसीदास को दे चुका हूँ। अगर वह मुझे बन्धन मुक्त कर दें तो मैं तुम्हारे यहाँ आ जाऊँगा। कांग्रेस की ओर से मेरे पास फोन आया और मैंने तुरन्त ही उत्तर मे कहा, "राष्ट्र की स्वाधीनता का सवाल पहले है, राष्ट्रभाषा का पीछे। हम अपनी कान्फ्रेस कल कर लेंगे।" ऐसा ही हुआ। कान्फ्रेस दूसरे दिन की गयी। कार्य आरम्भ होने के आध घटा पहले हम लोग पण्डाल मे पहुँच गये थे। थोडी देर बाद सुभाष बाबू भी पधारे। महात्मा जी के आने मे अभी 15-20 मिनट बाकी थे। सुभाष बाबू को मैने उनका भाषण दिया। तब तक उन्होंने उसे पढ़ा भी नही था। उन्होने कहा, "मैं आपके सामने पढकर सुना दूं?" मैंने कहा, "अवश्य।" उन्होने उसे प्रारम्भ से अन्त तक पढा और पूछा, "मैं ठीक से पढ तो सकता हूँ न।" मैंने कहा, "आपने बिलकुल ठीक पढा।" महात्मा जी के आगमन पर उन्होने यह भाषण ज्यो का त्यो सुना दिया।

एक बार मैंने बगाली बन्धुओ को हिन्दी पढाने की क्लास खोलने के लिए उन्हे निमत्रित किया था और वह पधारे भी थे। स्वनामधन्य नेता जी से केवल इतना ही परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला।

7

माननीय श्रीनिवास शास्त्री

सर शिव स्वामी अय्यर ने एक बार कहा था "यद्यपि माननीय श्रीनिवास शास्त्री बहुत उच्च कोटि के भाषणकर्ता (orator) है तथापि उनके मुकाबले का ओरेटर भारतवर्ष मे एकाध और भी हो सकता है पर पत्र-लेखन-कला मे तो वह अद्वितीय ही हैं।" माननीय शास्त्री जी को पत्र-लिखने का व्यसन ही था और छोटे-छोटे पत्र तो उन्होने सहस्रो ही लिखे होगे। मुझे भी उनसे तीस-पैतीम उत्कृष्ट पत्र प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे सभी पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित है। इस प्रसग मे मुझे एक घटना याद आ रही है।

मेरे एक मित्र स्व० विश्वनाथ गुप्त उर्फ बाबूराम को महान् पुरुषो से मिलने का शौक था। इस प्रकार वह उनका समय नष्ट करते रहते थे। एक बार उन्होने बम्बई मे मेरा नाम लेकर शास्त्री जी से समय माँगा। शास्त्री जी ने उन्हे बुला लिया। विश्वनाथ जी गुप्त ने उन्हे यह समाचार सुना दिया कि चिरजीव बुद्धिप्रकाश ने एम० ए० मे फर्स्ट क्लास और सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। शास्त्री जी ने तुरन्त ही मुझे एक कार्ड भेजा जिसमे चिरजीव बुद्धिप्रकाश की सफलता पर हम दोनो को बधाई दी गई थी। अकस्मात् शास्त्री जी का वह पत्र पडा रह गया और मैं उसकी प्राप्ति-सूचना भी न भेज सका। आठ दिन बाद माननीय शास्त्री जी का दूसरा पत्र आया जिसमे उन्होने लिखा था "यह अजीब बात है कि मेरे पिछले पत्र की पहुँच भी आपने नही भेजी। परीक्षा मे आपके सुपुत्र की सफलता ऐसी है कि आप दोनो ही बधाई के पात्र है।"

परीक्षाओ की सफलताओ को मैं विशेष महत्त्व नही देता और स्वय शास्त्री जी को उस बारे मे लिखने की कल्पना भी नही कर सकता था पर माननीय शास्त्री जी इतने सहृदय और घरेलू तबियत के आदमी थे कि उन्होने उसके बारे मे दो पत्र भेजे। गुणग्राहकता उनका सबसे बडा गुण था। उनके पत्रो का एक सग्रह मद्रास मे छप गया था। पर उसमे मेरे केवल दो पत्र ही आ सके।

उनमे एक पत्र पोशाक के बारे मे था। मैंने एक चिट्ठी मजाक मे उन्हे भेजी थी, जिसका आशय यह था—'मुझे विदेश यात्रा करनी है पर मेरे सामने एक कठिनाई यह है कि मैं अँग्रेजी पोशाक विधिवत् नही पहन पाता' इत्यादि। इस पत्र का जो उत्तर माननीय शास्त्री जी ने दिया वह इतना महत्त्वपूर्ण था कि सर्वश्रेष्ठ पत्र-सग्रह मे उसे स्थान मिल सकता है। उसे

यहाँ अनुवाद सहित उद्धृत किया जाता है [1]

गोविन्द भवन शकरपुर
बसावनगुडी डाक०, बगलौर सिटी
10 दिसम्बर, 1924

मेरे प्रिय बनारसी दास,

अपनी औपचारिक पोशाक के बारे मे अपने हृदय को पीडित मत करो। यदि आप काफी लम्बे अर्से तक जीवित रहे और पर्याप्त प्रसिद्धि भी प्राप्त कर ले, और अपने को अनिवार्य रूप से आवश्यक बना दें तो आप किसी दिन चाहे जितनी छोटी और मौलिक पोशाक पहिन सकते है। श्री गाधी जी को देखिये, उनकी पोशाक का विकास उनकी प्रसिद्धि के अनुरूप हो रहा है। फर्क इतना ही है कि ज्यो-ज्यो प्रसिद्धि बढती जाती है, पोशाक छोटी होती जाती है। लेकिन उनकी अपेक्षा कोई छोटा मनुष्य उनके साथ नही चल सकता। दास और नेहरू अब भी अपने शरीरो के एक बडे भाग को ढके रहते हैं। यदि आप भारत के बाहर जावें तो औपचारिकता का उल्लघन नही कर सकते, हाँ अगर आपको अपने विशेष उद्देश्य की कोई चिन्ता न हो और औपचारिकता का विरोध आपका उद्देश्य बन जाए तो उससे लोगो का ध्यान आपकी ओर अवश्य आकर्षित हो सकता है। बनारसी दास! यह दुनिया बडी अजीब है। पहले उसके सामने झुकना होगा और महान् बनना होगा तब कही आप दुनिया को अपने सामने झुका सकते हैं। क्या गाधी जी ने शुरू से ही ऐसी पोशाक पहनी थी? यदि वह वैसा करते तो उनका अन्त भी दूसरा ही होता। यह छोटा-सा लेक्चर जो मैंने तुम्हे दिया उसके लिए अपने प्रमी श्रीनिवास को क्षमा कर दीजिये।

—वी० एस० श्रीनिवासन

माननीय शास्त्री जी के साथ पहली मुलाकात की भी एक बात मुझे याद आ रही है। वह शिमला जा रहे थे और आगरा स्टेशन पर मिलने के लिए मुझे बुलाया था। मैंने आगरे से मथुरा तक का फर्स्ट क्लास का टिकट खरीदा और स्टेशन पर ट्रेन की प्रतीक्षा करने लगा। ट्रेन के आते ही शास्त्री जी के सेक्रेटरी मिस्टर कोदण्डराव उतरे और उन्होने मुझे अनुमान से पहचान लिया। मैं शास्त्री जी के डिब्बे मे उपस्थित हुआ। शास्त्री जी ने मेरा बडे प्रेम से स्वागत किया। थोडी देर की बातचीत के बाद उन्होने कुछ मिठाई और नमकीन मेरे सामने रख दिया और कहा, "इनके प्रति न्याय कीजिए।" मैने उनकी आज्ञा का अक्षरश पालन किया। तत्पश्चात् शास्त्री जी ने कहा, "मेरी पत्नी यह जानना चाहती है कि आपको और क्या परोसा जाये?" मैंने सहज भाव से कह दिया, "लड्डू।" इस पर शास्त्री जी खूब हँसे। 'ब्राह्मणो मधुर प्रिय' उक्ति उन्हें याद थी। बडी खुशी के साथ श्रीमती शास्त्री जी ने मुझे लड्डू परोस दिये। हम लोगो की बातचीत

---

1. Govind Bhawan Shankarpur
Besavangudi P O Bangalore City,
10 December, 1924

Mr dear Banarasi Das

Don't break your heart over your conventional dress If you live long enough and become famous enough and make yourself indispensible you can dress someday as scantily and as originally as ever you please Look at Mr Gandhi whose dress is evolving in proportion to his fame Only as the latter increases the former decreases But no small man dares keep step with him in that respect Even Das and Nehru still cover a great part of their bodies When you go out of India, you can not afford to defy convention at all unless you don t care for your specific mission and consider it sufficient just to defy convention and earn what notice that brings It is funny world Mr Banarasi Das we have to live in, bend first to it and become great then you can make it bend to you Did Gandhi always dress like this? If he had begun so he would have ended differently Forgive me for a lecture from one who loves you

—V S Shrinivasan



श्रीनिवास शास्त्री

किसी के बारे मे होती रही कि इतने मे मथुरा स्टेशन आ गया। मैं ट्रेन से उतर पडा और शास्त्री जी भी बाहर आ गये। मुझसे एक गलती हुई कि मैं तुरन्त ही जाने लगा, इस पर शास्त्री जी ने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "यग मैन, लेट माई ट्रेन डिपार्ट फर्स्ट," (अर्थात् युवक ! पहले मेरी ट्रेन तो छूट जाने दो।) मैने उनकी आज्ञा का पालन किया। शास्त्री जी के साथ बिताये उस एक घण्टे की याद मेरे मस्तिष्क म अब भी ताजा है।

युवको के साथ व्यवहार करने मे वह अत्यन्त कुशल थे। एक बार मुझे उनके साथ बम्बई से दिल्ली की यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बात यह हुई थी कि कनाडा, ऑस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैड की यात्रा से लौटने पर बम्बई मे लिबरल पार्टी की ओर से उनका स्वागत हुआ था। मै भी उसी मीटिंग मे शामिल होने के लिए साबरमती से बम्बई गया था। मीटिंग समाप्त होने पर शास्त्री जी मच से उतरकर श्रोताओ के बीच खडे मेरे पास चलकर आये। मुझे बडा आश्चर्य हुआ। पाँच-सात मिनट तक बातचीत होती रही। शास्त्री जी ने कहा, "आप मेरे साथ दिल्ली चलिये।" मैंने उत्तर दिया, "शास्त्री जी, मैं तो गुजरात नेशनल कालिज मे अध्यापक हूँ और केवल दो दिन की छुट्टी लेकर आया हूँ।" शास्त्री जी ने पूछा, "आपके प्रिंसिपल कौन है ?" मैंने कहा, "आचार्य गिडवानी जी।" तब शास्त्री जी ने कहा, "आप प्रिंसिपल साहब को लिख दीजिये कि श्रीनिवास शास्त्री मुझे दिल्ली ले जाना चाहते है। कृपाकर चार दिन की छुट्टी और दे दीजिये। मुझे विश्वास है कि वह आपको छुट्टी अवश्य दे देगे।" मैंने गिडवानी जी की सेवा मे पत्र भेज दिया और अपने कमरे पर लौट आया। दूसरे दिन भारत सेवक समिति के सदस्य ठक्कर बापा मेरे निवास स्थान पर आये और बोले, "आपको गिरफ्तार किया जाता है।" मैंने कहा, "कृपया मेरा अपराध भी तो बताइये।" इस पर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "शास्त्री जी का हुक्म है कि मै आपको गिर-फ्तार करके स्टेशन ले जाऊँ। और फर्स्ट क्लास के डिब्बे मे बिठला दूँ।" मैं सहर्ष उनके साथ चल दिया।

उन दिनो बम्बई से दिल्ली का फर्स्ट क्लास का टिकट पचपन रुपये मे आता था। और ठक्कर बापा को शास्त्री जी ने साठ रुपये दिये थे। बापा साहब ने बाकी बचे पाँच रुपये के सन्तरे खरीदकर मेरे डिब्बे मे रख दिये थे। शास्त्री जी कुछ दूर एक अलग केबिन मे अपनी सुपुत्री के साथ बैठे थे। भोजन के समय शास्त्री जी ने अपने डिब्बे मे ही मुझे बुला लिया था। जब ट्रेन दिल्ली पहुँची तो स्टेशन पर तत्कालीन लॉ मेम्बर श्री तेज बहादुर सप्रू का सेक्रेटरी शास्त्री जी के स्वागतार्थ उपस्थित हुआ था। शास्त्री जी ने उनसे पूछा, "मेरे साथ एक व्यक्ति और भी हैं। क्या उनके ठहरने का प्रबन्ध भी हो सकेगा ?" उन्होने उत्तर दिया, "बडी खुशी से।"

इस प्रकार मैं भी सर तेज बहादुर सप्रू का अतिथि बन गया था। एक अलग कमरे मे मुझे ठहरा दिया गया। मैंने एक गलती की थी कि जाडे के कपडे, रजाई इत्यादि, अपने साथ नही ले गया था। शास्त्री जी ने बम्बई मे कहा भी था, "दिल्ली मे काफी ठण्ड होगी," पर मैंने व्यर्थ मे कह दिया था "शास्त्री जी मैं जानता हूँ, मै आगरे का निवासी हूँ।" दिल्ली पहुँचकर मुझे अपनी गलती महसूस हुई और तुरन्त चादनी चौक मे बैजनाथ चौबे कम्पनी के यहाँ गया और सर्दी के कपडे ले आया। जब मैं लौटकर आया तो सप्रू साहब के एक नौकर ने कहा, "हमारे मालिक दो बार आपके कमरे पर आ चुके है।" मेरा यह कर्त्तव्य था कि मैं सप्रू साहब के घर पर पहुँचने के बाद सर्वप्रथम उनके दर्शनार्थ जाता पर सकोचवश मैं न जा सका। सप्रू साहब 'लीडर' के पाठक थे और मेरे नाम से परिचित भी थे। उस समय की बाते तो मैं भूल गया पर दो बातो की मुझे अब भी याद है। सप्रू साहब ने कहा था, "'लीडर' मे आपके प्रवासी भारतीय विषयक लेख देखता रहता हूँ। इस बारे मे मुझसे कोई काम लेना हो तो बिना किसी सकोच के लिख दीजिये।" दूसरी बात जो मुझे याद आ रही है वह यह कि सप्रू साहब के यहाँ भोजन बहुत ही स्वादिष्ट था। चार तरह की दाले थी। कश्मीरी लोगो का भोजन उच्चकोटि का होता ही है। शास्त्री जी की कृपा से सप्रू साहब से साक्षात्कार का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो सका।

एक बार शास्त्री जी कानपुर आये हुए थे और वहाँ उन्होने मुझे मिलने के लिए बुलाया था। मैं फीरोजाबाद से वहाँ उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ। घण्टे-भर प्रवासी भारतीयो के विषय मे बातचीत होती रही। उसके सम्बन्ध मे माननीय शास्त्री जी ने 'सर्वेण्ट ऑफ़ इण्डिया सोसाइटी' के सदस्य श्री सदाशिव गोविन्द वझे को एक पत्र मे लिखा था :

"दिस टाइम बनारसीदास केम वेरी डीसेण्टली ड्रेस्ड। ईवन मिसेज सरोजिनी नायडूज आर्टिस्टिक आई शुड हैव हैड प्लीज्ड।" (अर्थात् इस बार बनारसीदास बडी अच्छी पोशाक मे आये। यहाँ तक कि श्रीमती सरोजिनी नायडू की कलापूर्ण दृष्टि भी प्रसन्न हो गई होगी।)

यद्यपि माननीय श्रीनिवास शास्त्री जी एक विश्व-विख्यात महापुरुष थे, और उनके भाषणो को सुनकर बड़े-बडे अँग्रेज भी दाँतो तले उँगली दबाते थे तथापि छोटे से छोटे कार्यकर्ता के साथ उनका बर्ताव अत्यन्त सहृदयतापूर्ण होता था। अपने स्वर्गवास के पहले उन्होने अपने मित्रो और परिचितो को एक गश्ती चिट्ठी भेजी थी जिसमे लिखा गया था कि न तो उनका कोई स्मारक बनाया जावे और न उनका कोई जीवन-चरित लिखा जाये। एक बार दिल्ली मे जब मैंने कहा कि मैं उनका रेखाचित्र प्रस्तुत करना चाहता हूँ तो उन्होने कहा था, "किसी मानव की प्रशसा करके सरस्वती माता का अपमान क्यो करना चाहते हो?" उनकी यह उक्ति महाकवि तुलसीदास की उक्ति के अनुरूप ही थी

कीन्हेसि प्राकृत जन गुनगाना,
सिर धुनि गिरा लागि पछताना।

8

कर्मवीर पण्डित सुन्दरलाल

सन् 1910 की बात है। उन दिनो मैं गवर्नमेन्ट हाईस्कूल, आगरा का विद्यार्थी था। हमारे अध्यापक श्री रघुनाथ प्रसाद जी ने मुझसे पूछा, "कौन-कौन-से अखबार पढते हो ?" मैंने पण्डित सुन्दरलाल जी के पत्र 'कर्मयोगी' का नाम ले दिया। मास्टर साहब ने कहा, "क्यो जेल जाने की तैयारी कर रहे हो ?" फिर भी मैं 'कर्मयोगी' बराबर पढता रहा और प० सुन्दर लाल जी का भक्त बन गया। पण्डित जी के दर्शन सर्व-प्रथम मुझे सन् 1917 मे हुए जबकि मैं इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्य के लिए इन्दौर से प्रयाग गया हुआ था। तभी से मैं उनका कृपा पात्र रहा हूँ और उन्हे मैं गुरु-तुल्य पूज्य मानता था। आगे चलकर सन् 1927 मे प० सुन्दरलाल जी ने ही सम्पादका-चार्य रामानन्द बाबू को पत्र लिखकर मुझे 'विशाल भारत' की सम्पादकी दिलवा दी थी। मेरा अनुमान है कि मैं ही पण्डित जी का सबसे पुराना शिष्य हूँ, भाई श्रीनारायण जी चतुर्वेदी तथा विश्वम्भरनाथ जी पाण्डे सम्भवत मुझसे बाद के हैं।

पण्डित जी पहले उग्र दल के समर्थक थे, लोक-मान्य तिलक तथा अरविन्द के भक्त, पर आगे चलकर वह महात्मा गाधी जी के अनुयायी हो गये। महर्षि अरविन्द के 'कर्मयोगी' पत्र से प्रेरणा लेकर उन्होंने भी उसी नाम का एक पत्र निकाला था और वह पत्र हिन्दी जगत् मे अत्यन्त लोकप्रिय हो गया था। उनकी लिखी 'भारत मे अँग्रेज़ी राज' तो देश-भर मे प्रसिद्ध हो गयी थी। नर्म दल के आदमी उनके नाम से डरते थे। इस प्रसग मे मुझे एक घटना याद आ रही है

स्व० माता रामेश्वरी नेहरू ने अपने अप्रकाशित आत्म-चरित मे लिखा था "मैंने 'स्त्री-दर्पण' मे प्रकाशित एक लेख के लिए दस रुपये का मनीआर्डर प० सुन्दरलाल जी को भेजा था। जब उस मनीआर्डर की रसीद आई तो पूज्य प० मोतीलाल नेहरू ने उसे देखकर कहा था, "सुन्दरलाल को पैसा भेजकर हमे कौन आफत मे फँसाना चाहता है ?" फिर भी मैंने मनीआर्डर भेजना जारी रखा। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पण्डित जी उन दिनो मॉडरेट (नर्मदल) मे थे पर आगे चलकर तो वह अत्यन्य उग्र हो गये थे।

पण्डित सुन्दरलाल जी का जन्म सन् 1886 मे हुआ था। उनका विवाह 17-18 वर्ष की उम्र मे हो गया था। दो-तीन वर्ष बाद ही उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। पण्डित जी 1905 से ही कांग्रेस का कार्य करने लगे थे और बनारस कांग्रेस मे सम्मिलित भी हुए थे। पत्नी के देहान्त के बाद उनकी साली के साथ उनके विवाह की चर्चा चली थी पर उसकी सगाई दूसरी जगह हो गयी और पण्डित जी ने फिर

विवाह नही किया। पूरे 75 वर्ष पण्डित जी ने देश-सेवा के अनेक कार्य विभिन्न क्षेत्रो मे किये। वे उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की कांग्रेस के सभापति भी रहे। मौलाना मुहम्मद अली ने एक बार उनसे कहा था, "आप तो कांग्रेस प्रेसीडेण्ट बनने की योग्यता रखते है।" यह बात भूलने की नही कि नागपुर का 'झण्डा सत्याग्रह' उन्ही के द्वारा सचालित हुआ था। पण्डित सुन्दरलाल जी दरअसल हिन्दू-मुस्लिम-एकता के मसीहा थे। इस विषय पर उन्होने काफी लेख तथा ग्रन्थ भी लिखे थे। इस पद और प्रतिष्ठा के लिए उनके मन मे कोई मोह नही था। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। यदि वह चाहते तो कभी भी लोकसभा या राज्य सभा के सदस्य बन सकते थे। पर इसकी कल्पना भी उन्होने नही की। अनेक बार उन्हे आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पडा। काफी दिनो तक वह शुभ-चिन्तको की आर्थिक सहायता पर ही जीवित रह सके। किसी भी जनोपयोगी कार्य के लिए अथवा मित्रो तथा भक्तो की सहायता के किसी भी काम के लिए वह सदैव उद्यत रहते थे।

एक बार की घटना मुझे याद आती है, एक क्रातिन्कारी श्री लद्धाराम जी की आर्थिक सहायता के लिए वह मेरे साथ श्रीमान् जुगल किशोर बिडला के मत्री प० जनार्दन भटट के पास गये थे। पण्डित जी उनके पूज्य पिताजी प० बालकृष्ण भट्ट के शिष्य थे। भट्ट जी ने स्पष्ट रूप से कह दिया, "मुझे तो केवल पच्चीस रुपये तक देने का अधिकार है। वह रकम मैं आपको भेट कर सकता हूँ।" पण्डित जी को इससे निराशा तो हुई पर उन्होने बुरा नही माना और कहा, "तागे का किराया तो आप दे ही दीजिये।" इस प्रकार तीन-चार रुपये और मिल गये। रास्ते मे पण्डित जी ने कहा, "इसी तरह माँगते-माँगते मेरी सारी जिन्दगी बीत गयी।"

पण्डित जी सयुक्त प्रान्त उत्तर प्रदेश मे उग्र राज-नीति के प्रवर्तको मे से थे। 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक प० बालकृष्ण भट्ट ही उनके आदर्श थे। पण्डित जी लेखक तो उच्चकोटि के थे ही अनुवादक भी बहुत अच्छे थे। उन्होने एडवर्ड कार्पेण्टर की प्रसिद्ध पुस्तक 'सिविलाइज़ेशन, इट्स कॉज़ एण्ड क्योर' का अनुवाद भी किया था जो 'सभ्यता महारोग' के नाम से छपा था।

जब वह 'भारत मे अँग्रेजी राज' नामक पुस्तक लिख रहे थे, तब लगभग एक महीने कलकत्ते मे मेरे अतिथि रहे थे और उनके साथ महात्मा भगवान-दीन जी तथा श्री विश्वम्भरनाथ जी पाण्डे भी रहे थे। वह पुस्तक मुख्यतया मेजर बी० डी० बसु के ग्रन्थ 'राइज आफ क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया' के आधार पर लिखी गयी थी। यद्यपि उसमे बहुत मौलिक सामग्री भी है।

सन् 1905 से लेकर सन् 1981 तक 76 वर्षों मे पण्डित जी ने अनेक सार्वजनिक आन्दोलनो मे भाग लिया था। उनके अनेक कार्य भारतीय स्वाधीनता सग्राम के इतिहास मे अमिट छाप छोड गये है। पर व्यक्तिगत तौर पर अपने मित्रो तथा भक्तो की जो सहायता उन्होने की, उसका ब्यौरा कही नही मिलता। अपने साथियो तथा शिष्यो के व्यक्तित्व के विकास के लिए वह सदैव चिन्तित रहते थे। जब डॉक्टर किचलू वियना जा रहे थे तो पण्डित सुन्दर लाल जी ने तार देकर मुझे उनके साथ जाने का आदेश दिया था पर खेद है कि मै जा न सका। जब पण्डित जी एक दल लेकर चीन जा रहे थे तब भी उन्होने मुझे साथ ले जाने का आग्रह किया था। अन्य यात्रियो से उन्होने यात्रा-व्यय के लिए चौदह सौ रुपये लिए थे पर चार टिकट फ्री रखे थे। उनमे एक वह मुझे भी देना चाहते थे। उस अवसर पर भी मैं चूक गया। इस कारण क्रुद्ध होकर उन्होने मुझे नालायक की उपाधि दे दी थी। जब दूसरी बार मै राज्य सभा मे जाने का प्रयत्न कर रहा था तब मेरी सिफारिश करने के लिए वह मौलाना आज़ाद के

निवास-स्थान पर गये थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि सन् 1934 मे पण्डित जी ने ही मेरा परिचय मोलाना आज़ाद से कराया था और तभी मोलाना साहब ने मेरे द्वारा प्रकाशित 'हज़रत मुहम्मद' नामक पुस्तिका की भूमिका भी लिखी थी।

जब 1952 मे मेरा नाम कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के सामने आया तब मौलाना आज़ाद ने, जो उक्त बोर्ड के सभापति थे, मेरे नाम का समर्थन कर दिया था। दिल्ली षड्यन्त्र केस के लाला हनुमत सहाय से भी उन्होने मेरा परिचय करा दिया था। हिन्दू-मुस्लिम एकता के विषय मे मैं पण्डित जी का अनुयायी था और जब मेरे द्वारा सम्पादित पत्र 'विशाल भारत' के मालिक रामानन्द बाबू हिन्दू महासभा के सभापति हुए थे तो मैंने उनके इस कार्य के विषय मे एक सम्पादकीय नोट छाप दिया था। पण्डित सुन्दरलाल जी को मेरा यह साहस पसन्द आया था और रामानन्द बाबू के स्वर्गवास के बाद उन्होने इसका उल्लेख भी कर दिया था।

मेरे कार्यों मे सहयोग देने के लिए वह सदैव तत्पर रहते थे। क्रान्तिकारी कवि लालचन्द्र फलक को आर्थिक सहायता दिलाने के लिए वह मेरे साथ राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू की सेवा मे भी उपस्थित हुए थे। जब दिल्ली मे क्रान्तिकारी परिषद् के प्रथम अधिवेशन के समय लाला हनुमन्त सहाय जी स्वागतकारिणी के सभापति के प्रश्न पर रूठ गये थे तो मनाने के लिए हम दोनो ही उनकी सेवा मे उपस्थित हुए थे।

यदि मैं उन सब कृपाओ का उल्लेख करूँ जो पण्डित जी ने मुझ पर की थी, तो लेख का आकार बहुत बढ जायेगा। अप्रैल 1930 मे मैंने 'विशाल भारत' मे पण्डित जी का स्केच लिखा था जो उनके भक्तो को बहुत पसन्द आया था। पण्डित जी गीता के निष्काम कर्म के अनुयायी थे। एक बार उन्होने मुझसे कहा था, "मुझे तो वह बात अच्छी लगती है। एक आदमी डूब रहा है। हम उधर से जा रहे है, हम तैरना जानते हैं। कूद पडे, निकाल दिया और बिना परिचय या बातचीत के चलते बने।" मैने उक्त रेखाचित्र मे यह भी लिखा था, "जब हमारे देश के कितने ही नवयुवक नेता स्वाधीनता सग्राम मे विजयी होकर देश के शासक होने के सौभाग्य पूर्ण अवसर प्राप्त करेगे—यह स्वाभाविक है और उचित भी -उस समय भी सुन्दरलाल किसी न किसी क्रान्तिकारी लडाई मे व्यस्त होगे और अपने से लडना, विदेशियो से लडने की अपेक्षा कठिनतर होगा। सुन्दरलाल जी बैठ रहने वाले जीव नही हैं। सक्षेप मे उनका परिचय दिया जाय तो हम इतना कह सकते हैं कि सुन्दरलाल जी बिना किसी लगालेस के खालिस क्रान्तिकारी है।"



पण्डित सुन्दरलाल जी, पण्डित परमानन्द जी, डा० खानखोजे और लाला हनुमन्त सहाय (प्रसिद्ध क्रान्तिकारी)

आज से तरेपन वर्ष पहले लिखी हुई मेरी भविष्यवाणी सर्वथा सत्य सिद्ध हुई। पण्डित सुन्दरलाल जी ने निष्काम सेवा का जो महान् यज्ञ 1905 मे प्रारम्भ किया था उसका समापन उसी भावना से 1981 मे हो गया। उनके निराले व्यक्तित्व की यही खूबी थी।

9

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

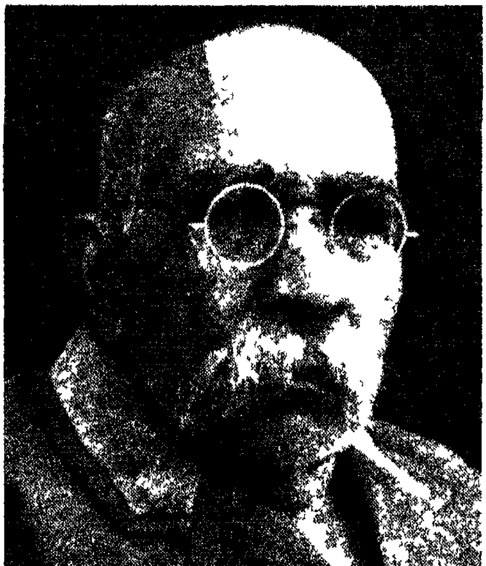
पूज्य द्विवेदी जी के दर्शन मैंने प्रथम बार सन् 1917 ई० मे उस समय किये थे, जब मैं प्रताप के मैनेजर स्व० शिवनारायण मिश्र के साथ कानपुर के निकट जुही मे उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ था। उस समय एक गलत-फहमी हो गयी थी। मैं उन दिनो 'प्रवासी भारत-वासी' नामक पुस्तक लिख रहा था। मैंने द्विवेदी जी की सेवा मे निवेदन किया, "प्रवासी भारतीयो की ओर से मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि आप उसके विषय मे कुछ लिखे।" द्विवेदी जी ने सहज भाव से पूछा, "क्या प्रवासी भारतीयो ने आपको अपना प्रतिनिधि चुना है ?" मुझे यह प्रश्न व्यग्यात्मक जँचा और मैंने बिना नाम दिये 'प्रवासी भारतवासी' की भूमिका मे इसका उल्लेख भी कर दिया। पूज्य द्विवेदी जी को यह बात खटकी और सन् 24 के अपने एक पत्र मे उन्होने इसका ज़िक्र भी किया था। तब मैंने अपनी इस गलतफहमी के लिए उनसे क्षमा-याचना कर ली थी। पूज्य द्विवेदी जी निस्सन्देह युग-निर्माता थे। मेरे मन मे उनका जीवन-चरित लिखने की कल्पना भी आयी थी पर मै अपने इस सकल्प को पूरा नही कर सका। यद्यपि मैंने तीन बार दौलतपुर की तीर्थयात्रा की थी। एक यात्रा मे मैं अपने साथ बन्धुवर श्रीराम शर्मा को भी ले गया था। उस वक्त की एक घटना मुझे याद आ रही है

हम दोनो द्विवेदी जी के साथ टहलने गये थे। टहलकर लौटे तो श्रीराम जी ने अपने जूते कमरे से बाहर उतार दिये थे। हम लोग द्विवेदी जी के पास बैठे ही थे कि द्विवेदी जी कमरे के बाहर उठकर गये और उन्होने श्रीराम जी के जूते अपने हाथ मे ले लिये। श्रीराम जी झपटकर वहाँ पहुँचे और कहा, "यह क्या कर रहे हैं आप ?" द्विवेदी जी ने कहा, "बाहर से आकर जूते की धूल पोछनी चाहिए नही तो वे जल्दी खराब हो जाते हैं। आप देखते है जो काडा आपके सामने टँगा हुआ है, वह मेरे पास बीस साल से है। अपनी चीजो की देखभाल रखनी पडती है।" दरअसल द्विवेदी जी बडे किफायतसार थे। जूते उठा कर उन्होने अपनी विनम्रता का साक्षात् परिचय दिया था।

ऐसी ही एक घटना मेरे साथ 'जमाना' के एडीटर स्व० मुन्शी दयानारायण निगम के मकान पर घटी थी। मैं बाहर जूते उतार कर उनके कमरे मे (कानपुर) गया था। थोडी देर बाद निगम साहब बाहर जाने लगे। मैंने पूछा, "कहाँ जा रहे हैं ?" वह बोले, "यहाँ बन्दर बहुत है और वे आपके जूते उठा ले जा सकते हैं, इसलिए उन्हे (आपके जूतो को) मैं उठाकर यहाँ लाऊँगा।" मैंने कहा, "मैं स्वय ही

यह काम किये लेता हूँ ।" तब मुझे यह अनुभव हुआ था कि यह उन दोनो महापुरुषों की अदा ही थी ।

यद्यपि द्विवदी जी का जीवन-चरित मैं लिख नहीं सका तथापि उनके 70-75 पत्र मैंने सुरक्षित कर लिये थे जो राष्ट्रीय अभिलेखागार, जनपथ, नई दिल्ली मे जमा हैं । इसके सिवाय उन पर कई लेख भी 'विशाल भारत' मे लिखे थे । दिल खोलकर जैसी चिट्ठी द्विवेदी जी ने मुझे लिखी थी, वैसी शायद ही किसी दूसरे को लिखी हो । उनके पत्रो मे एक पत्र बडा महत्त्वपूर्ण है । कलकत्ते मे एक सज्जन ने 'विशाल भारत' कार्यालय मे आकर मुझसे कहा था,



आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

"द्विवेदी जी के पास तो लाखो रुपये है ।" मैंने धृष्टतापूर्वक यह बात ज्यो की त्यो द्विवेदी जी को लिख भेजी । मैं यह जानता था कि उसे पढ़ कर द्विवेदी जी उबल पडेंगे । मेरा अनुमान सच निकला । मेरी उस चिट्ठी के उत्तर मे द्विवेदी जी ने जो पत्र भेजा था, वह ऐतिहासिक महत्त्व का बन गया है । उस पत्र मे उन्होने अपनी दानशीलता एव सेवाओ का स्पष्टतापूर्वक उल्लेख किया । कितने ही विद्यार्थियो को उन्होने पढ़ाया था, कितनी ही विधवाओ की उन्होने मदद की थी जबकि उन्हे कुल जमा 50 रुपये मासिक इडियन प्रेस से मिलते थे । यह बात ध्यान देने योग्य है कि रेल-विभाग की 200 रुपये की नौकरी छोडकर द्विवेदी जी 23 रुपये महीने पर 'सरस्वती' के सम्पादक बने थे । उनका वेतन 20 रुपये मासिक था और 3 रुपये डाक व्यय के लिए उन्हे मिलते थे । एक बार स्वर्गीय भाई श्रीराम शर्मा जी ने द्विवेदी जी से कह दिया कि मैं फिजूलखर्ची किया करता हूँ । इस पर द्विवेदी जी ने मुझे फटकार बतला दी और लिखा, "आखिर आप पौने दो सौ रुपये किस तरह खर्च किया करते है । मुझे तो जब बीस रुपये महीने मिलते थे, उनमे से भी चार रुपये मैं बचा लेता था ।"

पूज्य द्विवेदी जी मे कृतज्ञता का गुण बडी मात्रा मे पाया जाता था । जब मैंने उनके यहाँ एक जरा-जीर्ण बूढ़ी गाय देखी तो मैं ग़लती से पूछ बैठा, "यह मरघिल्ली गाय आपने क्यो पाल रखी है ?" वह बोले, "चौबे जी, आप नही जानते, बहुत वर्षों तक इस गाय ने हमे दूध पिलाया था । अब इसकी वृद्धावस्था मे मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इसका पालन-पोषण करूँ सो मै जहाँ तक बन सकता है, इसे हरी घास खिलाता हूँ ।"

द्विवेदी जी के गाँव के निकट एक सुप्रसिद्ध अनुभवी वैद्य रहते थे । उन्होंने मुझसे कहा, "यद्यपि मैंने कितने ही धनवानो और ताल्लुकेदारो का इलाज किया है, तथापि द्विवेदी जी जैसा कृतज्ञ मरीज़ अपने जीवन मे दूसरा नही मिला । बम्बई से मन्दाग्नि के शिकार होकर गाँव को लौटे तो मेरे इलाज से वह स्वस्थ हो गये थे । इसे कितने ही वर्ष बीत चुके है । पर तब से प्रत्येक शीत ऋतु मे मेरे लिए जाडे के

कपडे बनवा देते थे ।"

दौलतपुर ग्राम की पचायत के सरपच वही थे, और पूरी निष्ठा के साथ मुकदमो का निर्णय करते थे। कभी-कभी तो गरीबो पर किये गय जुरमाने को वह अपने पास से ही भर देते थे ।

द्विवेदी जी बडे वैज्ञानिक मस्तिष्क के आदमी थे। सगुन-असगुन वह बिलकुल नही मानते थे और कभी-कभी तो तेल की कुप्पी रख प्रस्थान करते थे ।

अपनी पत्नी के स्वर्गवास के बाद उन्होंने एक मन्दिर मे उनकी मूर्ति स्थापित कर ली थी।

एक बार जब वे तखत पर लेटे हुए थे, उन्होंने अपने पास बिठलाकर मुझसे कहा, "तुम्हारी पत्नी का देहान्त हो चुका है। क्या तुम सयमपूर्वक रह सकोगे ?" मैने उत्तर मे कहा, "दो-तीन वर्ष से तो रह ही रहा हूँ।" इस पर द्विवेदी जी बोले, "यह अत्यन्त कठिन है। मैंने तो अपने को नपुसक बनवा लिया है। फिर भी लोग मेरे चरित्र पर आशका करते हैं।"

जब मैं पहली बार दौलतपुर गया था तब द्विवेदी जी ने मुझसे कहा था, "जब कही जाते है तो कुछ लेकर जाते है। तुम देखते हो कि मैं शहर से कई मील दूर रहता हूँ। यहाँ फल-फलेरी कुछ नही मिलते। आपको कानपुर से कुछ लेकर आना चाहिए था। शिष्टाचार का यही तरीका है।" यह सुनकर मैं बहुत लज्जित हुआ और दूसरी बार की यात्रा मे या फिर कभी यह गलती मैंने नही की। अपनी दूसरी बार की यात्रा मे मैं सन्तरे ले गया था जिनमे से अधिकाश उन्होंने मुझे ही खिला दिये थे।

द्विवेदी जी 'विशाल भारत' के नियमित पाठक थे और मुझे उनके आशीर्वाद सदैव प्राप्त रहे। जब एक लेखक महोदय ने मेरे खिलाफ एक लेख लिखा तो द्विवेदी जी ने श्रीराम शर्मा को लिखा था, "उस लेख को पढकर मैं खून का घूँट-सा पीकर रह गया। यदि पत्र के मालिक को लिखता तो लेखक का विशेष अहित हो सकता था।"

पूज्य द्विवेदी जी को इडियन प्रेस से केवल पचास रुपये मासिक पेशन मिलती थी, फिर भी उनकी दानशीलता बरकरार थी, इसलिए आर्थिक सकट रहता था। उस परिस्थिति मे उन्होंने महाराजा वीरसिंह जू देव को एक पत्र लिखा था जिसमे आर्थिक सहायता की आशा की गई थी पर वह ऐसा कर नही सके। द्विवेदी जी के एक विरोधी ने महाराज से कह दिया था कि द्विवेदी जी तो बहुत साधन-सम्पन्न व्यक्ति है ।

अन्तिम यात्रा मे जब मैं द्विवेदी जी के पास से विदा होने लगा और मैंने आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की तो उन्होंने सस्कृत का अपना बनाया श्लोक लिख दिया —

आत्मानुलन च विधाय कार्यम्
सदैव सत्येन पथ प्रयाहि।
कुर्वन् स्वशक्त्याय परोपकार
बनारसीदास सुखी भवत्वम् ॥

10

स्वर्गीय पण्डित पद्मसिह शर्मा

स्व० शर्माजी के जीवन का अधिकाश भाग दूसरो को प्रोत्साहन, यानी दाद देने मे ही बीता। यहाँ तक कि 'दाद' शब्द उनके नाम के साथ ही जुड़ गया था। वह सस्कृत, हिन्दी और उर्दू के विद्वान् थे। उन्होने इन तीनो भाषाओ के लेखको और कवियो की रचनाओ की यथोचित प्रशसा की थी। महाकवि अकबर ने तो उनके बारे मे यहाँ तक लिखा था कि उनकी जिन श्रेष्ठ रचनाओ को उर्दू के प्रतिष्ठित लेखक और समालोचक भी ठीक तरह से नही समझ सके थे, उनकी दाद प० पद्मसिह जी ने दी थी। सस्कृत के महाविद्वान् स्व० हृषीकेश भट्टाचार्य की सस्कृत रचनाओ का सग्रह करके उन्होने प्रकाशित कराया था, स्व० कविरत्न सत्यनारायण को तो उन्होने बहुत प्रोत्साहित किया ही था। जब राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त 'भारत-भारती' लिख रहे थे, प० पद्मसिह जी ने उन्हे बहुत-से सुझाव भेजे थे। स्व० प्रेमचन्द जी की प्रारम्भिक रचनाओ की भी उन्होने प्रशसा की थी जिससे वह बहुत प्रोत्साहित हुए थे। महाकवि शकर जी के तो वह अनन्य भक्त थे ही। स्व० हरिशकर शर्मा, श्रीराम शर्मा तथा मेरे तो वह गुरु ही थे। हम तीनो को उन्होने बहुत प्रोत्साहन दिया था।

मैंने स्व० शर्माजी के स्वर्गवास के बाद उनकी स्मृति मे 'विशाल भारत' का 'पद्मसिह शर्मा अक' निकाला था। तत्पश्चात् बन्धुवर हरिशकर जी की सहायता से 'सैनिक' का 'पद्मसिह अक' भी छपाया था। इसके बाद 'त्यागी' के पद्मसिह शर्मा अक मे भी मुझसे कुछ सेवा बन पडी थी। आचार्य जी के पत्रो का सग्रह मैंने किया था और बन्धुवर हरिशकर ने उनका सम्पादन। आत्माराम एण्ड सन्स द्वारा वह पुस्तकाकार मे प्रकाशित हुए थे। बन्धुवर रमेशचन्द्र दुबे ने भी उन पर एक अच्छा स्मृति ग्रन्थ निकाला है। इसके सिवाय हाल ही मे प्रयाग सम्मेलन ने कई साहित्य-सेवियो की शताब्दी पर अपनी 'सम्मेलन-पत्रिका' का विशेषाक निकाला है जिसमे बहुत-से पृष्ठ प० पद्मसिह जी को भी अर्पित किये गये है। भाई हरिशकर जी तथा मेरे प्रयत्न से आगरे के के० एम० मुशी विद्यापीठ ने चार हजार रुपये प० पद्म सिह जी के वशजो को देकर उनका पुस्तकालय और पत्र सग्रह अपने यहाँ सुरक्षित कर लिया था। जिस कक्ष मे उनकी सामग्री रखी गयी थी उसका नाम 'पद्म सिह शर्मा कक्ष' रख दिया गया था। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद भी उस कक्ष मे पधारे थे और उन्होने वहाँ भाषण देते हुए कहा था कि पद्मसिह जी उनके भी गुरु थे जिनसे उन्हे बहुत प्रोत्साहन मिला था।

आचार्य जी पर दो शोध ग्रन्थ भी तैयार हो चुके हैं— एक भाई विद्याशकर जी की सुपुत्री मधु ने किया है और दूसरा स्व० प्राणेश जी ने किया था। खेद की बात है कि 'पद्म पराग', प्रथम भाग का द्वितीय सस्करण अभी तक नही छप सका जबकि प्रथम सस्करण बन्धुवर राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह ने बहुत वर्ष पहले ही छपवा दिया था। 'पद्म पराग', द्वितीय भाग के लेखो का सकलन भाई हरिशकर जी ने किया था। उसे भाई रामनाथ शर्मा ने दिल्ली के किसी प्रकाशक को दे दिया था और वहाँ वह खो गया। फिर भी उसके बहुत-से लेखको का पता डॉ० मधु जी ने लगाकर सग्रह कर लिया है। क्या ही अच्छा हो यदि उनका शोध ग्रन्थ छप जाय !

हर्ष की बात है कि के० एम० मुशी विद्यापीठ के निदेशक आचार्य विद्या निवास जी मिश्र का ध्यान प० पद्मसिंह शर्मा की कीर्ति-रक्षा की ओर आकर्षित हुआ है और वह उनकी सम्पूर्ण रचनाओ को छपाने की बात सोच भी रहे है। मेरा एक सुझाव है कि पाठ्य-क्रम मे नियुक्त करने के लिए ढाई सौ-तीन सौ पन्ने की एक पुस्तक छपा दी जाय जिसमे आचार्य प० पद्मसिंह जी की सर्वोत्तम समीक्षाओ तथा चुने हुए पत्रो का सग्रह हो। उदाहरण के लिए उनके लिखे



सम्कृत हिन्दी एव उर्दू के विद्वान् पण्डित पद्मसिंह जी

महाकवि अकबर, सत्यनारायण कविरत्न और सरदार पूर्णसिंह के सस्मरण महत्त्वपूर्ण हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पाठ्य पुस्तको मे किसी लेखक या कवि की रचनाओ का उद्धृत होना उसकी कीर्ति-रक्षा मे बहुत सहायक होता है।

11

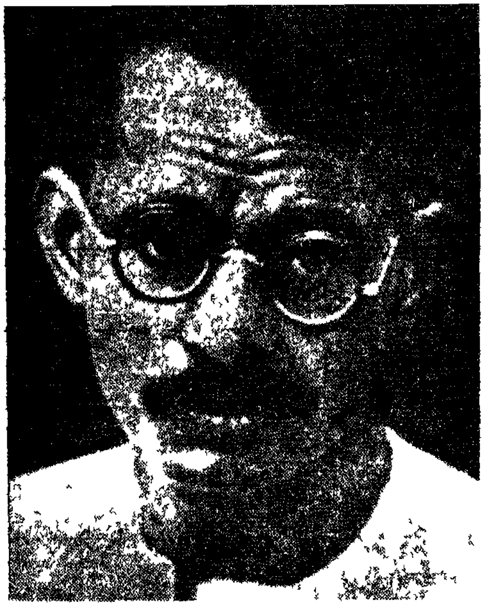
गणेश शंकर विद्यार्थी

अमर शहीद गणेश शकर विद्यार्थी से मेरा साक्षात् परिचय सन् 1915 मे हुआ था। वह चित्तौड से खडवा जा रहे थे और इन्दौर स्टेशन पर उन्होने मुझे बुलाया था। उससे पूर्व उनमे पत्र-व्यवहार हो चुका था और मेरा एक लेख 'प्रताप' के विशेषाक मे छप भी चुका था। पर शक्ल से न वह मुझे पहचानते थे, न मै उन्हें। स्टेशन पर थोडी देर, चार-पाँच मिनट, ही गाडी ठहरती थी। गणेश जी को कैसे पहचाना जाये, सवाल मेरे सामने था। मैंने यह अनुमान लगा लिया था कि लम्बे-दुबले शरीर के होगे और शायद चश्मा भी लगाते हो। घूमते-घूमते एक डिब्बे के पास पहुँचा जहाँ नीचे प्लेटफार्म पर एक सज्जन खडे हुए थे। मैंने उनसे पूछा, "क्या आप ही गणेश शकर विद्यार्थी हैं ?" उन्होने कहा, "हाँ।" फिर उन्होने कहा कि "आप पडित तोताराम !" मैंने उत्तर मे कहा कि "मैं उनका प्रतिनिधि हूँ। मेरा नाम बनारसीदास है।" चूँकि मैं राजकुमार कॉलिज, इन्दौर, मे काम करता था, इसलिए प० तोताराम के नाम से पत्र-व्यवहार किया करता था। उस दिन गणेश शकर जी से जो सम्बन्ध कायम हुआ, वह उनके जीवन-पर्यन्त रहा।

गणेश शकर जी निस्सदेह एक महामानव थे। उन्हे जो शहादत मिली वह आकस्मिक घटना नही थी बल्कि वह उनके अखण्ड तपस्यापूर्ण जीवन का अवश्यम्भावी परिणाम थी।

यद्यपि गणेश जी स्वय अहिसावादी थे तथापि क्रान्तिकारियो की बडी मदद करते थे। अशफ़ाक-उल्ला और रोशनसिह को साथ लेकर वह पेजमियाँ, जिला बिजनौर गये थे और उन्हे वहाँ शरण दिलाई थी। भगतसिह तो उनके कार्यालय मे रहते ही थे।

स्व० श्री कृष्णदत्त पालीवाल, श्रीराम शर्मा, ठाकुर प्रसाद शर्मा, दशरथ प्रसाद द्विवेदी, सुरेन्द्र शर्मा, बालकृष्ण शर्मा नवीन, शिवनारायण मिश्र, देवव्रत शास्त्री इत्यादि ने तो उनके कार्यालय मे काम ही किया था। स्व० देवव्रत शास्त्री ने उनका जीवन-चरित लिखा था जिसका तृतीय सस्करण मेरे अनुरोध पर आत्माराम एण्ड सन्स ने अपनी 'शहीद ग्रन्थ माला' मे छाप दिया था। मेरे पास गणेश जी के अनेक पत्र आए थे जिनमे केवल आठ ही मैं सुरक्षित रख सका। वे पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार, जनपथ, नई दिल्ली, मे मेरे सग्रह मे विद्यमान हैं। यद्यपि गणेश जी ने अपने जीवन मे सहस्रो ही पत्र लिखे होगे तथापि केवल 40-45 ही बचे हैं जिनका उपयोग बन्धुवर डॉ० लल्लन मिश्र ने अपने गणेश शकर विद्यार्थी नामक शोध-प्रबन्ध मे कर लिया है। जब गणेश जी कौंसिल के लिए खडे हुए थे तो मैंने धृष्टता-



अमर शहीद गणेश शकर विद्यार्थी

पूर्वक एक पत्र उनकी सेवा मे भेजा था जिसमे मैंने उनसे पूछा था, कि आप जैसा सार्वजनिक कार्यकर्ता उस व्यर्थ के व्यापार मे क्यो फँसना चाहता है? इसका बडा विनम्रतापूर्ण उत्तर उन्होने दिया था, जो कि उनके जीवन-चरित मे प्राय उद्धृत किया जाता है। उसमे उन्होने लिखा था कि "मुझे बलिदान का बकरा बनाया गया है। कानपुर से कौसिल के लिए एक सेठ खडा हुआ है और यहाँ की जनता का ख्याल है कि मैं ही उसका मुकाबला कर सकता हूँ।" गणेश शकर विद्यार्थी उस चुनाव मे विजयी हुए थे पर अपने चुनाव के खर्च का एक पैसा भी उन्होने 'प्रताप' से नही लिया था।

जब मैं 1924-25 मे पूर्व अफ्रीका गया था तो नैरोबी से अँग्रेज़ी मे गणेश जी पर एक लेख मैंने लखनऊ के 'एडवोकेट' नामक पत्र को भेजा था, जो अत्यन्त श्रद्धापूर्ण था और मेरी वह श्रद्धा निरन्तर बढ़ती ही गयी है। गणेश जी की शहादत के बाद मैंने जितने लेख 'विशाल भारत' मे छापे उतने 'प्रताप' मे भी नही छपे होगे। हिन्दी भवन 'कालपी' से गणेश शकर स्मृति ग्रन्थ मैंने छपवाया था जिसके लिए मेरी प्रार्थना पर श्री सम्पूर्णानन्द जी ने 2000 रुपये हिन्दी भवन को भेजे थे। उस स्मृति ग्रन्थ में मुझे श्रद्धेय झाबरमल शर्मा तथा भाई परिपूर्णानन्द जी का पूरा-पूरा सहयोग भी प्राप्त हुआ था। आगे चलकर 'नर्मदा' का गणेश शकर विद्यार्थी स्मृति अक स्व० शम्भूनाथ सक्सेना की सहायता से मैंने निकाला था और उसमे भी पण्डित झाबरमल शर्मा का सहयोग था। जब श्री भक्तदर्शन जी कानपुर विश्वविद्यालय के कुलपति थे, उनसे मैंने आग्रह किया था कि वह गणेश शकर विद्यार्थी पत्रकार-विद्यालय कायम करायें। वह वैसा तो नही कर सके पर उन्होने गणेश शकर व्याख्यान माला अवश्य प्रारम्भ कर दी थी। उसके अधीन मैंने भी दो भाषण दिये थे। एक अमरीकन मित्र मि० टिम्बर्ग से मैंने अनुरोध किया था कि वह अँग्रेज़ी मे गणेश जी पर एक पुस्तक लिखे। उन्होने कुछ सामग्री इकट्ठी की भी पर वह काम आगे न बढ सका। भाई लल्लन मिश्र ने कई वर्ष तक परिश्रम करके अपना शोध ग्रन्थ तैयार कर लिया पर वह अभी तक अप्रकाशित ही पडा हुआ है। गणेश जी के कुटुम्ब के पारस्परिक मतभेद के कारण उनके द्वारा अनुवादित 'ला मिजरेबिल' नामक फ्रेंच उपन्यास का अनुवाद अब तक बिना छपे पडा हुआ है। यह बडे सौभाग्य की बात है कि गणेश जी के बहुत-से लेखो का सग्रह भी अवस्थी जी ने प्रकाशित कर दिया है और उनकी स्मृति मे दैनिक 'गणेश' नामक पत्र भी निकल रहा है। दुर्भाग्य की बात यही हुई कि गणेश जी के सुपुत्र भाई हरिशकर तथा ओकार शकर अपने पूज्य पिता जी की स्मृति-रक्षा के लिए कुछ न कर सके। उत्तर प्रदेश सरकार ने उनके नाम पर एक मेडिकल कॉलिज कायम कर दिया है और निगम ने फूलबाग पार्क का नाम गणेश-उद्यान रख दिया है। फिर भी गणेश शकर जी का साहित्यिक श्राद्ध अभी अधूरा ही पड़ा हुआ है।

12

बाबू राजेन्द्र प्रसाद

श्रद्धेय बाबू राजेन्द्र प्रसाद के प्रथम दर्शन मुझे बम्बई मे सन् 1920-21 के आसपास सेठ जमनालाल जी बजाज के कालबा देवी वाले निवास स्थान पर हुए, जहाँ हम दोनो ही सेठ जी के अतिथि थे। उनकी विनम्रता की जो झाँकी मुझे उस समय दीख पड़ी वह मेरे हृदय-पटल पर अमिट रूप से अंकित हो गयी, और अब तक कायम है। राजेन्द्र बाबू हिन्दी के जाने-माने लेखक थे और हिन्दी साहित्य की गतिविधियो की जानकारी भी रखते थे। मैं आठ-नौ वर्ष ही से कुछ लिखता आ रहा था, फिर भी वह मेरी कृतियो से परिचित थे। जब उन्होने मुझसे कहा, "आप एक बार मेरी चम्पारन सम्बन्धी पुस्तक देख लीजिए और परामर्श दीजिए," तो मुझे आश्चर्य हुआ था। मैंने कहा, "भला आप जैसे महान् सिद्धहस्त लेखक की रचना के बारे मे मैं क्या सलाह दे सकूँगा।"

'विशाल भारत' का बिहार मे काफी प्रचार था। शायद बाबू जी उसके नियमित पाठक भी थे। स्व० देवव्रत शास्त्री जी ने उनका एक विस्तृत लेख भी 'विशाल भारत' को भेजा था।

स्व० बाबू जी से निकटतर सम्बन्ध तब स्थापित हुआ, जब वह राष्ट्रपति बने और मैं राज्य सभा का सदस्य बनकर दिल्ली पहुँचा। दिल्ली निवास के बारह वर्षों मे अनेक बार उन्होने मुझे अपनी कृपा का पात्र बनाया। उस समय की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है, कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) के निकट अस्सी लाख की लागत से बना राजेन्द्र सागर। बात यह हुई थी कि मैं बाबू जी के सेक्रेटरी चक्रधर शरण जी के पास ठहरा हुआ था। श्रद्धेय महादेवी वर्मा भी उन्ही की अतिथि थी। एक दिन बाबू जी ने हम दोनो को भोजन के लिए बुलाया। एक गोल मेज़ पर हम चार आदमी बैठे—बाबू जी, चक्रधर शरण, महादेवी वर्मा और मै। बीस मिनट मे उन तीनो ने भोजन प्राय समाप्त कर दिया। मैंने भी नाटकीय ढग से हाथ खीच लिए। इस पर चक्रधर बाबू ने कहा, "चौबे जी, आप राशनिंग के जमाने मे इतना भोजन खराब कर रहे हैं।" उत्तर मे मैंने कहा, "जब आप तीनो भोजन समाप्त कर चुके है तो मेरे खाते रहने से आप लोग समझेंगे कि बड़ा भोजन-भट्ट है।" इस पर बाबू जी ने मुस्कराते हुए कहा, "आप निस्सकोच भोजन कीजिये। जब तक आप भोजन करते रहेगे हम आपका साथ देगे।" राष्ट्रपति की आज्ञा और पेट की पुकार, दोनो का मैंने सम्मान किया और पन्द्रह मिनट निस्सकोच भोजन करता रहा। बाबू जी पुराने विचारो के थे और यह बात उन्हे असह्य थी कि कोई ब्राह्मण उनके यहाँ अतृप्त रह जाये।

भोजन करने के बाद मैं बाबू जी का पुस्तकालय देखने चला गया और डेढ घण्टे तक उसके पुराने काग़ज़-पत्र देखता रहा। अपना कुर्ता उल्टा टाँगकर किताबो के पन्ने पलटता रहा था कि चक्रधर शरण जी पधारे और कहने लगे कि आपने बाबू जी से समय माँगा था, सो वह आज ही देने को तैयार हैं। मैं तुरन्त उनके साथ हो लिया। जल्दी मे मैंने उल्टा कुर्ता पहन लिया था। मैं बाबू जी की सेवा मे उपस्थित हुआ। मैं उस समय बडे धर्म-सकट मे था क्योकि मैने बाबू जी से पूछने के लिए कुछ प्रश्न तैयार ही नही किये थे। मैं इस भ्रम मे था कि बाबू जी पाँच-सात दिन मे टाइम दे पावेंगे तब तक सवाल तैयार कर लूँगा। अकस्मात् मुझे एक बात सूझी कि बाबू जी को चौबे लोगो के किस्से सुना दूँ। मैंने तीन-चार किस्से एक के बाद एक करके सुनाये

"एक चौबे जी किसी यमराज के यहाँ भोजन करने गये और बेशुमार भोजन करने से उन्हे कुपच हो गयी। उनके एक शुभचिन्तक ने उनसे कहा कि चौबे जी, आप चूरन खा लें। चौबे जी बोले, 'अरे, चूरन को जगँ होती तो एक लाडू ही न खाय लेतो।' एक चौबे जी खाट पर लेटे हुए थे और लेटे लेटे ही अपनी पत्नी से बोले, 'अरे देखो तो धमाक की आवाज भई है।' पत्नी दीपक लेकर इधर आयी तो चौबे जी बोले, 'अरे जे तौ मैई गिरि परयो।' चौबे जी इतने मोटे-ताज़े थे कि उन्हे अपने खाट पर से गिरने की अनुभूति भी नहीं हुई।" बाबू जी इन किस्सो को सुनकर खूब हँसे, यहाँ तक कि उनको खाँसी आ गयी। इस पर मुझे कुछ चिन्ता हुई। शान्त होने पर मैंने सोचा कि बाबू जी के हर्ष-उल्लास का कुछ उपयोग कर लेना चाहिए। तुरन्त ही मैंने कहा, "बाबू जी हम लोगो को पानी के बिना बडा कष्ट है।" बाबू जी ने पूछा, "तो क्या किया जाय?" मैंने कहा, "हमारे कुण्डेश्वर निवास स्थान के आस-पास कही राजेन्द्र सागर बनवा दिया जाय।" बाबू जी ने कहा, "यह तो बडा अनुचित होगा कि मैं अपना नाम उसके साथ भेज दूँ।" इस पर मैंने कहा, "आप तो केवल सागर के लिए लिख दीजिए, नामकरण सस्कार तो हम लोग करेंगे।" बाबू जी सहमत हो गये। और उन्होने दूसरे दिन ही विन्ध्य प्रदेश सरकार को इस विषय का पत्र लिखवा भी दिया। मैं राष्ट्रपति से निवेदन करके चला आया। रास्ते मे चक्रधर बाबू ने कहा, "आप भी अजीब आदमी हैं। उल्टा कुर्ता पहनकर राष्ट्रपति के पास पहुँच गये।" तब मुझे अपनी मूर्खता का पता चला। मैंने चक्रधर बाबू से कहा, "तब क्या राष्ट्रपति से क्षमा याचना कर लूं?" इस पर वह मुस्कराकर बोले, "चिन्ता की कोई बात नही है। यही भूल बाबू जी भी कभी-कभी कर बैठते हैं।"

कुछ दिनो बाद विन्ध्य प्रदेश सरकार ने राष्ट्रपति जी के आदेशानुसार एक कुशल इजीनियर पार्टी रीवाँ से कुण्डेश्वर (टीकमगढ) भेजी। इजीनियर साहब ने वहाँ पहुँचकर मुझसे कहा, "वह स्थान बतलाइये जहाँ सागर बनवाना चाहते हैं।" मुझे इसका कुछ पता न था। हाँ, इतना अवश्य सुन रखा था कि छोटी-सी पहाडी के कोने से एक नाला निकलता है। मैं इजीनियर साहब की पार्टी को वहाँ ले गया। वह उसे देखकर बोले, "आपको इस बात का कुछ पता भी नही है कि बाँध कैसे बाँधे जाते हैं। यहाँ बाँध बनाने से पचासो गाँव डूब जायेंगे और करोडो रुपये खर्च हो जायेंगे।" इस पर मैंने निवेदन किया कि "यहाँ बाँध न बन सके तो हमारे जिले मे कही अन्यत्र बनाइये। राष्ट्रपति की आज्ञा का पालन होना ही चाहिए।" हमारे सौभाग्य से कुण्डेश्वर से केवल चार मील दूर एक उपयुक्त स्थान मिल गया जहाँ पहाडी के बीच नगदा नाला बहता था और वही स्थान चुन लिया गया। दो तीन वर्ष के भीतर ही अस्सी लाख की लागत से वहाँ राजेन्द्र सागर लहराने लगा जिससे साढ़े सात हज़ार एकड भूमि की सिंचाई होती है और वह जनपद धन-धान्य

सम्पन्न हो गया है। जहाँ प्रति एकड पाँच मन गेहूँ होता था अब पचास मन प्रति एकड होता है और अब गेहूँ की उपज मे टीकमगढ का स्थान मध्य प्रदेश भर मे दूसरा और खादकी खपत मे तो उसका स्थान सर्वोच्च ही है। कुण्डेश्वर मे अब चार-चार ट्रेक्टर दीख पडते हैं और मैक्सिको का गेहूँ वहाँ की भूमि को माफिक आ गया है। इस प्रकार राजेन्द्र बाबू की कृपा से हजारो व्यक्तियो की समस्या हल हो गयी।

मैंने बहुत-से आदमियो को राजेन्द्र बाबू से मिलाया था। उनमे श्रद्धेय पराडकर जी, पहलवान बलदेव गुरु, मारीशस के एक भारतीय तथा अन्य कई व्यक्ति थे।

बाबू जी की विनम्रता का क्या कहना! जब बन्धुवर हजारीप्रसाद द्विवेदी के साथ मैं उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ तो बाबू जी ने उठकर हम दोनो का स्वागत किया। इस पर द्विवेदी जी ने कहा, "बाबू जी हम लोगो को क्यो काँटो मे घसीटते है? आप तो हमारे पूज्य है।" एक बार जब मैं राष्ट्रपति से मिलने गया तो वहाँ एक लम्बी मेज पर बहुत-से ग्रन्थ रखे हुए थे। बाबू जी ने पूछा, "आप यह जानते हैं कि ये ग्रन्थ किसके है?" मैने निवेदन किया कि "नही।" इस पर वह बोले, "ये सब ग्रन्थ सातवलेकर जी के लिखे हुए हैं। वह हिन्दी, गुजराती, मराठी, तीनो भाषाओ मे लिखते हैं और सस्कृत के तो महान् विद्वान् हैं ही। हम हिन्दी वालो मे कौन उनका मुकाबला कर सकता है!"

राष्ट्रपति के यहाँ विभिन्न मौसमो मे भेंट स्वरूप फल आया करते थे। राष्ट्रपति उन्हें आठ-दस व्यक्तियो को बाँट दिया करते थे। उनमे एक नाम मेरा भी था। एक बार फल लेकर जब उनका आदमी आया तो उसके हाथ मे नामो की सूची थी जिसमे मेरे सिवाय आठ-नौ व्यक्ति और थे।

एक बार अवधी के सुप्रसिद्ध कवि वंशीधर



डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी को मेक्सिम गोर्की का चित्र भेंट करते हुए लेखक (बायें)

शुक्ल मेरे यहाँ फीरोजाबाद पधारे। उन्होंने मुझसे कहा, "आप राष्ट्रपति को एक पत्र लिख दीजिये।" मैंने पूछा, "कैसा पत्र?" तब उन्होने बतलाया, "हमारे एक रिश्तेदार ने दो कतल कर दिये थे। उन्हे फाँसी का हुक्म हो गया है। सब जगह से उनकी सजा बहाल रही। अब राष्ट्रपति से दया की भीख माँगनी है।" मुझे कुछ आशा तो थी नही फिर भी पत्र लिख दिया और चि० रामगोपाल के हाथ तुरन्त राष्ट्रपति जी की सेवा मे भेज दिया। राष्ट्रपति उन दिनो अस्वस्थ थे फिर भी उनकी निजी सचिव श्रीमती ज्ञानवती दरबार ने मेरा वह पत्र उन्हें दे दिया। राजेन्द्र बाबू ने उसे पढा और मुकदमे के सारे कागजात मँगाने का ऑर्डर दे दिया। चूँकि राष्ट्रपति महोदय स्वय बहुत अच्छे वकील रह चुके थे, उन्हें उन कागजातो मे अपराधी के दण्ड को कम करने की गुंजाइश दीख पडी और तदनुसार फाँसी के बजाय दस वर्ष के कठिन कारावास का हुक्म दे दिया गया। यह

हम सब लोगों के लिए बड़े आश्चर्य की बात थी ।

बाबू जी इतने विनम्र थे कि अपने पत्रो मे मुझे श्रद्धेय लिख दिया करते थे। इस पर मैंने उनकी सेवा में चिट्ठी भेजी · "मैं तो आपकी चरण-रज लेने का अधिकारी भी नहीं हूँ तब आप इस शब्द का प्रयोग मेरे लिए क्यो करते है ?"

एक बार राष्ट्रपति महोदय अपने भवन से घोडा-गाडी मे बैठकर नार्थ एवेन्यू की सडक पर जा रहे थे। मैं भी उसी सडक पर चला जा रहा था पर मेरा ध्यान कही अन्यत्र ही था। थोडी देर मे गाडी मेरे निकट से गुजरी और आगे बढी। तत्पश्चात् एक सज्जन ने, जो मेरे साथ ही चल रहे थे, मुझसे कहा, "राष्ट्रपति ने आपको पहचानकर स्वय हो प्रणाम किया था पर आपने उधर देखा ही नही।" इस बात से मुझे खेद भी हुआ ।

मैं छ वर्ष तक राज्य-सभा का सदस्य रह चुका था। कुछ दिनों बाद राजेन्द्र बाबू से मिलने गया। उन्होने पूछा, "आप राज्य सभा के सदस्य कब तक हैं ? आगे के लिए मध्यप्रदेश के मुख्य मन्त्री को लिख सकता हूँ।" उन्होने लिख भी दिया था। उन्होने काटजू साहब को लिखा था, "इनसे मुझे हिन्दी के काम मे मदद मिलती है। इनका आना जरूरी है।" तत्पश्चात् श्रद्धेय टण्डन जी ने भी दो पत्र लिख दिये थे। परिणामस्वरूप दूसरी बार मैं छ वर्ष के लिए राज्य सभा का सदस्य बन गया था ।

राजेन्द्र बाबू के मेरे ऊपर और भी अनेक उपकार हैं, जिन्हे मैं भुला नही सकता।

13

श्रद्धेय पुरुषोत्तमदास टण्डन

पूज्य टण्डन जी के प्रथम दर्शन मुझे सन् 1917 के अन्त मे प्रयाग मे हुए थे। सन् 1918 मे इन्दौर मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आठवाँ अधिवेशन होने जा रहा था और मैं उसके साहित्य विभाग का मत्री था। उन दिनो सम्पर्क स्थापित करने के लिए मैंने कई स्थानो की यात्रा की थी। जब प्रयाग मे मैं श्रद्धेय टण्डन जी के दर्शनार्थ गया, वह खपरैल से छायी हुई एक कोठरी मे बैठे थे। उस समय सम्मेलन का यही रूप था। भारतवर्ष मे राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए काम करने वाली त्रिमूर्ति मे टण्डन जी का भी नाम आता है। उनसे घनिष्ठ परिचय इन्दौर मे ही हुआ। श्रद्धेय टण्डन जी ने ही, मेरे द्वारा सम्पादित 'राष्ट्रभाषा' नामक पुस्तक छपवायी थी। इन्दौर सम्मेलन के अवसर पर एक गश्ती चिट्ठी महात्मा जी ने, जो कि उस सम्मेलन के सभापति थे, देश के सुप्रसिद्ध नेताओ, विद्वानो तथा शिक्षाविदो को भिजवाई थी। उसमे दो प्रश्न थे (1) भारतीय विद्यार्थियो को शिक्षा किस भाषा मे दी जानी चाहिए? (2) कौन-सी भाषा राष्ट्रभाषा होनी चाहिए?

द्वितीय प्रश्न के जो उत्तर आए थे उनका सकलन, सम्पादन तथा अनुवाद मेरे द्वारा ही हुआ था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि बन्धुवर वियोगी हरि जी ने उसके प्रूफ सशोधन इत्यादि मे भरपूर सहयोग दिया था।

टण्डन जी की कृपा मुझ पर जीवन-पर्यन्त रही। मेरी प्रार्थना पर उन्होंने कई कार्य किये। सम्मेलन मे सत्य नारायण कुटीर उन्ही की कृपा से बन सकी। जब मैंने उसके लिए प्रस्ताव किया था कि सत्य नारायण कुटीर सम्मेलन मे स्थापित की जाय तो टण्डन जी ने लिख भेजा : "कुछ पैसा आप भेजिए, शेष का प्रबन्ध मैं कर दूंगा।" तदनुसार मैंने 1046 रुपये भेज दिये थे। पूज्य टण्डन जी ने तीन हजार रुपये सम्मेलन से खर्च कर कुल चार हजार रुपये मे एक कमरा बनवा दिया था। अब तो सत्य नारायण कुटीर तीन-तल्ला भवन है और प्रयाग जाने वाले साहित्यिक यात्री सत्यनारायण कुटीर का ही आतिथ्य ग्रहण करते हैं।

साहित्य सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन मे बोलियो के आधार पर मण्डल कायम करने का जो सुझाव मैंने भेजा था उसे प्रस्ताव के रूप मे रखवा-कर टण्डन जी ने पास करा दिया था, यद्यपि मैं सम्मेलन में शामिल नही हो सका था। यही उनकी महती कृपा थी।

सन् 1952 मे जब बिना मेरे किसी प्रयत्न के मेरा नाम राज्य सभा की सदस्यता के लिए कांग्रेस



राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नायक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन

चुनाव बोर्ड के सामने पहुँचा तो टण्डन जी ने उसका जोरदार तथा हार्दिक समर्थन किया था। स्वय उन्होंने मुझसे मजाक मे कहा था, "जब तुम्हारा नाम सामने आया तो मैंने तुरन्त उसकी सिफारिश की और स्वामी केशवानन्द के नाम की भी। क्योंकि वह दाढ़ी रखते है, इसलिए उनका समर्थन तो मुझे करना ही था।"

एक बार भावुकतावश मैंने यह प्रस्ताव उनके सम्मुख रख दिया कि यदि मुझे आपके पास वाली कोठरी मे ही स्थान मिल जाये तो नार्थ एवेन्यू छोड़कर मै टेलीग्राफ लेन मे आ सकता हूँ। मेरे इस प्रस्ताव को उन्होने सहर्ष मजूर कर लिया था पर पुनर्विचार करने पर मैंने श्रद्धेय टण्डन जी के निकट रहना उचित नही समझा। मैंने सोचा, श्रद्धेय टण्डन जी के पास आने वाले बीसियो व्यक्ति मेरा भी टाइम खराब करेंगे और मेरे पास पहुँचने वाले उनका भी। टण्डन जी को मेरा सुझाव याद रह गया था। उन्होने पूछा, "आये क्यों नही?" मैंने बडी विनम्रतापूर्वक अपना दृष्टिकोण उनके सामने रख दिया था।

सन् 1952 से 1958 तक मैं राज्य सभा का सदस्य रहा। फिर दूसरी बार मेरे चुने जाने की कोई सम्भावना नही थी। श्रद्धेय टण्डन जी की कृपा से मैं दूसरी बार चुना जा सका। उन्होने फोन करके मुझे अपने निवास-स्थान पर बुलाया और पूछा, "राज्य सभा मे दूसरी बार आने के लिए क्या प्रयत्न कर रहे हो?" मैने निवेदन किया, "इस बार चुने जाने की कोई सम्भावना नही है। क्योंकि बुन्देलखण्ड के हम चार व्यक्ति है जब कि भोपाल से एक भी नही है।" श्रद्धेय टण्डन जी ने मरे तर्क की उपेक्षा करके अपने हाथ से एक पत्र प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान को तथा दूसरा मध्यप्रदेश के मुख्य मत्री श्री कैलाशनाथ काटजू को लिख दिया। तब बिना किसी बाधा के मैं दूसरी बार भी राज्य सभा का सदस्य चुन लिया गया।

श्रद्धेय टण्डन जी के कई पत्र मेरे पास सुरक्षित थे। भाट पार रानी (देवरिया) मे प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन होने वाला था। उसका सभापति बनने का आदेश उन्होने मुझे दिया था। उन्होने काशीनाथ नामक एक सज्जन को प्रयाग से मेरे पास भेजा था और पत्र मे लिखा था "यदि मेरा स्वास्थ्य ठीक होता तो मैं स्वय दिल्ली पहुँचकर आपसे अनु-

रोध करता कि आप प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन के सभापति हो जायें।" मुझे उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनी पडी। भाट पार रानी जाते समय प्रयाग मे उतरकर मैंने उनके दर्शन किये और आशीर्वाद प्राप्त किया। एक बार टण्डन जी ने मुझे अपने पत्र मे लिखा था "मुझे पता है कि आप कुकर का बना खाना खाते है। मेरे पास कुकर है। आप मेरे पास ही ठहरिये।"

एक बार बहिन शकुन्तला श्रीवास्तव ने मेरा जन्म दिवस अपने निवास-स्थान पर ही मनाया था। वह उन दिनो 2-टेलीग्राफ लेन पर, टण्डन जी के निकट ही रहती थी। टण्डन जी उस दिन चाय-पार्टी मे मेरे साथ ही शामिल हुए जो मेरे लिए बडे गौरव की बात थी। भेंट स्वरूप बिजली का टेबिल लैम्प भी उन्होने मुझे दिया। उसके पूर्व उन्होने कई आदमियो से यह पूछा था कि फीरोजाबाद मे बिजली का ए० सी० है या डी० सी०। बिजली के अनुसार ही उन्होने टेबिल लैम्प की व्यवस्था भी की थी।

एक बार टण्डन जी ने मुझे बुलाकर कहा, "मैंने सुना है कि आप राज्य सभा मे उपस्थित नही होते और ऊपर लाइब्रेरी मे पुस्तकें पढा करते है? आपको वहाँ पहुँचकर हिन्दी का समर्थन करना ही चाहिए।" बात दरअमल यह थी कि मैं प्रात काल पाँच-छ घटे अपने घर पर ही शहीदो का काम किया करता था। तत्पश्चात् स्नान, भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर विश्राम। शाम को चार बजे टहलते हुए पार्लियामेट चला जाया करता था। हमारी काग्रेस पार्टी का राज्य सभा मे भारी बहुमत था, इसलिए मेरी गैरहाजिरी का कोई प्रभाव नही पडता था। हाँ, जब दो-तिहाई बहुमत प्राप्त करने की आवश्यकता पार्टी को आ पडती तब फोन करके पार्टी वाले मुझे बुला लिया करते थे।

टण्डन जी बडे सहृदय और विनम्र व्यक्ति थे। जब अध्यापक रामरतन जी आगरे मे बहुत बीमार



स्वामी केशवानन्द जी, राज्य सभा की सदस्यता के लिए टण्डन जी ने जिनके नाम का समर्थन किया था, के साथ लेखक (बायें)

थे तब वह प्रयाग से आकर उनसे मिले थे। जब भी वह आगरा जाते थे, भाई हरिशकर जी के निवास स्थान पर उनसे मिलते थे। एक बार मैंने टण्डन जी से कहा, "भाई श्रीराम जी पधारे थे पर आपके दर्शनार्थ नही आ सके क्योकि आपके यहाँ आने मे उन्हे सीढिया चढनी पडती।" इस पर टण्डन जी ने कहा, "आपने मुझे यह समाचार क्यो नही दिया? मैं आपके घर जाकर उनसे मिल लेता।"

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विवाद के कारण टण्डन जी बडे दु खित थे। उन दिनो मैंने उन्हे लिखा था "तब आप दूसरा सम्मेलन क्यो नही कायम कर लेते?" इसके उत्तर मे उन्होने कहा था "यदि दिल्ली मे कोई सज्जन तैयार हो तो वह मुझसे मिल ले। आर्थिक प्रबन्ध मैं कर सकता हूँ।"

बन्धुवर गोपालप्रसाद जी व्यास टण्डन जी के अनन्य भक्त रहे हैं। वह दिल्ली मे पुरुषोत्तम हिन्दी भवन बनाने के लिए प्रयत्नशील भी हैं। मेरा पूर्ण



स्व० पुरुषोत्तमदास टण्डन (मध्य मे) के साथ लेखक (दायें)

विश्वास है कि भारत सरकार द्वारा उन्हें भूमि-खण्ड प्राप्त हो जायेगा। श्रद्धेय टण्डन जी को एक बहुत बढ़िया अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा चुका है और अभी हाल मे ही उनके पुत्र-पुत्र-वधू ने उनकी जीवनी भी प्रकाशित की है। श्रद्धेय टण्डन जी राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नायको मे सर्वोच्च थे। उनका पर्चा-पर्चा सुरक्षित रहना ही चाहिए।

राष्ट्रीय अभिलेखागार में उनके बहुत-से कागज-पत्र जमा हैं, जिनमे सैकडो पत्र भी हैं। शोधकर्ता उस सामग्री को देखकर उसका समुचित उपयोग कर सकते हैं।

लोक-सग्रह की भावना मे टण्डन जी महात्मा जी की तरह ही अत्यत कुशल थे। छोटे-छोटे कार्यकर्ता के व्यक्तित्व का वह सम्मान करते थे, पर जब सिद्धान्त का प्रश्न सामने आता, तो वह बडी दृढतापूर्वक बडे से बडे व्यक्ति का मुकाबला करने मे भी सकोच नही किया करते थे।

टण्डन जी उर्दू के विशेषज्ञ थे और वह साम्प्रदायिकता से कोसो दूर थे।

"मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है"—यह उनका मूलमन्त्र था।

जब हिन्दी भारत तथा भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय मच पर यथोचित स्थान प्राप्त करेगी तो उसका श्रेय मुख्यत त्रिमूर्ति—महर्षि दयानन्द, महात्मा गाधी तथा राजर्षि टण्डन को होगा।

14

बैरिस्टर मुकन्दीलाल

गढवाल चित्रकला के मर्मज्ञ श्री मुकन्दीलाल बैरिस्टर से मेरा परिचय आज से 55 वर्ष पहले हुआ। अक्तूबर 1927 मे जब मैं 'विशाल भारत' को आरम्भ करने के लिए कलकत्ता पहुँचा तो सचालक श्री रामानन्द चटर्जी ने मुझे आदेश दिया कि मै श्री मुकन्दीलाल जी से सम्पर्क स्थापित कर उनसे लेख मँगवाऊँ। मैंने ऐसा ही किया और श्री मुकन्दीलाल जी ने मोलाराम और गढवाल चित्रकला पर एक सचित्र लेख भेजा।

ढाई साल तक कोटद्वार मे हफ्ते मे दो-तीन बार हम मिलते रहे थे। 94 वर्षीय मुकन्दीलाल जी से मिलने पर कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कविता 'सामान्य लोक' की याद आ गई, जिसका भावार्थ है "यदि दो सौ वर्ष पहले का कोई किसान हाथ मे लाठी लिये और कन्धे पर गठरी रखे दीख पड जाय तो जनता उसे घेर लेगी और उससे अनेक प्रश्न पूछना शुरू कर देगी—उस समय जनता का रहन-सहन कैसा था, पशुओ की क्या हालत थी, खेती कैसी थी इत्यादि।" फर्क इतना ही है कि मुकन्दीलाल जी कोई सामान्य व्यक्ति नही हैं।

जरा कल्पना तो कीजिए, वह लोकमान्य तिलक से मिलने सन् 1906 मे चित्तरजन बाबू के घर पर गये थे। वह इलाहाबाद से कांग्रेस के वॉलण्टियर बनकर गये थे। सन् 1917 मे जब लोकमान्य तिलक सर वेलेण्टाइन शिरोल के खिलाफ मानहानि का मुकदमा लडने विलायत गये तब मुकन्दीलाल ने उन्हे अपने फ्लैट पर लन्दन मे चाय पर बुलाया था। जिस रात को मुकन्दीलाल महर्षि अरविन्द घोष से 'वन्दे मातरम्' आफिस मे मिले थे उसके दूसरे दिन अरविन्द लापता हो गये। बाद मे मालूम हुआ कि वह पाण्डिचेरी पहुँच गये। सन् 1908 मे मुकन्दीलाल रोजाना सुबह लाला हरदयाल से लाहौर मे मिलते थे।

जब वह इलाहाबाद मे पढते थे तो हर रविवार को महामना मालवीय जी के दर्शन करने उनके निवास-स्थान, भारती भवन जाया करते थे। मालवीय जी के आदेशानुसार वह 'अभ्युदय' के लिए लेख लिखा करते थे। सन् 1909 मे जब श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने (स्त्री दर्पण) पत्रिका निकाली थी तो मुकन्दीलाल उनके सम्पादकीय लेखो का सशोधन किया करते थे। 'स्त्री दर्पण' के लिए उन्होने महात्मा गांधी जी का विस्तृत जीवन-चरित लिखा था जो उस पत्र मे दो वर्ष तक छपता रहा। हिन्दी मे बापू की वह प्रथम जीवनी थी।

1913 सितम्बर मे श्री मुन्कदीलाल ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मे इतिहास के अध्ययन के लिए गये।

विलायत पहुँचने पर वह नैविनसन साहब के द्वारा प्रोफेसर गिलबर्ट मरे से मिले जिन्होने मुकन्दीलाल को क्राइस्ट चर्च कॉलेज मे भर्ती किया। वह कर्नल वेजवुड, एम० पी० और कम्यूनिस्ट नेता हार्डी, 'नेशनल हेराल्ड' के सम्पादक लैन्सबरी, दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसल और बर्नार्ड शॉ इत्यादि से भी मिले। बर्नार्ड शॉ ने उनसे कहा, "मैं तुम हिन्दुस्तानियो को हिकारत की नजर से देखता हूँ क्योंकि तुम पर एक मुट्ठी-भर अंग्रेज राज करते हैं।"

उन्होने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से हिस्ट्री ऑनर्स से बी० ए० की डिग्री हासिल की और लन्दन से ग्रेजइन के द्वारा बैरिस्टरी की।

लन्दन मे उनकी कम्युनिस्ट नेता सकलातवाला से घनिष्ठ मित्रता हो गई। भारत के जो नेता उन दिनो विलायत मे भारत की ओर से आजादी के समर्थन में व्याख्यान देने जाते थे उनसे भी मुकन्दीलाल मिलते रहते थे। लाला लाजपतराय और दानवीर शिवप्रसाद गुप्त से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। एक बार वह शिवप्रसाद गुप्त के साथ लन्दन मे एक ही कमरे मे सोये थे। शिवप्रसाद जी रात-भर खर्राटे भरते रहे जिसके कारण मुकन्दीलाल को नीद नही आयी।

ऑक्सफोर्ड मे श्री मुकन्दीलाल की हैराल्ड लास्की से घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। वह मृत्यु पर्यन्त इग्लैंड और अमरीका से हर साल दो पत्र उन्हे लिखते रहते थे। लास्की अपने पत्रो मे भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति के बाबत पूछा करते थे।

जब मद्रास के 'हिन्दू' दैनिक पत्र के मालिक और सम्पादक कस्तूरी रग अय्यर विलायत मे मुकन्दीलाल से मिले तो उन्होने मुकन्दीलाल को 'हिन्दू' के लिए लन्दन लेटर लिखने को कहा। उन्होने उनके आदेश का पालन किया।

हमने ऊपर सापुड जी सकलातवाला एम० पी० का जिक्र किया है। इग्लैंड से स्वदेश लौटने मे यह मैत्री मुकन्दीलाल जी को महँगी पडी। उन पर खुफिया पुलिस की कुदृष्टि पड गई। विलायत से सन् 1919 मे लौटने पर उन्हे ग्यारह दिन तक बम्बई पुलिस की निगरानी मे रखा गया। वहाँ से उनको पुलिस के दो सशस्त्र सिपाहियो की हिरासत मे इलाहाबाद भेजा गया। वहाँ वह जवाहरलाल जी के सम्पर्क मे आये। दस दिन बाद पुलिस की निगरानी मे छुटकारा हुआ। श्री सैयद हुसैन, जो मुकन्दीलाल से भली भाँति परिचित थे और तब मोतीलाल जी के दैनिक पत्र 'इण्डिपेन्डेट' के सम्पादक थे, के आग्रह पर मुकन्दीलाल ने अंग्रेजी मे एक लेखमाला, 'इण्डिया इन इग्लैंड' कई अको मे लिखी।

उनके जीवन का असली कार्य तो पचास वर्ष की गढवाल चित्रकला की खोज और उसकी चर्चा थी। फलस्वरूप भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने सन् 1969 मे अंग्रेजी मे उनकी पुस्तक 'गढवाल पेंटिंग' का प्रकाशन किया। भारत कला के इतिहास मे गढवाल चित्रकला को एक विशेष स्थान प्राप्त होना आपके अनुसधान और अध्ययन का ही परिणाम है। श्री मुकन्दीलाल जी की रुचि भिन्न-भिन्न विषयो मे रही है—पशु-पालन मे, घोडे और कुत्ते तथा पक्षियो मे। कबूतरो के वह बडे शौकीन थे। कुत्ते तो वह सन् 1920 से पालते और नुमायशो मे उनका प्रदर्शन करते रहे थे और कुत्तो की नुमाइशो के जज रहते थे। उन्होने कम से कम तीस नस्लो के कुत्ते पाले थ। बागबानी म उनकी सबमे ज्यादा दिलचस्पी गुलाब के पौधो के सग्रह मे, बुगनबेलिया और कोटन मे थी, जिनका अच्छा सग्रह आज भी उनके बाग मे है।

मुकन्दीलाल जी को शिकार का भी शौक रहा था। उन्होने पाँच शेर मारे थे, जिनमे एक पैदल जमीन से भी मारा था। तेईस बाघ मारे थे। आखिरी बाघ, जिसको उन्होने पहली रात को (सन् 1943) बन्दूक से घायल किया था, दूसरे दिन जब वह उसकी खोज मे गये तो उसने उन पर हमला किया। तमाश-

बीन भाग गये। बाघ उनको दाँतो से काटता गया और वह उसको जमीन पर लेटे-लेटे बन्दूक की खाली नाल से मारते रहे। उसने उनके शरीर पर सोलह जख्म किये। उनको तीन मास दिल्ली मे डॉ० नीलाम्बर जोशी के अस्पताल मे रहना पडा। उनकी टाँग से आपरेशन करके सात हड्डी के टूटे टुकडे निकाले गये। यह घटना 5 अक्तूबर, 1943 को टिहरी गढवाल रियासत मे हुई जहाँ वह उस समय हाई कोर्ट के जज थे। वह 4 अक्तूबर, 1943 को अपना पुनर्जन्म मानते थे।

मुकन्दीलाल जी का जन्म सन् 1885 मे चमोली, गढवाल मे हुआ था। उनकी शिक्षा श्रीनगर (गढवाल), पौडी, अल्मोडा, इलाहाबाद, बनारस, कलकत्ता और ऑक्सफोर्ड मे हुई थी। विलायत से लौटकर उन्होने इलाहाबाद हाईकोर्ट के अन्तर्गत कुमाऊँ और गढवाल मे बैरिस्टरी की। वह सन् 1938 से 1944 तक टिहरी राज्य हाई कोर्ट के जज रहे। उसके बाद सोलह वर्ष वह टर्पेण्टाइन फैक्ट्री, बरेली के मैनेजर भी रहे।

वह छात्रावस्था से ही राजनैतिक और राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेते रहे। सन् 1920 मे उन्होने गढवाल मे कुली बेगार आन्दोलन मे भाग लिया। सन् 1920-21 मे मुकन्दीलाल को गढवाल मे काग्रेस स्थापित करने के लिए नियुक्त किया गया था। सन् 1923 से 1930 तक मुकन्दीलाल उत्तर प्रदेश कौंसिल मे स्वराज्य पार्टी के मेम्बर रहे। सन् 1926 से 1930 तक कौंसिल के डिप्टी प्रेसीडेण्ट भी रहे। सन् 1962 मे 1967 तक फिर वह यू० पी० एसेम्बली मे काग्रेस पार्टी के मेम्बर रहे।

गढवाल मडल की स्थापना मे उनका सर्वाधिक हाथ रहा था। गढवाल विश्वविद्यालय की स्थापना मे भी उनका विशेष योगदान था।

वह 1904 से ही लेख लिखते रहे थे। बैरिस्टर मुकन्दीलाल जी ने 1910 मे 'स्त्री दर्पण' मे मोहनदास कर्मचन्द गाधी पर एक लेखमाला लिखी। सन् 1923 मे उन्होने 'तरुण कुमाऊँ' मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। हिन्दुस्तानी पत्रिका मे उन्होने सन् 1932 से 39 तक प्रत्येक अक के लिए मोलाराम और उनकी कविता पर एक निबन्धमाला लिखी।

उ० प्र० कला अकादमी ने उनका सचित्र 'रुक्मणी मगल' सन् 1975 मे प्रकाशित किया। वह अपने गुरु डा० आनन्दकुमार स्वामी की जीवनी छाप चुके थे। उनकी विख्यात पुस्तक 'गढवाल पेंटिंग' केन्द्रीय सरकार द्वारा हिन्दी मे छापी जा चुकी थी। मुकन्दीलाल का ध्येय मोलाराम का जीवन-चरित, गढवाल का इतिहास और अग्रेजी मे अपने गुरु-चरित लिखने का था।

15

स्वर्गीय सी० वाई० चिन्तामणि

"हमारे प्रधान सम्पादक चिन्तामणि जी से नही मिलोगे ?" ये शब्द जब 'लीडर' के सयुक्त सम्पादक श्री कृष्णराम मेहता ने मुझसे कहे तो मैंने उत्तर मे यही निवेदन किया, "मुझे तो श्रद्धेय चिन्तामणि जी से मिलने मे सकोच होता है। उनका समय कीमती है, फिर मैं बात भी क्या करूँगा ? अभी रहने दीजिए।" पर मेहता जी न माने और मुझे साथ ले ही लिया। विश्वनाथ प्रसाद जी भी, जो 'लीडर' के सहायक सम्पादक थे, साथ मे हो लिए। मेहता जी ने चिन्तामणि जी से परिचय कराते हुए मेरे हस्ताक्षरो की अत्युक्तिमय प्रशसा कर दी। उन्होने कहा, "ही राइट्स बेटर दैन नाइन्टी नाइन पर्सेण्ट ऑफ आवर कारस्पॉण्डेण्ट्स" यानी यह हमारे सम्वाददाताओ मे 99 प्रतिशत से बेहतर लिखते हैं। तभी मैंने अपनी 'प्रवासी भारतवासी' नामक पुस्तक चिन्तामणि जी को भेंट कर दी। उसी समय भाई विश्वनाथ प्रसाद जी ने भी मेरी तारीफ की। चिन्तामणि जी ने कहा, "चतुर्वेदी जी, इस पुस्तक पर हम 'लीडर' मे अग्रलेख छापेंगे।" आगे चलकर उन्होंने अग्रलेख प्रकाशित भी किया। यह मेरे लिए बडे गौरव की बात थी। यह गौरव महाकवि चकबस्त की उर्दू की 'अवध पच' को भी प्राप्त हुआ था। महाकवि चकबस्त उर्दू के महान् कवि थे और लिबरल पार्टी के सदस्य भी।

'लीडर' मे मैं सन् 1918 से ही लिखता आ रहा था। मेरा प्रथम लेख उस रेल दुर्घटना के विषय मे था जो मक्खनपुर के पास घटी थी और जिसमे कई सौ व्यक्ति हताहत हुए थे। मैंने उस दुर्घटना का विवरण विस्तारपूर्वक लिखकर और स्व० देवीप्रसाद चतुर्वेदी से सशोधित कराकर 'लीडर' को भेज दिया था। 'लीडर' ने उस पर एक सम्पादकीय टिप्पणी भी छाप दी थी।

जब तक चिन्तामणि जी और कृष्णराम जी मेहता जीवित रहे, तब तक मैं 'लीडर' का नियमित लेखक रहा। 'लीडर' मुझे प्रति कालम के हिसाब से पारिश्रमिक देता था और मेरे पाँच-छ कालम के लेख 'लीडर' मे निरन्तर छपा करते थे।

साधारणत पत्रकारो के जीवन मे—और खासतौर पर हमारे जैसे मामूली हिन्दी लेखको के जीवन मे—ऐसे सकटमय दिनो का आना स्वाभाविक ही है, जब सहानुभूति की अत्यन्त आवश्यकता होती है और जब एक पैसे का मूल्य एक रुपये से भी अधिक हो जाता है। इन पक्तियो का लेखक उन दिनो की याद कदापि नही भूल सकता जब 'लीडर' और उसके सम्पादक श्री चिन्तामणि की कृपा से ढाई वर्ष तक अनेक प्राणियो का, जिनमे कई अब इस ससार मे नही हैं, भरण-पोषण हुआ था। चिन्तामणि जी

स्वयं अधिक से अधिक कष्ट मे होते हुए भी अपने तुच्छातितुच्छ सहयोगियो को नही भूलते थे।

कुछ वर्ष पहले की बात है। चिन्तामणि जी बहुत बीमार थे। दो बार पैर का आपरेशन कराना पडा था। अत्यन्त निर्बल हो गये थे। चलना-फिरना तो असम्भव था ही, लिखना-पढ़ना भी बिल्कुल बन्द था। जब उन्होने मेरी एक गार्हस्थिक दुर्घटना और आर्थिक सकट का वृत्तान्त अपने सुपुत्र बालकृष्ण राव से सुना तो तुरन्त पत्र भिजवाया। श्री बालकृष्ण ने उन्ही के शब्द मुझे लिख भेजे "राइट टू पण्डित बनारसी दास दैट दि कॉलम्स ऑफ दि 'लीडर' आर ओपन टू हिम एज़ एवर एण्ड दैट एनी कंट्रीब्यूशन्स ही मे सेण्ड विल वैरी ग्लैडली बी पब्लिश्ड एण्ड आई शैल दस बी एबल टू डू माई बिट फॉर वन हूम " इसके आगे जो शब्द चिन्तामणि जी ने लिखवाए थे, उनको यहाँ उद्धृत करने की धृष्टता मैं नही करूँगा। सिर्फ इतना ही कहूँगा कि 28 अप्रैल, 1930 के 'भारत' मे श्रीयुत् वामन ने, जो राजनैतिक पुरुषो के स्केच लिखने मे हिन्दी जगत् मे अद्वितीय थे, चिन्तामणि जी की उदारता के बारे मे जो कुछ लिखा था वह अक्षरश सत्य था। वामन जी के शब्द ये है "अपने छोटो को आगे बढाने के लिए तथा प्रोत्साहित करने के लिए श्री चिन्तामणि जी जितने उत्सुक रहते है उतना मैंने किसी और दूसरे नेता को नही देखा।"

चिन्तामणि जी आन्ध्र प्रदेश के निवासी थे और तेलगू उनकी मातृभाषा थी, पर उन्होने अपने बच्चो को हिन्दी की ही शिक्षा दिलवायी थी। आगे चलकर जब बालकृष्ण राव हिन्दी मे कविता करने लगे तो चिन्तामणि जी ने एक पत्र मुझे अग्रेजी मे लिखा जिसका आशय यह था "बालकृष्ण राव कुछ हिन्दी कविता लिखने लगा है और जानकारो का यह मत है कि वह ठीक लिखता है। यदि आप भी यह समझते हो तो 'विशाल भारत' मे उसे स्थान देकर प्रोत्साहित कीजिए।" मैंने यही किया। बालकृष्ण राव की एक हिन्दी कविता के अश यहाँ दिए जाते हैं

मुझे ले चल वायु के वेग वहाँ,
जहाँ प्रीति बुरी कही जाती नही।
जहाँ प्रेमी की पागल से समता,
कवियो की कला दिखलाती नही।
खिलती हुई प्रेम-कली जहाँ स्नेह के,
मेह बिना मुरझाती नही।
वही ले चल प्रेमी की आँखे जहाँ,
कल पाती सदा कलपाती नही।
सुमनावलि-धारा सुधा की जहाँ,
बरसाती सदा तरसाती नही।
कमनीय कलाधर कौमुदी मे,
है सरोजिनी मजु लजाती नही।
जहाँ सुन्दर ज्योति दिवाकर की,
कुमुदो के कलाप सुलाती नही।
जहाँ पखडियो की सुकोमलता,
सुमनो की कडाई छिपाती नही।

चिन्तामणि जी ने छ रुपये मनीऑर्डर से भेजकर अपनी पत्नी को 'विशाल भारत' का ग्राहक बना दिया था। मैंने बहुत मना भी किया पर वह नही माने और छ रुपये प्रतिवर्ष भेजते ही रहे। स्व० बालकृष्ण राव की बहिन मोहिनी देवी राव भी हिन्दी की अच्छी लेखिका है। मेरे आग्रह पर उन्होने अपने पूज्य पिता जी के सस्मरण भी लिख दिये थे। उन सस्मरणो मे उन्होने एक जगह लिखा है, "पिता जी से किसी ने कहा था कि विधानसभा मे अपना भाषण देते हुए एक हिन्दी मुहावरे का प्रयोग करे, 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' पर वह बहुत प्रयत्न करने पर भी इसे याद न रख सके।"

बहुत वर्षों से मैं इस बात के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ कि चिन्तामणि जी तथा लीडर और उसके सहायक सम्पादको के सस्मरण छपा दिये जाये। पर दुर्भाग्यवश ऐसा अभी तक नही हो सका। बालकृष्ण राव की सेवा मे कम से कम बीस-पचीस पत्र तो इस

आशय के भेजे भी पर व्यस्तता व अस्वस्थता के कारण वह यह श्राद्ध कार्य न कर सके। श्रीमती मोहिनी देवी से मेरा आग्रह रहा है कि जैसे श्रीमती शान्ता देवी नाग ने अपने पूज्य पिता श्री रामानन्द बाबू का जीवन-चरित लिख दिया था, वैसे ही वह भी चिन्तामणि जी का जीवन-चरित लिख दें। श्रीमती उमाराव से भी मैंने यही निवेदन किया।

चिन्तामणि जी उत्तर प्रदेश के निर्माता कहे जाते है, पर हमारे प्रदेश की जनता ने उनकी कीर्ति-रक्षा के लिए कुछ भी नही किया।

चिन्तामणि जी यद्यपि हिन्दी नही जानते थे तथापि हिन्दी लेखको और कवियो की कीर्ति-रक्षा के कट्टर समर्थक थे। यदि भारतवर्ष के श्रेष्ठतम चार-पाँच पत्रकारो के नाम गिनाए जावे तो रामानन्द बाबू के बाद उन्ही का नम्बर आयेगा। प्रयाग मे दोनो पत्रकार पडौसी भी रहे थे। अपने एक भाषण मे चिन्तामणि जी ने रामानन्द बाबू को 'एबलेस्ट, नोबलेस्ट एण्ड बेस्ट' पत्रकार कहा था। जब रामानन्द बाबू ने कलकत्ते मे चिन्तामणि जी का वह भाषण पढा तो मुझसे कहा, "आप तो चिन्तामणि जी को जानते हैं। कृपया उन्हे लिखिए कि मेरी अत्युक्तिमय प्रशसा वह क्यो करते हैं?" बडे बाबू का यह आदेश मैंने सुन लिया पर पत्र लिखने की मेरी हिम्मत नहीं हुई।

आवश्यकता इस बात की है, कि चिन्तामणि जी के सर्वोत्तम लेख और नोट्स सग्रह करके एक जिल्द मे छपा दिये जायें और दूसरी जिल्द मे उनके सस्मरण। यह बात भूलने की नही कि 'लीडर' के लिए घोर परिश्रम करते-करते चिन्तामणि जी क्षय रोग से ग्रसित हो गये थे और आयुर्वेदिक औषधियो से उन्होने स्वास्थ्य लाभ किया था। 'लीडर' की भूमि और बिल्डिग अब लाखो रुपयो की सम्पत्ति है जो बिडला परिवार के अधिकार मे है। यदि बिडला जी उचित समझे तो 'लीडर' तथा चिन्तामणि की स्मृति रक्षा के लिए दस-पद्रह हजार रुपये आसानी से खर्च कर सकते है। कृतज्ञता का यह तकाजा है कि यह श्राद्ध कार्य श्रद्धेय बिडला जी के द्वारा सम्पन्न हो।

16

मौलवी अब्दुल हक साहब

"मैं आपसे मिलने आगरे आना चाहता हूँ।" जब मौलवी साहब का यह खत मुझे मिला तो लौटती डाक से मैंने उन्हे लिख भेजा, "बराहे मेहरबानी आप तकलीफ न करें। मैं खुद दिल्ली आ रहा हूँ और तीन-चार दिन के भीतर दिल्ली के लिए रवाना हो जाऊँगा।" जब मैं दिल्ली स्टेशन पर पहुँचा तो बन्धुवर अख्तर हुसैन रायपुरी दीख पडे। मैने उनसे मौलवी साहब के खत का जिक्र किया तो वह बोले, "वह तो खुद ही आपको लेने के लिए आये है और गाडी के उस छोर पर खड़े हैं। मैंने उनसे मना भी किया था पर वह माने नही।" मौलवी साहब उस समय सत्तर वर्ष के थे। मैं उनकी उस उदारता को आज तक नही भूला।

मौलवी साहब के गुणो की चर्चा मैं भाई वशीधर विद्यालकार से अनेक बार सुन चुका था और उनके बारे मे वशीधर जी का एक लेख भी मैंने विशाल भारत मे छापा था। पर उनके दर्शन सन् 1935 मे ही हुए। वह डाक्टर असारी साहब के बँगले पर ठहरे हुए थे। वही मै भी उनके पास ठहरा था।

दिल्ली मे मैं हर रोज प्रात काल मौलवी साहब के साथ टहलने जाया करता था। ठण्ड के उस मौसम मे भी मौलवी साहब स्नान करके टहलने जाते थे।

उस वक्त डॉ० असारी साहब ने उनका रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) चैक किया था और वह पैंतीस बरस के जवान के बराबर निकला था। मौलवी साहब मे रहस्य-रस की अच्छी प्रवृत्ति थी। टहलते वक्त सडक पर झाड़ू लगाने वाला कोई मेहतर उन्हें सलाम करता तो वह मुडकर मुझसे कहते "बस, दिल्ली मे मेरी इज्जत करने वाला यही एक आदमी रह गया है।"

बहुत कम लोगो को इस बात का पता होगा कि हिन्दू-मुसलमानो के झगडे मे मौलवी साहब बाल-बाल बच गये थे। वह हैदराबाद से आ ही रहे थे कि भोपाल स्टेशन पर उनके एक मित्र मि०श्वेब कुरैशी जो भोपाल स्टेट के मत्री थे, ने जबरदस्ती उन्हे यह कहकर उतार लिया कि दिल्ली मे दगे हो रहे हैं और आपकी जान खतरे मे पड जायेगी। हैदराबाद से जो तीन-चार मुस्लिम विद्यार्थी उस कम्पार्टमेण्ट मे आ रहे थे, वे दिल्ली पहुँच भी नही पाये।

पाकिस्तान बनने के बाद यहाँ मौलवी साहब के साथ जो व्यवहार किया गया था, उससे उनके दिल को बडा सदमा पहुँचा था। अपने एक खत मे उन्होंने मुझे लिखा था—

"रुख्सत ऐ हिन्दोस्ता, ऐ बोस्ताने बेखिजा
रह चुके तेरे बहुत दिन, हम विदेशी मेहमां।"

मौलवी साहब की यह शिकायत थी कि अफसरों से मिलने जाने पर उन्हे घण्टो बैठे रहना पडता था।

वह कहते थे कि "एक जमाना था जब कमिश्नर लोग खुद मुझसे मिलने आते थे और आज यह हालत है कि छोटे-से-छोटे अफसर के यहाँ मुझे घण्टो इन्तजार करना पडता है।"

जब डॉ० अन्सारी साहब की कोठी बिक रही थी, उन दिनो मै मौलवी साहब के साथ ही वहाँ ठहरा हुआ था और मैने श्रद्धेय बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी तथा श्री घनश्यामदास जी बिडला से मिलकर यह प्रार्थना की थी कि दाराशिकोह के वक्त की इस ऐतिहासिक कोठी को सुरक्षित कर लिया जाय, पर मेरा यह प्रयत्न सफल नही हुआ। मौलवी साहब यह चाहते थे कि उस प्राचीन ऐतिहासिक कोठी को किसी सास्कृतिक (कल्चरल) काम के लिए रिजर्व कर देना चाहिए। जब उस कोठी के वृक्ष कटवाये जा रहे थे, मौलवी साहब बहुत दुखित थे। शायद उनमे से कुछ उनके द्वारा ही लगवाये गये थे। मौलवी साहब ने एक दरख्त की ओर इशारा करते हुए कहा, "बेईमान इसको भी काट डालेगे।" वह नीम का एक बहुत पुराना पेड था। वृक्षो का प्रेमी होने के कारण मौलवी साहब के हार्दिक दुख का मै अन्दाज़ लगा सका और तब मै समझ सका कि मौलवी साहब ने उस कठोर शब्द का प्रयोग मजबूरन ही किया था।



बहन सत्यवती मलिक जिन्हे मिलवाने के लिए मौलवी साहब को मैं उनके घर ले गया था

उस्मानिया यूनिवर्सिटी के भूतपूर्व अध्यापक वशीधर जी विद्यालकार भी मेरी तरह ही मौलवी साहब के कृपापात्र रहे थे। जब कभी वह मौलवी साहब की मेहरबानियो का जिक्र करते थे तो उनकी आँखो मे आँसू झलक आते थे। मौलवी साहब ने ही उन्हे, यह जानते हुए भी कि वह गुरुकुल के स्नातक हैं और आर्यसमाजी विचारो के है, उस्मानिया यूनिवर्सिटी मे जगह दिलवाई थी। मौलवी साहब वशीधर जी की सीधी-सादी जुबान मे लिखी हुई कविताओ के बहुत प्रशसक थे और उनकी अनेक कविताएँ उन्होने बार-बार सुनी थी। खुद मौलवी साहब बडी सीधी-सादी जुबान लिखते थे और उनके कई उर्दू लेखो का हिन्दी अनुवाद मैने 'विशाल-भारत' मे छापा था।

जब पानीपत मे हाली शताब्दी मनाई गयी थी, मौलवी साहब मुझे वहाँ ले गये थे। मैने मौलवी साहब से बहुत कहा कि पानीपत की यात्रा मेरे लिए तीर्थ-यात्रा के समान है और तीर्थ-यात्रा मे कोई भी हिन्दू दूसरे से किराया नही ले सकता, पर मौलवी साहब ने एक न सुनी और अपने पास से ही टिकट खरीदा। यही नही, पानीपत मे उन्होने मेरे लिए खासतौर पर हिन्दू भोजन की व्यवस्था की,

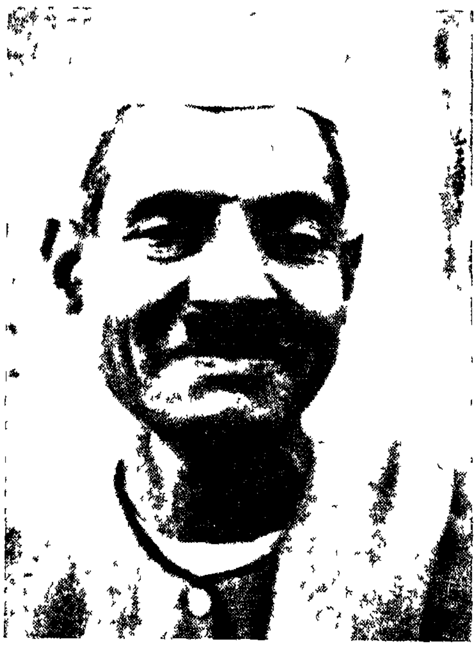
और अपने साथ मुझे ले जाकर सर रौस मसूद तथा सर इकबाल, हफीज जालन्धरी और दूसरे खास आदमियो से मिलवाया।

मौलवी साहब मे धर्मान्धता का नामोनिशान न था। मैंने बडे आश्चर्य के साथ देखा कि किसी मजहबी किताब के पढे जाते समय जब कि पानीपत मे मीटिंग मे उपस्थित मुसलिम जनता खडी हो गई थी, मौलवी साहब जहाँ के तहाँ बैठे रहे।

मौलवी साहब बडे विनम्र थे। एक बार मैं उन्हे डा० वासुदेवशरण अग्रवाल से मिलाने के लिए उनके यहाँ ले गया था। अग्रवाल जी स्वय ही मौलवी साहब के यहाँ जाना चाहते थे, पर मौलवी साहब न माने और खुद ही उनके यहाँ गये। इसी प्रकार बहन सत्यवती मलिक के यहाँ भी वह मेरे साथ पधारे थे।

अबोहर हिन्दी साहित्य सम्मेलन से लौटकर मैं आया था तो उन्होने मुझे एक दावत दी थी, जिसमे दिल्ली के खास-खास उर्दू के बीस-पचीस तथा हिन्दी के चार-पाँच लेखक तथा कवि शामिल हुए थे। श्रद्धेय दत्तात्रेय और बालकृष्ण कैफी साहब के दर्शन मुझे उसी मीटिंग मे हुए थे और अमन साहब से तभी मुलाकात हुई थी।

एक बार मौलवी साहब चन्दा माँगने के लिए किसी धनी-मानी नवाब के यहाँ गये। नवाब साहब ने कुछ तो मजाक मे और कुछ ताना मारते हुए कहा, "मौलवी साहब, आप दूसरो से तो चन्दा माँगते हैं, पर यह तो बतलाइये कि अन्जुमन तरक्किये उर्दू के लिए खुद आपने कितना पैसा दिया?" मौलवी साहब उसी वक्त उलटे पाव लौट आए और उसी दिन जो चालीस हजार रुपया उनके पास था उन्होने अजुमन के लिए दे दिया। देने का निश्चय तो उन्होने पहले ही कर लिया था, लेकिन कुछ बरस बाद देना चाहते थे। नवाब साहब के ताने को वह सहन नही कर सके और उन्होने अपनी जिन्दगी-भर की कमाई दान मे दे डाली।



वासुदेव शरण अग्रवाल जिनसे मिलने मौलवी साहब स्वय उनके घर गये थे

मौलवी साहब उर्दू के अच्छे स्केच राइटर थे, बहुत बढिया आलोचक थे और सगठन शक्ति तो उनमे गजब की थी। मौलवी साहब मे फिरकापरस्ती की बू तक न थी, और वह हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद नही करते थे।

स्वाभिमान उनमे गजब का था। एक बार उन्होने सर अकबर हैदरी साहब को चाय के लिए बुलाया। हैदरी साहब शायद तीस-चालीस मिनट लेट पहुँचे। दस-पन्द्रह मिनट तो उन्होने इन्तजार किया और फिर चाय का सारा सामान उठवा दिया। जब हैदरी साहब पहुँचे तो मौलवी साहब ने उनसे कहा, "आपको तो रियासत के बहुत से काम रहते हैं इसलिए आपके लिए लेट होना मामूली-सी बात है, पर मैं भी कुछ काम करता हूँ। आपका इन्तजार किया, फिर मैंने चाय

खतम कर दी। माफ कीजियेगा।" सर अकबर हैदरी साहब उनकी इज्जत करते थे, इसलिए उन्होने कुछ भी बुरा न माना।

मौलवी साहब हाली के बडे भक्त थे और भाषा के मामले मे हाली को अपना गुरु मानते थे। मौलवी साहब के कितने ही रेखाचित्रो का हिन्दी मे अनुवाद हो चुका है। उनके द्वारा सपादित इगलिश-उर्दू डिक्शनरी हिन्दी वालो के भी बडे काम आती है और बन्धुवर हरिशकर शर्मा का तो यहाँ तक कहना है कि वह इस विषय का सर्वोत्तम कोश है।

मालूम नही कि मौलवी साहब ने अपना कोई जीवन चरित लिखा भी या नही। कितनी ही पुरानी बातें उन्हे याद थी और बडे प्रेम के साथ उन्हे सुनाते थे। उन्होने सर सैयद अहमद के, अलीगढ मे एग्लो ओरियन्टल कॉलेज निर्माण के साथी राजा जयकिशन दास जी मुरादाबाद वाले को देखा था और सर रॉस मसूद के बारे में लिखते हुए उनका जिक्र भी किया था। मौलवी साहब पत्र-लेखक भी बहुत अच्छे थे। मेरे पास उनके कितने ही खत सुरक्षित है। पर हैं वे अग्रेजी मे। उनके कितने ही उर्दू पत्र स्व० सुहैल अजीमाबादी के पास मौजूद थे।

उर्दू लेखक मौलवी साहब की बडी इज्जत करते थे और उन्हे बाबा-ए-उर्दू या उर्दू का पिता कहते थे। भारतवर्ष मे इस समय भी ऐसे कितने ही व्यक्ति मौजूद है जो मौलवी साहब से उपकृत हैं यानी जिन पर मौलवी साहब के एहसान हैं। ऐसे व्यक्तियो मे, मैं भी अपनी गणना करता हूँ।

एक घटना मुझे खासतौर से याद आ रही है। जब डॉ० ताराचन्द्र इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर हुए तो मौलवी साहब उनको बधाई देने के लिए ही दिल्ली से इलाहाबाद गये और उनकी पीठ ठोककर दूसरी ट्रेन से दिल्ली वापिस आ गये। उस समय मैं मौलवी साहब के पास ठहरा हुआ था। प० सुन्दरलाल से भी उनके सम्बन्ध बहुत अच्छे थे।

मौलवी साहब मे कोई त्रुटि नही थी, ऐसा मैं नही मानता। उनका उर्दू-प्रेम इतना ज्यादा बढा हुआ था कि उसकी वजह से कभी-कभी वह अपना सन्तुलन भी खो बैठते थे। एक बार महात्मा जी के बारे मे लिखते हुए उन्होने एक ऐसे शब्द का प्रयोग कर दिया था, जिससे हम हिन्दी वालो को बडा दु ख हुआ था। सुना है कि बगला भाषा के बारे मे उनका दृष्टिकोण गलत था। प० सुन्दरलाल जी का कहना है कि वह बातचीत मे कभी-कभी अपने विरोधियो के प्रति कठोर शब्दो का प्रयोग कर देते थे, पर बहुत दिनो तक साथ रहने पर भी मुझे ऐसा अनुभव नही हुआ। सिर्फ एक बार को छोडकर, जिसका मैंने ऊपर जिक्र किया है, जबकि उन्होने दरख्तो के कटने पर एक कटु शब्द का प्रयोग किया था, इसके अतिरिक्त मैंने उनके मुँह से कोई कडी बात कभी नही सुनी।

मौलवी साहब के साथ चाय पीने मे अदभुत आनन्द आता था। खुद तो वह बहुत ही कम खाना खाते थे, वर्षों से वह दिन में सिर्फ एक बार ही भोजन कर रहे थे, लेकिन दूसरो को बार-बार आग्रह करके खिलाने मे उनको मजा आता था। उनकी उस वक्त की बातचीत बडी शिक्षाप्रद होती थी। मौलवी साहब से कई बार मनोरजक बातचीत हुई थी। इसलिए मै उनका और भी कृपापात्र बन गया था। एक बार मौलवी साहब का फोटो मैंने लिया, जिसमे उनके सिर का कुछ हिस्सा कट गया। मैने मौलवी साहब से कहा था कि मैं आर्टिस्ट फोटोग्राफर हूँ। जब उसका मतलब उन्होने पूछा तो मैंने उनके कटे हुए सिर की बात कह दी, जिससे मौलवी साहब बहुत हँसे।

एक बार तो वह शाम की चाय के वक्त घण्टे-भर तक मेरा इन्तजार करते रहे और जब मैं लौटा तभी मेरे साथ चाय पी। मैंने माफी माँगी और मौलवी साहब ने मुझे क्षमा कर भी दिया।

मौलवी साहब बढ़िया से बढिया चाय मँगाते थे। उनके चले जाने से चाय पीने का मजा ही चला गया।

17

आचार्य गिडवानी

प्रिंसिपल गिडवानी गुजरात विद्यापीठ के प्रधानाचार्य थे। उन्होने विलायत की ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी मे शिक्षा प्राप्त की थी और ऑक्सफोर्ड की सस्कृति उनके जीवन का अग ही बन गयी थी। उनका कहना था कि हैदराबाद (सिन्ध) की सस्कृति भी उससे मिलती-जुलती थी। बहुत दिनो तक गुजरात विद्यापीठ मे मैने उनके अधीन हिन्दी अध्यापक के रूप मे काम किया था और कुछ दिनो उनकी धर्मपत्नी श्रद्धेया गगाबहिन को हिन्दी पढाई भी थी। जब वह गुजरात विद्यापीठ छोडकर वृन्दावन के प्रेम महाविद्यालय मे आचार्य बनकर पधारे थे, मैं वहाँ उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ था। उन दिनो आकस्मिक रूप से एक घटना ऐसी घटी जिसका मेरे जीवन पर बडा प्रभाव पडा। बात यह हुई कि मैं उनके साथ वृन्दावन से इक्के मे बैठकर मथुरा जा रहा था। जब इक्का चल रहा था तो मैने बातचीत के प्रसग मे उनसे कहा, "आप कोई सस्था स्थापित क्यो नही कर देते।" उन्होने इस पर एमर्सन का एक वाक्य उद्धृत किया 'इस्टीट्यूट इज दि लेंग्थेंड शैडो ऑफ ए मैन।' यानी सस्था तो किसी मनुष्य की विस्तृत छाया के समान है। मैंने तब तक एमर्सन का नाम भी नही सुना था। मैं पूछ बैठा, "यह वाक्य किसका है?" उन्होने कहा, "एमर्सन का।" इसके बाद बातचीत चलती रही और उन्होने एमर्सन का एक दूसरा वाक्य भी उद्धृत किया। फिर भी मैंने वही सवाल दुहराया तो आचार्य गिडवानी जी ने कहा, "यह आश्चर्य की बात है कि आपने एमर्सन को नही पढ़ा। अब आप उनके निबन्धो का सग्रह पढिए।" मैंने उनकी आज्ञा का पालन किया और बारह आने मे आगरे के एक पुस्तक विक्रेता से 'एस्सेज ऑफ एमर्सन' नामक पुस्तक खरीद ली और तब वह मेरा स्वाध्याय ग्रन्थ ही बन गयी। एमर्सन ने मेरे मस्तिष्क और हृदय को जकड लिया और पच्चीस वर्ष तक मैं नित्यप्रति प्रात काल के समय एमर्सन की रचनाओ का पाठ स्वाध्याय के तौर पर करता रहा। एमर्सन के साथी थोरो मेरे जीवन मे उनके बाद आये।

तत्पश्चात वाल्ट व्हिटमैन का ग्रन्थ भी मैंने पढा। यह कहा जाता है कि अमेरिका ने विश्व की सस्कृति को तीन रत्न प्रदान किये हैं—एमर्सन, थोरो और व्हिटमैन। महात्मा गाधी जी भी एमर्सन और थोरो को पढ़ा करते थे और 'सिविल डिसऑबिडिएन्स' शब्द तो उन्होने थोरो से ही लिया था। 'सेल्फ रिलायेन्स' एमर्सन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निबन्ध था और आचार्य गिडवानी उसे छात्रो को पढ़ाया करते थे। वह दो बार फीरोजाबाद भी पधारे थे। स्थानीय

चुंगी मे उनके स्वागत के अवसर पर उनका भाषण भी हुआ था। वह अग्रेजी के बडे अच्छा वक्ता थे। जब वह अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी मे बोले तो लाला लाजपतराय ने उनके भाषण को सर्वश्रेष्ठ बतलाया था। प० जवाहरलाल नेहरू के साथ सत्याग्रह करते हुए वह नाभा जेल मे भी रहे थे। जवाहरलाल तो कुछ पहले ही वहाँ से छूट गये थे, गिडवानी जी बाद मे छूटे। जेल मे गिडवानी जी का वजन इक्कीस पौण्ड घट गया था। मुझे जब दिल्ली स्टेशन पर अकस्मात् उनके दर्शन हुए तो मैं उनकी दुर्बलता को देखकर चौक गया था और भावाविभूत होकर मैंने उनके चरण स्पर्श कर लिए थे।

जब कराची मे गिडवानी जी पर मुकदमा चल रहा था, उन्होने मेरे लिए एक लम्बा आत्मचरितात्मक पत्र भेजा था। वह महत्त्वपूर्ण पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित है। 'सिन्ध हैराल्ड' के 29 जून के अक मे सम्पादक ने लिखा था

गिडवानी जी कराची मे विदेशी वस्त्रो की दूकान पर पिकेटिंग कर रहे थे। कडी धूप मे बहुत देर हो चुकी थी। उनकी धर्मपत्नी गगाबहिन ने आकर कहा, "अब तुम घर जाओ। तुम्हे खडे-खडे बहुत देर हो चुकी है। वहाँ बच्चो की देखभाल करनी है। यहाँ अब मेरी बारी है। मैं पिकेटिंग करूँगी।"

गिडवानी जी ने कहा, "कोई बात नही, पर सुनो हम दोनो ही साथ-साथ क्यो न पिकेटिंग करें ?"

एक मित्र वहाँ खडे हुए थे, बोले, "और बच्चो की देखभाल कौन करेगा ?"

उत्तर मिला, "भारत माता।"

गिडवानी जी के चरित्र की सबसे बडी खूबी उनके मधुर वार्तालाप और मिलनसारी मे दीख पडती थी। उनका आतिथ्य हृदयग्राही था। इसमे सन्देह नही कि अपनी बातचीत से वह सुसस्कृत से सुसस्कृत आदमी पर ज़बरदस्त असर डाल सकते थे। दलबन्दी के प्रति उनके हृदय मे घृणा थी। विरोधियो के प्रति भी कटु वाक्यो का प्रयोग करना वह अनुचित समझते थे और अपने साथियो की कमज़ोरियो के प्रति उनके हृदय मे सहानुभूति थी।

गिडवानी जी कष्टो मे प्रसन्नचित्त रहना जानते थे। वृन्दावन मे उनका स्वास्थ्य प्राय अच्छा नही रहता था। वहाँ आसपास का वायुमण्डल सकीर्ण धार्मिक विचारो के साथ-साथ मलेरिया के कीटाणुओ से परिपूर्ण था। वह कई बार बीमार पडे। जब उनके मित्रो ने कहा कि आप इस स्थान को छोडकर चले जाइए, यहाँ आपका स्वास्थ्य ठीक नही रहता, तब उन्होने यही जवाब दिया था, "लाइफम वर्क लाइज वेयर यू फाईण्ड यूअरसेल्फ एण्ड नाट वेयर यू विश टू बी।" अर्थात्, जहाँ परिस्थिति ने तुम्हे ला पटका है, वही तुम्हारा कर्तव्य क्षेत्र है, वहाँ नही जहाँ तुम जाना चाहते हो।

यह सस्मरण अधूरे ही रहेगे यदि श्रद्धेय गगा बहिन (उनकी धर्मपत्नी) का जिक्र न किया जाय। यह बात ध्यान देने योग्य है कि गिडवानी जी का विलायत मे पढने का खर्च गगाबहिन के पिताजी ने ही किया था। गगाबहिन बडी दबग महिला थी। पाकिस्तान बन जाने के बाद वह अकेली कराची गयी थी और अपने स्व० पति द्वारा बनवाए हुए मकान का मूल्य उन्होन माँगा था। गिडवानी जी 44-45 वर्ष की उम्र मे ही चले बसे थे और सम्पूर्ण गृहस्थी का भार गगाबहिन पर ही पडा था। बीमा कम्पनी का काम बडे परिश्रमपूर्वक करते हुए उन्होने बच्चो को पाला-पोसा, बडा किया और शिक्षित किया। उनके पुत्र अच्छे पदो पर काम कर रहे थे। आचार्य गिडवानी पहले दिल्ली के रामजस कॉलेज के प्रिंसीपल थे और बापू के आदेशानुसार वहाँ से त्यागपत्र देकर वह सत्याग्रह सग्राम मे शामिल हो गये थे।

आचार्य गिडवानी जी विचारो की उच्च सतह पर थे। उनकी विचारधारा और वाग्धारा निर्मल निर्झर के कल-कल निनाद की याद दिलाती थी।

18

स्वर्गीय आचार्य क्षितिमोहन सेन

आचार्य क्षितिमोहन सेन के प्रथम दर्शन मुझे शान्ति-निकेतन मे मई सन् 1918 मे तब हुए थे, जब मैंने शान्ति-निकेतन की प्रथम यात्रा की थी। चूंकि आचार्य क्षितिमोहन सेन का जन्म काशी मे हुआ था, जहाँ उनके पिताजी एक सुप्रसिद्ध वैद्य थे, अत वह हिन्दी खूब बोल लेते थे। हम दोनो की बातचीत भी हिन्दी मे हुई। जब मुझे ज्ञात हुआ कि उन्होने पिछले पच्चीस-तीस वर्ष हिन्दी के सन्त कवियो के विषय मे अनुसन्धान करते और लिखते हुए बिताये है तो मैंने धृष्टतापूर्वक कहा, "अपनी सामग्री के कुछ अश मुझे भी दीजिए ताकि मैं एक लेख लिख सकूँ।" आचार्य जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "आप भी हमारे बगाली लेखको की नकल कर रहे है जो बिना परिश्रम किये दूसरो के द्वारा सग्रहीत सामग्री का उपयोग करके ही पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त करना चाहते हैं। आप तो हिन्दी भाषा-भाषी है, आपका कर्त्तव्य है कि आप सन्त कवियो पर कुछ खोज करके मेरी सहायता करें। आप उलटे मेरे द्वारा सग्रहीत सामग्री का उपयोग करना चाहते हैं। उनकी इस स्पष्टवादिता से मैं लज्जित हो गया। इसके दो वर्ष बाद जब मुझे सन् 1920-21 में शान्ति-निकेतन मे रहने का अवसर मिला तब तो उनके और शास्त्री महाशय (विधुशेखर महाचार्य) के दर्शन मुझे प्राय नित्य ही होते थे। मैंने सुना था कि उन्होने दादू पर बगला भाषा मे एक पुस्तक लिखी थी जिसका मूल्य छ रुपये था। उनका कबीर का अध्ययन तो बहुत गहरा था ही। कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने कबीर की एक सौ रचनाओ का अग्रेजी मे जो अनुवाद किया था वह क्षिति बाबू के अनुवादो के आधार पर ही किया गया था।

अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद क्षिति बाबू को जम्मू काश्मीर मे अच्छी नौकरी मिल गयी थी। वही उन्हें कवीन्द्र का पत्र मिला कि आप शान्ति-निकेतन चले आइये। इस पत्र के उत्तर मे उन्होने लिखा था "मैं तो केवल एक ही रवीन्द्र को जानता हूँ जो कवि हैं। क्या आप वही हैं? यदि हाँ, तो आपके साथ काम करने मे मैं अपना सौभाग्य समझूंगा।" गुरुदेव का स्वीकारात्मक उत्तर आने पर क्षितिमोहन बाबू ने लगी-लगाई नौकर छोड दी और अल्प वेतन पर शान्ति-निकेतन चले गये और अपने जीवन के अन्त तक वही बने रहे।

क्षिति बाबू मे मनोविनोद तथा हास्य की अद्भुत प्रवृत्ति थी। हँसी मजाक के बीसियो किस्से उन्हें याद थे और अपनी बातचीत मे वह उनका उपयोग भी किया करते थे। साहित्यिक वार्तालाप मे व्यस्त रहने के कारण वह रात के समय बडी देर

मे भोजन करने पहुँचते थे और उससे उसकी धर्मपत्नी नाराज होती थी। एक दिन वह और भी देर से पहुँचे और स्वभावत उनकी पत्नी बहुत क्रुद्ध हुईं। वह बोली, "अब खाना तो बिल्कुल ठण्डा हो गया है।" क्षितिमोहन ने थाली उठाई और उनके सिर पर रखने का प्रयत्न किया तो उनकी पत्नी ने आश्चर्य के साथ पूछा, "यह आप क्या कर रहे है ?" क्षिति बाबू बोले, 'चूंकि तुम्हारा माथा गर्म था, इसलिए उसके सम्पर्क से खाना भी गर्म हो जायेगा।" इस पर उनकी पत्नी को हँसी आ गयी।

प० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी आचार्य को अपना गुरु मानते थे और उनके प्रति बडी श्रद्धा भी रखते थे। द्विवेदी जी ने क्षिति बाबू के साथ रहकर पूरा-पूरा लाभ भी उठाया था। जहाँ तक हम जानते हैं क्षितिमोहन की केवल एक पुस्तक हिन्दी मे छपी थी—'भारत मे जातिभेद'। अग्रेज़ी मे उनका ग्रन्थ मध्यकालीन सन्तो पर छपा था जिसकी भूमिका दीनबन्धु ऐण्ड्रूज ने लिखी थी।

क्षिति बाबू टीकमगढ भी पधारे थे। वह बम्बई की हिन्दी विद्यापीठ मे भाषण देने वाले थे और मैंने उन्हे निमन्त्रित किया था। आचार्य जी ने मुझे लिखा, "यदि आप हजारीप्रसाद की यात्रा का प्रबन्ध कर दे तो मैं उनको साथ लेकर टीकमगढ आ सकता हूँ क्योंकि वह एक बार आपके यहाँ आ चुके है।"

मैंने प्रबन्ध करने की स्वीकृति भेज दी और दोनो महानुभाव टीकमगढ पहुँच गये। वह टीकमगढ के महाराजा साहब से मिले थे और जतारा सरोवर की यात्रा भी उन्होंने की थी। राजा बहादुर श्री देवेन्द्र जी उनसे मिलने कुण्डेश्वर पधारे थे। उस समय क्षिति बाबू ने उन्हे कई मनोरजक किस्से सुनाये थे। एक किस्सा इस प्रकार था—

"किसी श्रद्धालु युवक ने अपने गुरु से पूछा कि अपनी पत्नी से पहली मुलाकात मे मैं क्या बातचीत करूँ। गुरु जी ने सकोचवश इतना ही कहा—उस समय जो विचार तुम्हारे मन मे सबसे पहले उठे, उसी की बात करना। वह युवक पहलवान टाइप का था। प्रथम मिलन मे अपनी पत्नी से पूछ बैठा—क्या तुम पजा लडाना जानती हो।"

क्षिति बाबू निरर्थक वाद-विवाद मे नही पडते थे। एक बार श्री लका के एक बुद्ध भिक्षु श्री नारद ने उनसे कहा कि आप ईश्वर के अस्तित्व पर मुझसे वाद-विवाद कर लीजिए। आचार्य जी ने उत्तर दिया, "इस निर्णय मे मेरी बिल्कुल रुचि नही है। मेरा मुख्य विषय तो भारत के सन्त कवि है और मै उसी पर बातचीत कर सकता हूँ।"

टीकमगढ यात्रा के बाद क्षिति बाबू ने 'मधुकर' के लिए एक लेख भी लिखा था जिसमे कुण्डेश्वर और उसके आसपास के जनपद के जीव-जन्तुओ और पशु-पक्षियो आदि का वर्णन करने का आदश दिया था।

वह फीरोज़ाबाद भी आये थे और निकटवर्ती ग्राम किरथरा भी गये थे। मेरे पास आचार्य जी के पत्र थे जो राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित है। चि० रामगोपाल पर आचार्य जी को बडी कृपा थी और उसने उन पर कई लेख भी लिखे थे।

19

श्रीनारायण चतुर्वेदी

लगभग 75 वर्ष पहले की बात है, इटावा से एक बारात फीरोजाबाद आयी हुई थी। बाराती लोग स्नान इत्यादि से निवृत्त होने के लिए हनुमान जी के मन्दिर और क्षेत्र पर गये हुए थे। स्थानीय चतुर्वेदी समाज का वही एक मिलन-स्थल था। मैं उन दिनो मिशन स्कूल का विद्यार्थी था। हनुमान जी पर एक व्यक्ति ने दूर की ओर इशारा करते हुए कहा, "इटावे कौ एक लडका बडौ हुशियार है जो बरात मे आयो है। वो वाँ खडो है।" उस समय मेरी हिम्मत उस विद्यार्थी से बातचीत करने की नही हुई। पर नाम मैने जरूर पूछ लिया था। उस समय मुझे स्वप्न मे भी कल्पना न थी कि आगे चलकर भाई श्रीनारायण जी से इतनी घनिष्ठता हो जाएगी। श्रीनारायण जी यद्यपि उम्र मे मुझसे आठ-नौ महीने छोटे है तथापि अनुभव और योग्यता मे मैं उन्हे अपना अग्रज ही मानता हूँ। स्पष्टवादिता उनका सबसे बडा गुण है और यह गुण उन्हे अपने मुहल्ले छिपेटी (इटावा) से विरासत मे मिला है। दो टूक बात कहने मे वह कभी नही चूकते फिर चाहे वह किसी भी साधन-सम्पन्न व्यक्ति या शक्तिशाली गवर्नमेण्ट को भले ही खटके।

भाई श्रीनारायण जी के जीवन का एक अच्छा भाग सरकारी नौकरी करते हुए बीता है। रिटायर होने से पहले वह स्कलो के इस्पेक्टर रह चुके थे और मध्य भारत मे शिक्षा निदेशक भी। उनमे अद्भुत प्रबन्ध शक्ति थी और अब भी है। मैंने उसका अनुभव स्वय सन् 1952 मे अपनी इन्दौर यात्रा मे किया था।

श्रीनारायण जी ने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द को मध्य भारत की यात्रा के लिए निमन्त्रित किया था और उसी सिलसिले मे उनका साथ देने के लिए उन्होने मुझे भी बुला लिया था। वह जानते थे कि मेरा श्री सम्पूर्णानन्द जी से घनिष्ठ परिचय है—हम दोनो राजकुमार कॉलिज, इन्दौर, मे ढाई वर्ष तक साथ-साथ अध्यापक रह चुके थे—इसलिए मुझे भी यात्रा का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

मैंने उस समय भोपाल, देवास, उज्जैन और इन्दौर मे सम्पूर्णानन्द जी के स्वागत का प्रबन्ध अपनी आँखो से देखा। यात्रा, निवास, भोजन और स्वागत इत्यादि मे कही किसी प्रकार की त्रुटि नही दीख पडी। भोपाल से देवास तक हर मील पर एक सिपाही रक्षा के लिए खडा था। अपने-आपको पृष्ठभूमि मे रखते हुए वह दूसरो स काम लेना और उन्हे कीर्ति प्रदान करना खूब जानते है। मुझे डेली कॉलिज छोडे बत्तीस वर्ष हो चुके थे और श्री सम्पूर्णानन्द जी को चौंतीस

वर्ष। इसलिए वहाँ की यात्रा हम लोगो के लिए अत्यन्त आनन्दप्रद थी। श्री सम्पूर्णानन्द तो हार्दिक स्वागत से चकित रह गये थे। उन्होने एक बार स्वय मुझसे कहा, "इन्दौर मे उसके बाद काग्रेस की जो मीटिंग हुई, उसमे मैं नही गया। क्योकि उससे बढिया स्वागत मेरा हो नही सकता था।"

मैं सुन चुका था कि श्रीनारायण जी के उत्तर प्रदेश मे शिक्षा निदेशक नियुक्त होने म श्री सम्पूर्णानन्द से कुछ बाधा ही पडी थी। उन्होने किसी अन्य सज्जन को डायरेक्टर बना दिया था। मैंने दबी जबान से उसका उल्लेख श्रीनारायण जी के सामने किया तो उन्होने उत्तर दिया, "उस व्यवहार को भूल जाने के लिए ही मैने सम्पूर्णानन्द जी को मध्य भारत बुलाया था। मै उस बात को दिमाग मे भी नही रखना चाहता।"

व्यवहार कौशल और लोक-सग्रह की भावना श्री नारायण जी का सबसे बडा गुण है। वह किसी व्यक्ति को खोते नही है और वक्त पर जिसकी जो भी मदद बन सके कर देते है। इसके लिए वह खतरा भी मोल लेते हैं। जितने आदमियो को उन्होने नौकर कराया है अथवा आर्थिक सहायता दी और दिलाई है उसकी लिस्ट काफी लम्बी है।

एक बार मैं अपने पडौसी श्रद्धेय वेकटेश नारायण तिवारी के घर गया तो वहाँ वह किसी के स्वागत की तैयारी कर रहे थे। मैंने पूछा, "तिवारी जी, क्या मामला है?" उन्होने कहा, "मैंने आज श्रीनारायण चतुर्वेदी को बुलाया है। उन्होने मेरे ऊपर जो उपकार किया था, उसे मैं कभी नही भूलूंगा।"

मैंने उस उपकार के बारे मे कुछ नही पूछा और घर लौट आया। तिवारी जी के स्वर्गवास के अनेक वर्ष बाद मैंने इसकी चर्चा श्रीनारायण जी से की तब विस्तृत वृत्तान्त ज्ञात हुआ। तिवारी जी काग्रेस की तरफ से जेल-यात्रा करना चाहते थे पर घरपर आर्थिक सुविधा कुछ भी नही थी। इसकी चर्चा जब श्रीनारायण जी के पास तक पहुँची तब उन्होंने इण्डियन प्रेस से एक किताब के अनुवाद कार्य के लिए दो-ढाई हजार रुपये उन्हें दिलवा दिए थे जिन्हे घर पर रखकर तिवारी जी जेल गये थे। यह बात यू० पी० सरकार के कानो तक पहुँच गयी थी और चूँकि वहएक उच्च अधिकारी थे इस कारण यह काम उनके लिए खतरनाक था। उन दिनो एस० सी० मेहता, आई० सी० एस० उच्चतर पद पर थे, इसलिए श्रीनारायण जी बच गये।

एक बार मेरे भतीजे के मामले को सुलझाने के लिए श्रीनारायण जी भोपाल मे दोपहरी भर घूमते रहे। वह उन दिनो डॉक्टरी पढ रहा था और उसका लडको से कुछ लडाई-झगडा हो गया था, जिससे भाग-कर वह फीरोजाबाद चला आया था। उस समय श्री-नारायण जी भोपाल मे थे। मैंने ट्रककाल करके उन्हे सारी बात समझा दी थी। चूँकि श्रीनारायण जी का सम्बन्ध उच्च पदाधिकारियो से था, इसलिए मामला सुलझाने मे उन्हे सफलता मिली।

बन्धुवर मधुकर भट्ट से, जो स्व० बालकृष्ण भट्ट के प्रपौत्र है, मैंने पूछा, "सरकारी नौकरी आपको कैसे मिली?" तो वह बोले, "श्रद्धेय श्रीनारायण जी की कृपा से।"

श्रीनारायण जी और सिफारिश तो सुन सकते हैं पर यदि कोई उनसे तबादला रुकवाने को कहे तो वह अत्यन्त रुष्ट हो जाते है। उनके सेवा-काल मे उनका ट्रान्सफर तीस-बत्तीस बार हुआ था।

साहित्यिको के तो वह सरक्षक ही रहे हैं। स्व० भाई हरदयालसिह जी, जो ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि थे, ने हमे स्वय सुनाया था कि उनकी नौकरी श्रीनारायण जी ने ही लगवाई थी और उनकी पुत्री के विवाह मे उन्होने अपने पास से 1200 रुपये दिये थे। महाकवि निराला और कविवर हितैषी, श्री हेमचन्द्र जोशी और कविवर स्नेही जी इत्यादि को जो भी सहायता वह कर सकते थे, उन्होने की। एक बार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त ने स्वय मुझसे कहा था, "श्री-

नारायण जी तो किसी मध्यकालीन कवियो के सरक्षक महाराज के ही अवतार हैं।"

श्री नारायण जी, 'नेकी कर कुएँ मे डाल' की नीति के पक्षपाती है। दूसरो पर किए हुए अपने उपकारो का उल्लेख वह कभी नही करते। श्री हेमचन्द्र जोशी को पेशन उन्ही ने ही दिलाई थी और उनके स्वर्गवास के बाद उनकी पत्नी को भी। जोशी जी ने एक बार मुझसे कहा था, "चौबे लोगो की मुझ पर खास तौर से कृपा है। जब मैं खडवा मे बहुत बीमार पड गया था तो सेवा-सुश्रूषा करके भाई माखनलाल ने मेरी जान बचाई थी और आजकल मै श्रीनारायण जी की कृपा से अपना जीवन-निर्वाह कर रहा हूँ।"

किताबें तो उन्होने बीसियो लेखको की बिकवाई। राष्ट्रकवि रामधारी सिह दिनकर जी न खुद मुझसे कहा था, "मेरी एक पुस्तक पर मध्यप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कार भी श्रीनारायण जी ने दिलवाया था और दिल्लगी की बात यह थी कि वह पुस्तक पुरस्कार के लिए भेजी भी नही गई थी।" श्रीनारायण जी ने किसी से पुस्तक खरीदवा कर पुरस्कार की सूची मे शामिल कर दी थी और चूँकि वह निर्णायको मे से थे, इससे पुरस्कार भी दिलवा दिया था।

इण्डियन प्रेस से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उस प्रेस की उन्होने बडी सहायता की थी। हम सभी जानते है कि पूरे बीस वर्ष तक उन्होने 'सरस्वती' का सम्पादन सर्वथा नि स्वार्थभाव मे किया था। जबकि सम्पादन कार्य—लेखकों के लिए पारिश्रमिक तथा पोस्टेज के लिए—प्रेस उन्हे बहुत कम पैसा देता था।

अपने सम्पादनकाल मे उन्होने किसी को भी नही बख्शा। एक बार भाई शम्भूनाथ चतुर्वेदी ने लोकसभा मे और मैने राज्य सभा मे अग्रेजी मे भाषण देने की हिमाकत की थी। श्रीनारायण जी न हम दोनो की कठोर आलोचना की थी।



नि स्वार्थ हिन्दी सेवक श्रीनारायण चतुर्वेदी

हिन्दी जगत् मे जब अभिनन्दन ग्रन्थो की बाढ़-सी आ गयी और अनेक अनधिकारी व्यक्तियो को अभिनन्दन ग्रन्थ भेट किये जाने लगे तो श्रीनारायण जी के हृदय को इस दम्भपूर्ण कार्य से धक्का लगा और उन्होने एक व्यग्यात्मक पुस्तक 'विनोद शर्मा अभिनन्दन ग्रन्थ' निकाली और अपने पास से नौ सौ रुपये खर्च करके उसे छपा भी दिया। चूँकि अनेक अभिनन्दन ग्रन्थ मेरे द्वारा ही निकाले गये थे, इसलिए मुझ पर भी कुछ मधुर कटाक्ष किये गये थे। उनकी पुस्तक 'छेडछाड' मे तीन कविताएँ तो मेरे ही विषय मे हैं। आधुनिक काल मे श्रीनारायण जी सर्वोत्तम व्यग्य लेखक है। 'खर्चा खुराकजानवरान'[1] जैसा उच्च कोटि का लेख वह ही लिख सकते थे। इससे बेहतर व्यग्य लेख बहुत ही कम देखने मे आया है।

अभी हाल मे जब उत्तर प्रदेश सरकार ने उर्दू को द्वितीय राजभाषा घोषित करने की भूल की थी,

1 धर्मयुग मे प्रकाशित

उसका घोर विरोध मुख्यत उन्होने किया है।

श्री नारायण जी का 90 वाँ वर्ष शुरू हो रहा है पर उनमे सजीवता और फुर्ती नवयुवको जैसी ही है। उनके अक्षर अब तक उतने ही स्पष्ट तथा सुन्दर हैं जितने युवावस्था मे थे। वह बूढा होना जानते ही नही, बाबा या नाना कहलाने से उन्हे घृणा है। वह अपनी मित्र मण्डली मे 'भैया साहब' के नाम से प्रसिद्ध है। बडे आदमियो की खुशामद और छुटभइयो की उपेक्षा वह कभी नही करते। यद्यपि उनके जीवन मे अनेक गार्हस्थिक दुर्घटनाएँ घटी हैं तथापि उन्होने बडे धैर्यपूर्वक 'देह धरे के इन दण्डो'[1] को सहन किया है।

साहित्यसेवा उनके कुल की प्राचीन परम्परा है। उनके पूर्वज सस्कृत के महान् पडित थे और पूज्य पिताजी, स्व० द्वारिका प्रसाद जी चतुर्वेदी हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक थे। श्रीनारायण जी ने उन पर एक स्मृति ग्रन्थ निकाला है पर उसकी केवल 250 प्रतिया ही छपाई है। कई अभिनन्दन ग्रन्थो और स्मृति ग्रन्थो का बडी योग्यतापूर्वक उन्होने सम्पादन किया है।

धार्मिक विषयो मे वह कट्टर प्राचीनतावादी हैं। अपना भोजन अब भी वह स्वय ही बनाते है पर विरोधियो के प्रति उनके हृदय मे सहिष्णुता है। भक्ष्याभक्ष्य का ख्याल न रखने वाले व्यक्तियो से भी उनके मधुर सामाजिक सम्बन्ध रहे हैं।

उनका जन्म-स्थान छिपेटी मुहल्ला, इटावा, है और छिपेटीपन उनकी सबसे बडे विशेषता है। उनका शिकार मुझे भी होना पडा है। एक बार उन्होंने मुझे लिखा था, "स्व० महाराज सिह जू देव पर स्मृति-ग्रन्थ आपने अब तक क्यो नही निकाला ? आपका यह अपराध अक्षम्य है।" और भी कई खरी-खोटी उन्होने मुझे सुनायी थी। परिणामस्वरूप मैंने वह ग्रन्थ निकाल ही दिया। उसकी एक सुन्दर भूमिका कृपाकर उन्होने लिख दी थी। राजस्थान के राज्यपाल श्री सम्पूर्णानन्द जी के अनेक निमन्त्रण आने पर भी जब मै जयपुर नही जा सका तो श्रीनारायण जी ने मुझे अच्छी-खासी डाँट लगायी थी। तत्पश्चात् मैं जयपुर गया था।

दूसरो की कीर्ति-रक्षा करने का कोई भी मौका वह हाथ से जाने नही देते है। स्व० मुक्ताप्रसाद जी चतुर्वेदी, स्व० जगन्नाथ प्रसाद, न्यायमूर्ति ब्रजकिशोर के स्मृतिग्रन्थो का सम्पादन उन्होने किया था और भाई सोहनलाल द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ की भूमिका भी उन्होने लिखी थी।

हाल ही मे उन्होने प्राचीन मन्दिरो पर एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। इस उम्र मे भी वह पूर्ववत् यात्रा करते रहते है। मारीशस की यात्रा भी उन्होने की थी।

महर्षि दयानन्द, महात्मा गाधी और राजर्षि टण्डन जी की त्रिमूर्ति हिन्दी जगत् मे विख्यात है। यदि आधुनिक युग मे निस्वार्थ हिन्दी सेवको की सूची बनायी जावे तो श्रीनारायण जी का नाम उसमे अग्रगण्य रहेगा।

---

1 देह धरे का दण्ड है, सब काहे को हाय।
ज्ञानी काटे ज्ञान से मूरख काटे रोय॥

20

हजारीप्रसाद द्विवेदी जी

भाई हजारीप्रसाद जी के नाम के आगे स्वर्गीय शब्द कभी जोडना होगा, इसकी दु खद कल्पना भी मेरे लिए असम्भव थी। वह उम्र मे मुझसे पद्रह वर्ष छोटे थे। पिछले 48-49 वर्षों से मेरे-उनके सम्बन्ध बिल्कुल घरेलू बन गये थे। दरअसल उनके बारे मे तटस्थ वृत्ति से लिखना मेरे लिए सम्भव नही। उनका यशस्वी साहित्यिक रूप मेरे लिए बिल्कुल गौण बन चुका था। इसका एक कारण यह भी था कि उनकी विद्वत्तापूर्ण रचनाओ को विधिवत् समझने की योग्यता भी मुझमे नही थी और मैंने उनके ग्रन्थो मे कुछ को ही विधिवत् पढा था। पर उनके सहृदयतापूर्ण व्यक्तित्व का मैंने बहुत निकट से अध्ययन किया था। सस्कृत मे एक उक्ति है, 'विद्या ददाति विनय', द्विवेदी जी उसकी साक्षात् मूर्ति थे। अपनी साधना के द्वारा वह हिन्दी जगत् मे चोटी के विद्वान् बन गये थे और आज जब मैं यह सोचता हूँ कि मैंने उनके साथ कैसे-कैसे धृष्टतापूर्ण व्यवहार किये तो अपने ऊपर लज्जा आती है।

सन् 1920-21 मे मुझे चौदह महीने शान्ति निकेतन मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और उसका वृत्तान्त मैंने 'माधुरी' मे लिखा था। यह बात शायद 1924 की है। वह लेख द्विवेदी जी की निगाह से गुजरा था। जब वह केवल 17 वर्ष के ही युवक थे तभी से मेरा-उनका आत्मिक सम्बन्ध कायम हो गया था, यद्यपि व्यक्तिगत परिचय सन् 1930-31 मे ही हो सका।

द्विवेदी जी बडे प्रेमी जीव थे और मेरा-उनका मजाक बराबरी के धरातल पर ही होता था। एक बार द्विवेदी जी ने मुझसे पूछा, "शान्ति-निकेतन कब आ रहे है?" मैंने उत्तर दिया, "अगर आप सवेरे पौने चार बजे चार प्याले चाय तथा मिष्टान्न का प्रबन्ध कर सकें तो चाहे जब पहुँच सकता हूँ।" अकस्मात् इसके कुछ दिनो बाद मुझे शान्ति-निकेतन जाना पडा। दूसरे दिन सवेरे पौने चार बजे द्विवेदी जी चाय लेकर हाजिर थे। मैंने कहा, "यह आपने गजब कर दिया। घरवालो को जगाकर उनकी नीद हराम कर दी। मैंने तो मजाक किया था।" द्विवेदी जी खूब हँसे और बोले, "बच्चे इस बात से बहुत खुश है कि आज उन्हे जल्दी ही चाय मिल गयी और मिष्टान्न भी।"

मैं द्विवेदी जी को अपने घर का आदमी समझकर उन पर असह्य बोझ डाल दिया करता था। जब मैं कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) मे था, मैंने द्विवेदी जी को लिखा "आप कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर एक लेख लिखकर लाइये। हमारे वसन्तोत्सव पर उसका पाठ कीजिये। रास्ते मे कानपुर उतरिये, 'प्रताप' वालो



हजारीप्रसाद द्विवेदी जी

से मिलिये और लौटते वक्त ग्वालियर, आगरा और फीरोजाबाद में भी भाषण दीजिए पर हमारे बजट में कुल पचास रुपये की गुजाइश है। इसी से काम चलाना होगा।"

पचास रुपये की रकम बहुत थोडी थी और उसमे थर्ड क्लास के रेल-भाडे के बाद पाँच-सात रुपये ही बच सकते थे। पर द्विवेदी जी कुण्डेश्वर आना ही चाहते थे अत उन्होने आदेश मान लिया। उन्होने इस साहित्यिक यात्रा का प्रोग्राम विधिवत सम्पन्न किया। आज तो मुझे अपनी हिमाकत पर हार्दिक दु.ख होता है, उन दिनो मुझसे यह भूल बन पडी थी पर द्विवेदी जी कृतज्ञतापूर्वक उस यात्रा की याद प्राय कर लेते थे। वह कहते थे, "इस यात्रा ने मुझे वक्ता बना दिया। आपकी आज्ञा से मैं ग्वालियर उतरा। वहाँ महाविद्यालय के प्रधानाचार्य ने मुझसे कहा कि आपको बी० ए० के विद्यार्थियो के सामने कुछ बोलना पडेगा। मै सहर्ष राजी हो गया, यह ख्याल करके कि इतने थोडे विद्यार्थियो से बातचीत तो कर ही लूँगा पर जब विद्यालय के हॉल मे पहुँचा तो वहाँ एक हजार विद्यार्थी दीख पडे। मुझे सार्वजनिक भाषण देने का अभ्यास बिल्कुल नही था, इसलिए मेरे होश गायब थे। फिर भी मैंने हिम्मत नही हारी। 'विशाल भारत' मे एक ग्रामीण कविता पढी थी, वह मुझे याद आ गयी और मैने हिम्मत करके बोलना शुरू किया

"एक किसान के घर मे कोयल बोल गयी, सो उसने कोयल को फँसाने के लिए जाल बिछा दिया पर कोयल के बजाय, एक उल्लू फँस गया। इस निरपराध जीव का किस्सा मुझे याद आ रहा है।

"कोयल बोल गयी अँगना
कि खूसट आइ फँसे फँदना
अकल हेरान सकल मति हरी
कहो तो चिच चिच चिच-पिच करी।

"उसी स्थिति म मैं आज फँस गया हूँ।" यह सुनकर सारा हाल खिलखिलाकर हँस पडा। उससे मेरा साहस बढ गया और मैंने घण्टा-भर कवीन्द्र पर धारा प्रवाह भाषण दे डाला। उसी दिन मुझे अपनी भाषण शक्ति का अनुभव हुआ था।"

द्विवेदी जी ने आगरे तथा फीरोजाबाद की भी यात्रा की थी। जहाँ-जहाँ मैं रहा, वह वहाँ पधारे। ज्ञानपुर वह दो बार पधारे थे। मुझसे मिलने वह कोटद्वार (गढवाल) भी गये थे। कुण्डेश्वर तो दो बार गये ही थे और दो वर्ष पहले वह दो बार फीरोजाबाद भी आये थे। फीरोजाबाद की गन्दगी का ख्याल करके मैं उन्हे यहाँ बुलाता नही था। इस डर से कि वह कही बीमार न पड जायें, पर वह आग्रह-पूर्वक पधारते ही थे।

शान्ति-निकेतन के वह दिन मुझे कभी नही भूल

सकते जब उनके दर्शन वहाँ होते थे और खूब मजाक चलता था। उस सध्या का मुझे भली-भाँति स्मरण है जबकि हम दोनो वहाँ टहल रहे थे। वर्षा ऋतु के बाद शान्ति-निकेतन मे बादलो की रग-बिरगी छटा दर्शनीय होती है। उसी का निरीक्षण करने के बाद जब हम दोनो पत निवास के निकट लौटे तो मैंने कहा—

"द्विवेदी जी, यहाँ हिन्दी भवन बनेगा," और तीन वर्ष मे भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो गयी। उसके लिए मुझे पद्रह बार शान्ति-निकेतन की यात्रा करनी पडी—अनेक साधन-सम्पन्न व्यक्तियो को शान्ति-निकेतन ले जाना पडा। उन प्रतिष्ठित अतिथियो के स्वागत सत्कार की ज़िम्मेदारी मैं द्विवेदी जी पर ही डाल देता था। मैं कहता था, "यह काम असिस्टैंण्ट पण्डा का है। मै तो हेड पण्डा हूँ। लाने-भर की ज़िम्मेदारी मेरी है, बाकी आपकी।" मुझे चूकि उन दिनो 175 रुपये मासिक वेतन मिलता था, इसलिए यात्रा का व्यय मेरे लिए अपेक्षाकृत आसान भी था, पर द्विवेदी जी को कुल जमा पचास रुपये ही मिलते थे। उनपर कैसी बीतती होगी, यह वह ही जानते थे।

भाई सीताराम जी सेकसरिया तथा भगीरथ भाई की कृपा से शान्ति-निकेतन मे हिन्दी भवन बन गया। उस विशाल भवन मे प्राण प्रतिष्ठा द्विवेदी जी को ही करनी पडी यद्यपि उसकी नीव दीनबन्धु एण्ड्रूज ने रखी थी और उसका उद्घाटन प० जवाहरलाल जी द्वारा हुआ था।

इस प्रकार हम दोनो की हँसी-हँसी मे वह भवन स्थापित हो गया। कभी-कभी द्विवेदी जी गहरा मज़ाक भी कर देते थे। हम दोनो पटना की यात्रा से लौटे ही थे और बनारस स्टेशन पर साथ-साथ चले जा रहे थे कि मुझे ऐसा लगा कि भीड मे से किसी ने मेरी जेब को छुआ है। जेब मे कुल जमा तीन रुपये थे, इसलिए विशेष चिन्ता की बात तो थी नही। मैंने इधर-उधर देखा तो द्विवेदी जी ही निकट थे। मैंने कहा, "क्यो जनाब, यह जेब कटी का व्यापार भी शुरू कर दिया है?"

द्विवेदी जी ने अट्टहास के साथ कहा, "आज-कल इसके बिना काम नही चल सकता।" तब मैंने जेब टटोली। उसमे तीन रुपये की बजाय 33 रुपये निकले। दस-दस के तीन नोट द्विवेदी जी ने उसमे डाल दिये थे। मैंने द्विवेदी जी से कहा, "यह आपने क्या किया?" वह बोले, "कुछ भी तो नही किया। मेरे पास ज़रूरत से ज्यादा थे और आपके पास ज़रूरत से कम, सो घर के घर मे ट्रान्सफर कर दिये हैं।" मैं उनकी सहृदयता का कायल हो गया और तीस रुपये मैंने सहर्ष अपने पास रख लिये। पर इस मज़ाक का पूर्वार्द्ध और भी मनोरजक सिद्ध हुआ।

मैं द्विवेदी जी के साथ ही बनारस मे ठहरा हुआ था। जब दूसरे दिन रीवा के लिए रवाना होने लगा, तो देखा कि मेरा बिस्तर बधा बँधाया तैयार है। मैंने द्विवेदी जी से कहा, "यह काम तो मै खुद ही कर लेता।" उन्होने कहा, "आपके कष्ट को बचाने के लिए मैंने बिस्तर बाँध लिया तो क्या हुआ।" खुद बिस्तर को उठाकर उन्होने ताँगे पर भी रख दिया। उस बिस्तर को मैंने रीवा मे खोला तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसमे नये निकोर कपडे निकले। दो-दो कमीजें, दो दो पाजामे, और दो-दो तहमद या धोती और निकल पडी। सब मेरे नाप के थे और वैसी ही खादी के भी। यह सब द्विवेदी जी की करामात थी। मैंने द्विवेदी जी को लिखा कि ठग नोटो को दुगना किया करते हैं, पर आपने तो नोट ग्यारह गुने कर दिये और कपडे तिगुने। द्विवेदी जी ने एक पत्र मे लिखा था *"आपको ठगने का यही तरीका मुझे सूझ* पडा।" जब उत्तर प्रदेश सरकार ने मुझे पद्रह हज़ार का पुरस्कार भेट किया, तब मै उसकी खबर पर यकीन भी नही कर सका। बाद मे पता लगा कि उसके पीछे द्विवेदी जी का हाथ था। वह मेरे सग्रहालय के लिए भी विशेष चिन्तित थे और लखनऊ के हिन्दी-सस्थान द्वारा उसे सुरक्षित करा देना चाहते थे।

कृतज्ञता उनका सबसे बडा गुण था। जब लखनऊ मे उन्हे डी० लिट्० की उपाधि मिली तो उन्होने कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ तथा आचार्य क्षितिमोहन सेन के साथ मुझे भी याद कर लिया था।

जब आगरा विश्वविद्यालय ने मुझे डी० लिट् प्रदान की तो मैंने लिखा था

"बडे-बडेन की अक्ल अब चरन लगी है घास
फोकट मे डी० लिट्० बने श्री बनारसी दास।"

उसके उत्तर मे द्विवेदी जी ने लिखा था

"बडे-बडेन को अक्ल अब आयी अस विश्वास
डी० लिट्० गुरु डी० लिट्० बने श्री बनारसीदास।"

एक बार मैंने द्विवेदी जी को लिख भेजा "इलाहाबाद से आगे के निवासी शुद्ध हिन्दी लिख ही नही पाते। यह बनारस वालो की शक्ति के बाहर है।"

इसका उन्होने जवाब दिया "आज भले ही कोई बनारस की उपेक्षा कर ले, पर अस्सी वर्ष पहले जब पश्चिमी जिलो के माता-पिताओ को बच्चे के लिए नाम की तलाश होती थी तो वह बनारस की ही शरण लेते थे।" मैं निरुत्तर हो गया।

अपने पत्रो मे द्विवेदी जी लिखा करते थे, "आप वर्षों से अराजकतावाद का प्रचार करते रहे हैं, सो वह कम से कम फीरोजाबाद मे तो कायम हो ही गया। आपके नगर मे बन्दरो, सूअरो तथा कुत्तो को पूर्ण स्वराज्य मिल चुका है—अराजकतावाद की स्थापना हो चुकी है।"

फीरोजाबाद पधारने के पश्चात् जब वह भोजन करने के बाद भाई ठाकुर प्रसाद सिंह के साथ मोटर मे बैठने के लिए जाने लगे तो मैंने उनसे कहा "द्विवेदी जी, हमारी छोटी पोती रेणु ने बी० ए० मे सस्कृत ली है।" वह बोले, "तब तो इस घर मे विद्या बराबर बनी रहेगी।"

मेरे लिए यही उनके अन्तिम शब्द थे। यही उनका अन्तिम आशीर्वाद था।

द्विवेदी जी चले गये—आखिर हम सबको जाना ही है—पर अपनी अद्वितीय साहित्यिक कृतियो के कारण वह अमर रहेगे। जितने बढिया वह साहित्यिक थे उससे कही आगे बढकर वह सहृदय मनुष्य थे।

21

ओरछेश महाराज वीरसिंह जूदेव द्वितीय

आज के युग मे किसी राजा-महाराजा को श्रद्धापूर्वक स्मरण करना कुछ अजीब-सी बात लगेगी क्योकि लोग सामन्त युग के उन अवशिष्ट खँडहरो को भूल चुके हैं। यदि कभी कोई उन्हें याद भी करता है तो उनके अनाचारो तथा अत्याचारो के लिए। फिर भी बुन्देलखण्ड के निवासी महाराज वीरसिंह जूदेव को आज भी कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कर लेते हैं। क्योकि वह अपने जनपद, बुन्देलखण्ड के अनन्य भक्त थे। यद्यपि सामतीय व्यवस्था के अनेक दुर्गुण उनमे विद्यमान थे पर उन्हे छिपाने का प्रयत्न उन्होने कभी नही किया। फिर भी उनमे अनेक गुण थे, जो हम सबके लिए अनुकरणीय हैं।

महाराज वीरसिह जूदेव कीर्ति लोलुप नही थे। वह विज्ञापन से दूर भागते थे। जब मैंने 'मधुकर' निकाला था तो उन्होने मुझसे कहा था, "चौबे जी, अगर आपने 'मधुकर' मे एक भी शब्द मेरी प्रशसा मे कहा तो समझ लीजिए मैं ललितपुर से आपका टिकट कटा दूंगा।" मैने उनके उस आदेश का अक्षरश पालन किया। जब मैं तत्कालीन ग्वालियर राज्य के मत्री श्री तख्तमल से मिला और उन्हें 'मधुकर' के अक भेंट किये तो उन्होने पन्ने पलटकर उसे बडे ध्यानपूर्वक देखा और कहा, "महाराज आपको बहुत स्वाधीनता देते हैं।"

मुझे कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) मे साढ़े चौदह वर्ष रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ पर इस लम्बे अर्से मे महाराज साहब ने मेरे सम्पादन कार्य मे किसी प्रकार का दखल नही दिया। सन् 42 के आन्दोलन मे कई क्रान्तिकारियो को मैंने कुण्डेश्वर मे शरण दी थी और उनमे एक प्रोफेसर रजन तो कई महीने वहाँ रहे भी थे। वह एम० ए० की परीक्षा देने गये और पकड लिए गये। उन पर मुकदमा चला और उन्हे जेल भी हुई। जब मैं स्वय छपरा जिले की यात्रा पर गया था तब बिहार सरकार ने मेरे नाम वारण्ट निकाल दिया था, वैसा ही वारण्ट उत्तर प्रदेश सरकार ने भी निकाल दिया था। मैं जब टीकमगढ़ पहुंचा, मैंने महाराज से कहा, "मुझे भी जेलखाने की हवा खाने दीजियेगा।" पर महाराज ने मुझे ब्रिटिश सरकार को नही सौंपा। पहले यह नियम था कि जब तक कोई रियासत एक्स्ट्रेडीशन (राज्य से निष्कासन) न कर दे तब तक ब्रिटिश सरकार उस पर मुकदमा नही चला सकती थी। इसलिए मुझ पर भी कोई अभियोग न चल सका। एक व्यक्ति तार काटने के बाद कुण्डेश्वर पहुँचे थे और एक पत्रकार भी वहाँ कुछ दिन छिपकर रहे थे। जब ब्रिटिश सरकार की खुफिया पुलिस ने महाशय के बारे मे जाँच-पडताल शुरू की, तब उनको मैंने 51 रुपये देकर राज्य से बाहर भेज दिया। जब

महाराज को यह बात मालूम हुई तो उन्होने मुझसे कहा, "चौबे जी, तुम्हारा स्थान तो एक केन्द्रीय स्थल बन चुका है। इसलिए यदि किसी क्रान्तिकारी को छिपाना चाहो तो उसे जतारा के जगल मे भेज दिया करो।"

ठाकुर सज्जन सिह उन दिनो महाराज के एक मत्री थे। वह भी मेरे शिष्य रह चुके थे। महाराज के साथ उन्होने मुझे समझाकर कहा, "चौबे जी! इस सकट काल मे आप खूब सोच-समझकर किसी को शरण दीजिये। यदि ब्रिटिश सरकार ने आप पर हाथ डाला तो महाराज आपको नही सौपेगे, उन्हे राज्य भले ही छोडना पडे।" महाराज दरअसल बडे दबंग थे और बातचीत मे बडे कुशल। ब्रिटिश अधिकारियो से उनके सम्बन्ध बहुत अच्छे थे। उन्होने पोलीटिकल एजेण्ट से कह रखा था कि "आप हमारे राज्य की ओर से निश्चित रहिये। हम अपने यहाँ आपके विरुद्ध कोई आन्दोलन न होने देगे।"

बुन्देलखण्ड-भर मे महाराज ओरछा ही सर्वप्रथम राजा थे जिन्होने अपनी जनता को उत्तरदायी शासन प्रदान किया था। राजा-महाराजाओ की मीटिंग मे जब एक महाराज ने ब्रिटिश सरकार से हुई अपनी सन्धियो की बात की तो महाराज वीरसिंह जूदेव ने कहा, "इन सन्धियो के पुलन्दे को लपेटकर अपने गुह्य स्थान मे रख लीजिये।" अनेक राजा-महाराजा वीरसिंह जूदेव के विरोधी थे और उनका मत था कि ओरछेश ने ही राज्यो को विलीन कराया है। वह समय की गति को पहिचानते ही नही थे बल्कि उससे पूर्ण परिचित भी थे।

महाराज एक बार जब कलकत्ते गये तो 'विशाल भारत' ऑफिस मे भी पधारे। 'विशाल भारत' प्रवासी प्रेस से ही निकलता था जिसकी तलाशी 30-32 बार हो चुकी थी और वहाँ जाना खतरे से खाली न था। मैंने महाराज से कहा, "आप जब गद्दी पर बैठे तो मैंने 'विशाल भारत' मे कोई नोट भी नही लिखा।"



ओरछा नरेश महाराजा वीरसिंह जूदेव

बात यह थी कि मैंने 50-60 राजा-महाराजाओ और जागीरदारो के लडके पढाये थे। यदि उन सबके गद्दी पर बैठने पर नोट लिखता तो बहुत-सा स्थान उन्ही मे घिर जाता। महाराज ने कहा, "यदि आपने मेरे बारे मे नोट लिखा होता तो आज मैं 'विशाल भारत' कार्यालय मे नही आता।" एक बार कुछ वर्ष बाद वह फिर कलकत्ते पधारे थे। तब उन्होने कहा, "चौबे जी, आप कलकत्ता छोड दीजिए। आपके भाई और बहनोई का देहान्त यहाँ हो चुका है और स्वय आपके जीवन के लिए भी खतरा है।" मैंने उनसे कहा, "क्या टीकमगढ मे पपीते होते है?" महाराज ने हँसकर कहा, "चाहे जितने खाइये। चलिये तो सही।" बात यह थी कि मैं उन दिनो एक रुपये का

एक पपीता खरीद कर रोजाना खाया करता था। 10 अक्तूबर, सन् 1937 मे मैंने 'विशाल भारत' का काम छोड दिया और 13 अक्तूबर को टीकमगढ़ पहुँच गया। साढ़े चौदह वर्षों मे जो भी थोडी-बहुत सेवा उस जनपद की बन पडी, मैंने की।

टीकमगढ-निवासी महाराजा साहब को एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेट करना चाहते थे। उनका यह विचार मैंने जब महाराजा साहब के सामने रखा तो उन्होने स्पष्ट मना कर दिया और कहा, "मेरे द्वारा जो थोडी-सी सेवा बुन्देलखण्ड या हिन्दी की बन पडी है उसका विज्ञापन मैं नही कराना चाहता। अभिनन्दन ग्रन्थ पर व्यर्थ ही पैसा क्यो खर्च किया जाय?" मैंने बडी मुश्किल से उनको हस्तलिखित ग्रन्थ भेट लेने के लिए राजी कर लिया। मेरा तर्क था कि उस ग्रथ को तो दो-चार आदमी ही पढ़ेंगे, इसलिए आपके नाम का कोई विज्ञापन होगा ही नही। महाराज को एक के बाद एक, दो हस्तलिखित ग्रन्थ भेट किये गये थे। एक उनके व्यक्तित्व के बारे मे और दूसरा बुन्देलखण्ड के बारे मे। वे दोनो अभी सुरक्षित है। उनकी सहायता से महाराज के स्वर्गवास के बाद उनकी स्मृति मे एक ग्रन्थ निकाला गया। उसकी थोडी-सी (600) प्रतियाँ ही छपायी गयी और मित्रो, परिचितो तथा भक्तो को भेट कर दी गयी। बडे हर्ष की बात है कि उनके पौत्र महाराज मधुकर शाह जूदेव मे अपने पूज्य पितामह के अनेक गुण विद्यमान है। वह अपने सीमित साधनो के बावजूद जनता की कुछ सेवा भी करना चाहते है।

अन्त मे मैं यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि महाराज के ऋण से मै जीवन-पर्यन्त उऋण नही हो सकता। मकान के खरीदने मे, बच्चों की शिक्षा, तथा अन्य अवसरो पर उनसे निरन्तर आर्थिक सहायता मिलती रही थी। राज्य विलीन होने के पहले ही महाराज ने मेरी पेशन का प्रबन्ध कर दिया था और 250 रु० मासिक की पेशन मुझे अब भी मिल रही है।

22

स्वर्गीय भाई सीताराम जी सेकसरिया

एक दिन भाई सीताराम जी सेकसरिया ने मुझसे कहा, "हम लोगो ने एक अस्पताल खोला है, क्या आप मेरे साथ चलकर उसे देखना पसन्द करेगे?" मैंने उत्तर दिया, "अवश्यमेव आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" दूसरे ही दिन सेकसरिया जी मुझे अपने साथ उस नवीन अस्पताल को दिखाने ले गये। उसके अनेक कमरे उन्होने मुझे दिखलाए। एक कमरे मे किसी महिला को खून चढाया जा रहा था। उसे देखने के बाद जब हम आगे बढे तो भाई सेक्सरिया जी ने कहा, "यह एक बगाली स्त्री है जिसे उसके पति ने छोड दिया है। इस अस्पताल मे जिनका इलाज होता है उनमे 80 प्रतिशत बगाली ही है।" यह बतलाने की आवश्यकता नही कि उस अस्पताल का सम्पूर्ण व्ययभार मारवाडी लोग ही वहन कर रहे थे। तत्पश्चात् सेकसरिया जी ने कहा, "इस अस्पताल की स्थापना की कथा भी विचित्र है। इसकी प्रेरणा मुझे आपकी पत्नी की अकाल मृत्यु से मिली थी। उनका स्वर्गवास प्रसवास्था मे 1930 मे हुआ था। और मेरी पत्नी को भी प्रसूति-अवस्था मे घोर सकट का सामना करना पडा था। इन दोनो दुर्घटनाओ से प्रभावित होकर ही मैंने यह अस्पताल कायम कराया है।" भाई सेकसरिया जी की सहृदयता के इस उदाहरण को सुनकर मैं चकित रह गया।

उनका प्रथम साक्षात्कार कब हुआ, यह मै भूल चुका हूँ। मै 31 अक्तूबर, 1927 को 'विशाल भारत' का सम्पादन करने के लिए कलकत्ते पहुँचा था। उसका प्रथम अक जनवरी, सन् 1928 को निकला था। मेरा अनुमान है कि सन् 28 के प्रारम्भिक महीनो मे ही मेरा-उनका प्रारम्भिक परिचय हुआ था। फिर तो वह हमारे परम सहायक ही बन गये थे। एक बार रामानन्द बाबू को प्रवासी प्रेस पर आर्थिक सकट पडने पर सेकसरियाजी ने पाच हजार रुपये उधार दे दिये थे जिनका भुगतान काफी दर से हो सका था।

यह बतलाने की आवश्कता नही कि शान्ति-निकेतन मे हिन्दी भवन की स्थापना का शुभारम्भ भाई सेकसरिया जी के द्वारा ही हुआ था जिसका विवरण अन्यत्र दिया जा चुका है।

भाई सेकसरिया जी उदार-दानी तो थे ही साथ-साथ वह एक भावुक लेखक भी थे। पत्र लेखन की कला मे तो वह अत्यन्त कुशल थे। उनके पास पैसा तो अधिक था नही पर पैसे वालो पर उनका प्रभाव अत्यधिक था। स्वय भी बहुत-सा दान किया और दूसरो से भी काफ़ी अधिक दान कराया। डायरी लेखको मे भी वह शिरोमणि थे। चूँकि उनका सम्बध महात्मा गाधी जी, जमनालाल जी बजाज, मौलाना आज़ाद, दीन-

बन्धु ऐण्ड्रूज, गुरुदेव इत्यादि से था इसलिए उनकी डायरियाँ ऐतिहासिक महत्त्व भी रखती हैं । गुरुदेव से अपनी पहली मुलाकात का वृत्तात उन्होने बडी खूबी के साथ अपनी डायरी मे दिया है। सेकसरिया जी रामानन्द बाबू के प्रशंसको मे थे। जब मैंने अग्रेजी मे रामानन्द बाबू पर एक स्मृति-ग्रन्थ निकालने का प्रस्ताव उनके सम्मुख रखा तो उन्होने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया और तदर्थ उन्होने 3600 रुपये व्यय कर दिये । वह ग्रन्थ दस रुपये मे प्राप्य है। (पता—आगरा विश्वविद्यालय, चतुर्वेदी ब्रज केन्द्र, आगरा ।)

भाई सेक्सरिया जी उम्र मे मुझसे आठ महीने बडे थे । उनकी श्री भागीरथ कनोडिया से घनिष्ठ मैत्री भी थी । दोनो की जुगल जोडी केवल कलकत्ते के लिए ही नही वरन् सम्पूर्ण बगाल के लिए वरदान थी। वे दोनो साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता से मीलो दूर थे । सार्वजनिक जीवन मे दोनो के ही नाम साथ-साथ आते थे ।



श्री सीताराम सेकसरिया अपने मित्र श्री भागीरथ कानोडिया के साथ स्मृति शेष

क्या ही अच्छा हो कि इन दोनो भाइयो के विस्तृत जीवन-चरित प्रकाशित हो ।

23

स्वर्गीय अमीरचन्द बम्बवाल

23 मार्च, 1914 को मैं दिल्ली छोडकर घर लौट रहा था और कई सुपरिचित व्यक्ति स्टेशन पर पधारे थे। सौ० बहन सत्यवती मलिक तो थी ही और श्रद्धेय बम्बवाल जी भी थे। जब गाडी चलने वाली हुई, बहन जी ने बहुत से फल मुझे भेंट कर दिये। हिन्दी प्रेमी एक महाराष्ट्रीय युवक पाटिल ने मुझसे कहा, "देखिये बम्बवाल जी के नेत्रो मे आँसू झलक आये है!" वह कुछ दूर खडे हुए थे और मैने उनके चेहरे की तरफ देखा। अठहत्तर वर्षीय उन वयोवृद्ध सज्जन की सहृदयता का मैं कायल हो गया। उन्होने केवल एक वाक्य ही कहा, "हमारा तो गुरुद्वारा ही उठ गया।" उनका अभिप्राय नार्थ एवेन्यू के ९९ नम्बर के फ्लैट से था, जहाँ मैं दस वर्ष से रह रहा था और जो क्रान्तिकारियो का एक अड्डा ही बन गया था। बम्बवाल जी ने उसको यह सर्टीफिकेट दिया था।

बम्बवाल जी उम्र मे मुझसे छ वर्ष बडे थे—मेरे अग्रज थे—और वह मुझे अपने छोटे भाई के समान ही समझते थे।

वह अक्सर हमारे निवास स्थान पर पधारते थे, टमाटर के साथ--और उन्हे खाकर पानी पी लेते थे। मेरे बार-बार कहने पर भी उन्होने कभी मेरे यहाँ भोजन नही किया। हाँ, कभी-कभी मेरे टेलीफोन का प्रयोग वह अवश्य कर लिया करते थे। उनके लिए सबसे बडा आकर्षण यह था कि वहाँ कोई न कोई क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ता उन्हे मिल जाता था। डॉक्टर खानखोजे के साथ उनकी मुलाकात हमारे फ्लैट पर ही हुई थी। एक बार बम्बवाल जी ने मुझे लज्जित कर दिया। वह 'स्वराज्य' (उर्दू) पत्र के सस्थापक तथा सपादक श्री शान्ति नारायण भटनागर को मेरे यहाँ ले आये।

भटनागर जी उत्तर प्रदेश मे उग्र राजनैतिक विचारधारा के प्रवर्तक थे, यद्यपि उनसे भी पूर्व स्वर्गीय बालकृष्ण भट्ट जी इस पथ पर अग्रसर हो चुके थे।

'स्वराज्य' पत्र के आठ एडीटर एक के बाद एक जेल चले गये थे और उनमे कई को तो अण्डमान (काले पानी) जाना पडा था। स्वय बम्बवाल जी उस पत्र के नवे एडीटर थे, जिन पर मुकदमा चल रहा था। श्रद्धेय टण्डन जी ने उन सब अभियोगो मे वकालत की थी। बम्बवाल जी ने मुझसे कहा, "टण्डन जी ने मेरी जेब मे बीस रुपये रखकर कहा, 'आप भाग जाइये,' मैने उनकी आज्ञा का पालन किया और काले पानी की सजा से बाल-बाल बच गया।" इस मुकदमे मे बचत की एक गुजाइश निकल आयी थी। जिस अक मे बम्बवाल जी का लेख छपा था उसके

वितरण होने से पहले ही उसकी सब प्रतियाँ सरकार ने ऑफिस पर धावा बोल कर जब्त कर ली थी। टण्डन जी का तर्क यही था कि जब प्रतियाँ जनता तक पहुँचने ही नही पायी तो सरकार के खिलाफ असन्तोष या विद्रोह फैलाने का सवाल ही कैसे उठ सकता है ! जब भटनागर जी मेरे निवास स्थान पर पधारे तो मैने बम्बवाल जी से कहा, "आपने मुझ पर जुल्म किया है ! मेरा फर्ज था कि मै इनके स्थान की तीर्थ यात्रा करता। इसके बजाय आपने इन्ही को तकलीफ दी।" बम्बवाल जी मुस्कराकर रह गये। दो-तीन दिन बाद मै श्रद्धेय भटनागर जी के स्थान पर गया था। अपने घर पर मैने उनके तथा बम्बवाल जी के कई चित्र खीचे थे जो उन्हे पसन्द भी आये थे। बम्बवाल जी ही भटनागर जी को प० जवाहरलाल नेहरू जी से भी मिलाने ले गये थे।

बम्बवाल जी का सम्पूर्ण जीवन पत्रकारिता के क्षेत्र मे ही व्यतीत हुआ था। सन् 1905 मे उन्होने अपना पत्र 'फ्रन्टियर एडवोकेट' निकाला था और सन् 1972 तक (अपने जीवन के अन्तिम दिनो तक) वह अपने पत्रो का सम्पादन करते रहे। भारतवर्ष मे शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति निकले जो पूरे 67 वर्ष तक सम्पादक रहा हो।

न जाने कितनी बार वह जेल गये थे। यह एक आकस्मिक घटना थी। सन् 1907 की सूरत काग्रेस मे वह जेल से छूटकर ही शामिल हुए थे और फिर सन् 1921 की नागपुर काग्रेस मे भी वह जेल से मुक्त होने पर ही सम्मिलित हुए। तीसरी बार यही घटना लखनऊ काग्रेस के अवसर पर घटी। सूरत काग्रेस मे जो जूता तिलक महाराज पर फेका गया था वह अमीरचन्द बम्बवाल के माथे पर लगा। काफी खून निकला था।

सरहदी प्रान्त के वह जाने-माने कार्यकर्त्ता थे। भारत रक्षा कानून का सर्वप्रथम वार उन्ही के पत्र पर सन् 1910 मे हुआ था। सरहदी गाधी खान अब्दुल



स्वर्गीय अमीरचन्द बम्बवाल

गफ्फारखा को काग्रेस का चवन्नी वाला मेम्बर उन्होने बनाया था। दरअसल वह सरहदी प्रान्त के चलते-फिरते इतिहास थे, और यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि वह सब इतिहास उनके स्वर्गवास के साथ विलीन हो गया। बम्बवाल जी ने बम बनाना भी सीखा था, पर बम और पिस्तौल का सहारा उन्होने 1919 तक ही लिया। मैंने कई बार उनकी सेवा मे निवेदन किया था कि वह अपने सस्मरण लिखवा दे पर ऐसा वह नही कर सके। वह पश्तो, उर्दू तथा अग्रेजी तीनो के ही लेखक थे और हिन्दी भी बहुत साफ लिख लेते थे। एक बार महात्मा गाधी जी ने उनसे कहा था "आपकी हिन्दी को मै राष्ट्रभाषा मानता हूं।" यह उस वक्त की बात है जब बम्बवाल जी ने बडे सकोच के साथ अपना हिन्दी मे लिखा हुआ बयान गाधी जी को भेंट किया।

बम्बवाल जी ने एक सन्दूक भरा हुआ मसाला फ्रण्टियर के राजनैतिक जीवन के बारे मे इकट्ठा कर

लिया था, पर वह सन्दूक चोरी चला गया। इसके बाद दूसरी दुर्घटना यह घटी कि उनके पत्रो की पुरानी फाइलें उनकी गैर हाजिरी मे किसी नौकर ने रद्दी के भाव बेच डालीं। इन दोनो दुर्घटनाओ से उन्हे हार्दिक दु ख हुआ था।

स्वर्गीय बम्बवाल जी के जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण संस्मरण उनके लेखो मे भरे पडे हैं, पर उनको खोज निकालना कोई आसान काम नही। यदि उनके जामाता श्री याज्ञवल्क दत्त इस श्राद्ध कार्य को अपने हाथ मे ले ले तो वह उसे सफलतापूर्वक कर सकते हैं। उनके 25 जुलाई के पत्र से मुझे कुछ बातें मालूम हुई हैं

"श्री बम्बवाल जी के पूज्य पिता जी का शुभ नाम था मेहता मेहरचन्द बम्बवाल। जब वह कुल जमा ढाई वर्ष के थे, उनकी माताजी का स्वर्गवास हो गया और जब 6 वर्ष के हुए, उनके पूज्य पिता जी चल बसे। अपने माता-पिता की वह एकमात्र बची हुई सन्तान थे।

"बम्बवाल जी का विवाह सन् 1907 मे हुआ था, जिससे उनके तीन लडकियाँ हुई और एक लडका। लडके का नाम था पृथ्वीचन्द्र पर वह साढे तीन वर्ष की उम्र मे ही एक आकस्मिक दुर्घटना मे जाता रहा। उस दुर्घटना का वृत्तान्त अपनी अन्तिम मुलाकात मे स्वय बम्बवाल जी ने मुझे बतलाया था।

'पेशावर तथा रावलपिंडी म अनक बार उनके घरो की तलाशी हुई थी। सरहदी प्रान्त के सभी आन्दोलनो मे उन्होने भाग लिया था। वहाँ के चीफ कमिश्नर साहब न जब महात्मा गाधी जी को गालियाँ दी थी तो बम्बवाल जी ने ही उनके खिलाफ जोरदार आदोलन किया था, जिसका नतीजा यह हुआ कि बम्बवाल जी नज़रबन्द कर दिये गय। उनकी युवावस्था का एक किस्सा बडा रोमाचकारी है। वह उस समय सिटी काग्रेस के सेक्रेटरी थे। एक दिन जब वह अपने ऑफिस के नीचे बाज़ार मे खडे हुए थे और ऑफिस पर काग्रेस का झंडा लहरा रहा था, एक फौजी अफसर उधर से आ निकला और उसने बम्बवाल जी को हुक्म दिया, कि वह झडे को उतार दे। उन्होने साफ मना कर दिया जिस पर उस अफसर ने उन पर घूँसो की बौछार करके गिरा दिया और बहुत ठोकरें भी लगाई पर बम्बवाल जी ने उसकी आज्ञा नही मानी। अकस्मात् उसी वक्त सिटी मजिस्ट्रेट केप्टिन 'उधर से आ निकले और उन्होने फौज के ऑफिसर का डाँट बतलाकर बम्बवाल जी को बचा लिया।"

बम्बवाल जी के चले जाने से स्वाधीनता-सग्राम के इतिहास की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओ का आँखो देखा विवरण भी उन्ही के साथ विलीन हो गया। अब भी उनके द्वारा सगृहीत बचे-बचाये मसाले की रक्षा हो सकती है, यदि नेशनल आर्काइव्स मे उसे सुरक्षित करा दिया जाय। उचित मूल्य देकर स्व० बम्बवाल जी के घर वालो से उसे लिया जा सकता है। समय-समय पर उन्होने मुझे जो पत्र लिखे थे उनसे भी कुछ बहुमूल्य सामग्री मिल सकती है। उनका एक लम्बा खत मैंने 'धर्मयुग' मे छा दिया था।

जो क्रान्तिकारी साहित्य सरहदी प्रान्त के रास्ते भारत मे आता था, उसे आगे बढाकर भारत-भर मे प्रचार करने का काम बम्बवाल जी के जिम्मे था। एक बार कमाण्डर-इन-चीफ की मोटर की दुर्घटना कराके उनकी हत्या का कार्य उन्हे सौपा गया था। पर कमाण्डर इन-चीफ की जगह उनके सेक्रेटरी ही पधारे। बम्बवाल जी न ड्राइवर का काम किया पर उनकी हत्या नही की। इस पर क्रान्तिकारी पार्टी ने उनसे जवाब-तलब किया था। उन्होने सेक्रेटरी साहब से अच्छी ड्राइवरी का सर्टीफिकेट ले लिया था। उसका फोटो मेरे पास सुरक्षित था।

बम्बवाल जी ने अमर शहीद सेठ कासिम इस्माइल के बारे मे मुझे एक पत्र भेजा था। वह सूरत के रहने

वाले थे और रंगून तथा सिंगापुर मे उनका कारोबार और कोठियाँ थी। शहीद रामचन्द्र के सम्पर्क मे आने के बाद उनकी सहानुभूति क्रान्तिकारियो के साथ बढ़ गयी और उन्होंने क्रान्तिकारियो के कार्य मे भरपूर सहयोग दिया। उन्होने क्रान्तिकारियो के पत्र 'गदर' मे छपे परचे सिंगापुर की फौज मे बाँटे और वह फ़ौज बागी हो गयी। सेठ जी को फाँसी की सजा दे दी गयी। आज हम लोग सेठ कासिम इस्माइल का नाम भी नही जानते।

बम्बवाल जी को क्रान्तिकारियो की जितनी चिन्ता थी उतनी उनके साथी-संगियो मे शायद ही किसी को हो। सरकार द्वारा उनको पेशन दिलाने के लिए पार्लियामेण्ट म जो प्रस्ताव लाया गया था, उसके लिए उन्होने बहुत कोशिश की थी। स्वर्गीय लद्धाराम जी के सुपुत्र तिलकराज को पेशन दिलाने के लिए वह बहुत चिन्तित थे और उन्होंने मुझे लिखा था कि अगर यू० पी० सरकार उन्हे 75 रुपये महीने की पेंशन देगी तो वह उसे तिलकराज को दे देगे। एक बार उन्हे शायद चार सौ रुपय केन्द्रीय सरकार से मिले थे, जो उन्होन दिल्ली मे रहकर नेशनल आर्काइव्स मे क्रान्तिकारी आन्दोलन विषयक कागज-पत्र तलाश करने मे खर्च कर दिये।

यह बडे दुर्भाग्य की बात है कि सरकार उन्हे कोई पेशन नही दे सकी। उत्तर प्रदेशीय सरकार न उन्हे पचहत्तर रुपये महीने पेशन देना तय किया था, पर उसके लिए वह उँगलियो तथा अगूठे की निशानी चाहती थी, जिसे उन्होने घोर अपमानजनक समझा था।

अपने 2 अगस्त 1971 के पत्र मे देहरादून से बम्बवाल जी ने मुझे लिखा था

"अगर मैं 1948 मे मौलाना आजाद की पेशकश 200 रु० की पेशन से इकार न कर देता तो इस वक्त तक मुझे 50 हजार रुपयो से कुछ अधिक मिल गये होते। मुझे इस बात की कल्पना भी नही हो



अमीरचन्द बम्बवाल तथा शान्ति नारायण भटनागर
पण्डित जवाहरलाल नेहरू के साथ

सकती थी कि आजादी मिल जाने पर भी आई० सी० एस० मे हमारे दुश्मन मौजूद रहेगे और हमारे शासक उनके हाथो मे कठपुतली बन जावेंगे। मै आठ अगस्त को अपनी उम्र के 85 वर्ष पूरे कर लूंगा। इसलिए यदि कुछ पेशन दे भी दी गयी तो मै उसे कब ले सकूंगा! भाई लद्धाराम के बेटे की परेशानियो से मैं बहुत परेशान रहता हूँ। लद्धाराम जी ने देश की आजादी के लिए कुर्बानियाँ न देकर धन-दौलत कमाने के साथ प्यार किया होता तो उनकी औलाद भी आज बडी तालीम-याफ्ता होती! यह एक इत्तिफाक की बात है कि लाला हनुमन्त सहाय जी फाँसी से बच गये। पुलिस की नालायकी और असावधानी से

मैं भी और मेरा एक साथी भी किस्मत से बच गये !"

अगर अगस्त 1971 मे उन्हें 75 रुपये की पेंशन मिल भी गई होती तो कुल जमा 6 महीने पेंशन पा सकते क्योंकि 10 फरवरी 1972 को उनका स्वर्गवास हो गया।

उन्हें इसी बात का हार्दिक दु ख था कि सरदार पटेल ने नियमानुसार उनके पत्र को जो सरकारी विज्ञापन दिलवाने की नीति निश्चित की थी, उसे आगे चलकर भारत सरकार ने त्याग दिया। इससे उनके पत्र की रीढ की हड्डी ही टूट गई। विभाजन-पूर्व जिस कोटि के विज्ञापन उनके पत्र को मिलते थे उस कोटि के यहाँ आनेपर भी मिलेंगे, यह नियम था।

श्रद्धेय बम्बवाल जी के अन्तिम दर्शन मुझे नवम्बर1971 मे नयी दिल्ली मे हुए। वह दो बार मेरे निवास-स्थान पर, रामकृष्णपुरम मे पधारे थे। 86 वर्ष की उम्र मे भी वह खचाखच भरी हुई बस मे बैठकर मरे पास आते थे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वह बस मे बैठने के खतरे मे न पडे तो उन्होने बडी विनम्रता से कहा, "दिल्ली मे एक बार मैने टैक्सी की तो चौदह रुपये खर्च हो गये ! इतना पैसा मेरे पास कहाँ रखा है ? अपने तथा अपनी पत्नी के इलाज के लिए ही पैसा नही जुटा पाता ! बस मे बैठना कितना खतरनाक है यह मै जानता हूँ। एक बार तो धक्कम-धक्का मे मै गिर भी पडा था और हाथ मे काफी चोट भी आ गयी थी !" मै चुप रह गया।

बम्बवाल जी अपने निजी मामलो के बारे मे कभी बातचीत नही करते थे। उन्होने श्री याज्ञवल्क दत्त का भी परिचय कभी नही दिया। उस दिन अकस्मात् मैं उनकी सन्तानो के बारे मे पूछ बैठा, तब उन्होने मुझे एक हृदय वेधक घटना सुनायी। उनका एक लडका था जो साढे तीन वर्ष की उम्र मे अकस्मात् चल बसा ! बात यह हुई कि उसने कही से चने खरीदकर अपना मुँह भर लिया। उसकी बडी बहन ने नाराज होकर उसके गाल पर एक थप्पड जमा दिया, जिससे उसी वक्त उसकी मौत हो गयी ! मेरी लडकी अत्यन्त दु खित हुई और आगे चलकर जब उसका लडका साढे तीन वर्ष का हुआ तो उसने मेरी गोद मे उसे दे दिया !"

यह घटना बतलाते हुए बम्बवाल जी के नेत्र सजल हो गये थे। उनकी तीन पुत्रियाँ ही उनकी उत्तराधिकारिणी है।

बम्बवाल जी की याद मुझे भुलाये नही भूलती। खादी का कुर्ता तथा पाजामा पहने और सफेद चद्दर लपेटे तथा खादी का झोला हाथ मे लिये, वह अक्सर 99 नार्थ एवेन्यू पर दर्शन देते रहते थे और मेरे हर जन्म-दिवस पर मुझे आशीर्वाद भेजते थे। सन् 1905 मे उन्होने 'फ्रण्टियर एडवोकेट' उर्दू तथा पश्तो मे निकाला था और फरवरी 1972 तक वह फ्रण्टियर मेल का सम्पादन करते रहे। वह जन्मजात पत्रकार थे। यह बडे दुर्भाग्य की बात हुई कि पुराने क्रान्तिकारियो मे एक भी ऐसा न निकला, जो अपने छुटभैयो का सगठन करता, उनकी खोज खबर रखता, और उनके दु ख-दर्द मे सहायक होता। उर्दू प्रताप के श्री चमनलाल आजाद तथा श्री बम्बवाल जी ही इस बारे मे अपवाद स्वरूप रहे। दूसरो की कीर्ति-रक्षा के लिए उत्सुक स्वतन्त्रता-सग्राम के उस महान् सेनानी की स्मृति-रक्षा के लिए कुछ प्रयत्न हो सकेगा क्या ?

24

श्री सुन्दरलाल बहुगुणा

पार्वत्य प्रदेशो मे जो लोग काम कर रहे है, उनमे श्री सुन्दरलाल बहुगुणा का नाम उल्लेखनीय है। वह काश्मीर से लेकर कोहिम तक हिमालय प्रदेश की पैदल यात्रा कर चुके हैं और पहाडो पर जो चिपको आँदोलन प्रारम्भ हुआ था, उसक प्रवर्त्तका म है। पर्यावरण आँदोलन के कार्य कर्त्ता के नाते उन्हे अन्तर्राष्ट्रीय-कीर्ति प्राप्त हो चुकी है। स्व० मीरा बहिन तथा सरला बहिन की सहायता उन्होने की थी। श्री सुन्दरलाल जी उन अल्प-सख्यक व्यक्तियो मे है जो बडी ईमानदारी और लगन के साथ महात्मा जी के रचनात्मक कार्यों को आगे बढा रहे है। वैसे वह गढवाली है पर सम्पूर्ण हिमालय प्रदेश को अपना सेवा-क्षेत्र मानते है। मैं अपने लिए परम सौभाग्य की बात मानता हूँ कि उनके सम्पर्क मे आ सका। वह बडे मिलनसार व्यक्ति हैं और मुझसे मिलने तीन बार फीरोजाबाद पधार चुके हैं।



25

क्रान्तिकारियों के सम्पर्क मे

शहीदो और क्रान्तिकारियो के विषय मे मेरी रुचि 64-65 वर्ष मे रही है और मैंने अपनी पुस्तक 'प्रवासी भारतवासी' दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह सग्राम मे शहीद कुमारी वलिअम्मा को समर्पित की थी। वह ग्रन्थ 728 पृष्ठ का था और उसकी भूमिका दीनबन्धु ऐण्ड्रूज, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी और पण्डित तोताराम सनाढ्य जी ने लिखी थी। यह बात सन् 1918 की है। 'शहीदो का श्राद्ध' मेरे जीवन का मुख्य विषय कब बना, यह बात मैं ठीक-ठीक नही कह सकता पर अनुमानत इसे भी चालीस वर्ष का समय हो गया होगा।

मैं यह बात अनेक बार लिख चुका हूँ कि स्वाधीनता सग्राम मे सक्रिय रूप से भाग लेने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नही हुआ। एक बार सन् 1921 मे जब मेरे साथी श्री सम्पूर्णानन्द जी जेल गये थे, मेरे मन मे भी सत्याग्रह सग्राम मे शामिल होने की इच्छा उत्पन्न हुई थी, तब मैं सत्याग्रह आश्रम मे था और यो ही चलते-चलाते प्रसगवश मैने अपनी इच्छा पूज्य बापू से प्रकट कर दी थी। उन्होने तुरन्त ही कहा, "स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह" (यानी दूसरे का धर्म पालन करना भयकर है, अपने धर्म-पालन मे मर जाना भी श्रेयस्कर है।) प्रवासी भारतीयो का जो काम तुमने अपने सिर ले लिया है उसी को करते रहो। जेल जाने की मत सोचो।" महात्मा जी ने स्वामी भवानी दयाल जी सन्यासी को भी यही उपदेश दिया था। उन्होने भवानी दयाल जी से कहा था, "जेल जाने वाले तो हजारो ही है पर प्रवासी भारतीयो के काम करने वाले तो बहुत थोडे हैं। उसी अपने कार्य मे लगे रहो।"

यद्यपि सक्रिय रूप मे तो मै विवाद-ग्रस्त राजनीति मे भाग न ले सका पर राजनैतिक कार्यकर्ताओ और क्रान्तिकारियो के प्रति मेरे हृदय मे सदैव आदर की भावना रही है। कई बार तो मैने जान-बूझकर खतरे मे पडकर उन्हे आश्रय दिया था।

प्रोफेसर रजन (जिनका असली नाम शायद रघुनाथ था) अजमेर जेल से भागकर कुण्डेश्वर पहुँचे थे और मेरे पास कई महीने रहे थे। मैने उनके लिए पचास रुपये महीने का प्रबन्ध कर दिया था। वह एम० ए० की परीक्षा देने नागपुर गये पर वहाँ पकड़े गये। उन पर मुकदमा चला और जेल भी हुई। एक अन्य सज्जन तार काटकर शरण लेने पहुँचे थे। वह मऊ आजमगढ के निवासी थे। मैंने उनका नाम भी नही पूछा और बनावटी नाम 'तिवारी' रख दिया। वह कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वह चाँद के गजे थे और मुझे पता लगा कि ब्रिटिश खुफिया पुलिस उनकी तलाश मे है। तब मैंने उन्हे पचास रुपये देकर एक

टेढे-मेढे रास्ते से जबलपुर भिजवा दिया ।

एक साम्यवादी लेखक बरेली से वहाँ पहुँचे थे और कुछ दिन वहाँ रहे भी थे। महाराज श्री वीरसिंह जूदेव को जब मालूम हुआ कि अंग्रेजी खुफिया पुलिस की कुदृष्टि हमारे कुण्डेश्वर आश्रम पर है तो उन्होने मुझसे प्राइवेट तौर पर कहा था "कुण्डेश्वर तो अब काफी प्रसिद्ध हो गया है और वहाँ किसी क्रान्तिकारी को ठहराना खतरे से खाली नही । अगर किसी को शरण देनी ही है तो जतारा के जगल मे भेज दिया कीजिये ।" भाई रामसेवक रावत, जो आजकल झाँसी के 'जागरण' मे कार्य कर रहे हैं, जिनका हाथ बम बनाने मे जाता रहा था, कई महीने कुण्डेश्वर मे मेरे साथ रहे थे और वही से आन्दोलन का सचालन भी करते रहते थे । झाँसी की पुलिस को इस बात की आशका हो गयी थी और उसने ओरछा दरबार को इस बारे म लिखा भी था, पर महाराज ने उन्हे झाँसी जिले के अधिकारियो के सुपुर्द न होने दिया ।

जब मैं 'विशाल भारत' का सम्पादन करता था तैयब शेख नामक एक क्रान्तिकारी को मैंने अपने यहाँ टाइपिस्ट मुकरर कर दिया था । वह एम० एन० राय के खास आदमी थे और जर्मनी मे रह भी चुके थे । वह बम्बई मे साम्यवादी सस्थाओ के सेक्रेटरी थे और यरवदा जेल मे दो वर्ष तक कठोर यातनाएँ भोग चुके थे। बम्बई मे उन्हे पुलिस ने पकड लिया और वह मुकदमा चलाने के लिए उन्हे कलकत्ता ला रही थी। नागपुर पर उनके सिपाही बदले गये । उन सिपाहियो से तैयब शेख ने दोस्ती कर ली और कलकत्ते पहुँचकर जब लाल बाजार थाने मे वह ले जाये जा रहे थे, उन्होने सिपाहियो से कहा, "आप लोग कृपा करके मेरी बेडियाँ खोल दीजिये । मैं यहाँ से नजदीक 'हिन्द जदीद' के कार्यालय मे पाखाने हो आऊँ।" सिपाहियो ने बेडी खोल दी । तैयब शेख 'हिन्द जदीद' ऑफिस मे गये और पिछवाडे से भागकर



प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शहीद अश्फाकुल्ला

डेढ़ मील दूर एमहर्स्ट स्ट्रीट मे मेरे वाले कमरे मे पहुँच गये। मैंने उन्हे आश्चर्य से देखा और कहा, "डॉक्टर सिंह, तुम यहाँ कैसे ?" वह बोले, "पण्डित, मुझे बचाओ। कुत्ते मेरा पीछा कर रहे हैं।" उनके हाथ मे बेडियाँ पडी हुई थी । मैंने तुरन्त ही 'विशाल भारत' के चपरासी रामधन को रेती लाने के लिए भेजा और तैयब शेख को एक छोटी कोठरी मे ही ठहरा दिया। रेती आने पर मेरे छोटे भाई रामनारायण ने बेडियाँ काट दी थी । मैंने उन्हे नये कपडे पहिनाकर रामधन के साथ 'विशाल भारत' कार्यालय की छत पर ठहरने के लिए भेज दिया । प्रात काल के अखबारों मे बडी सनसनीखेज खबर छपी . "कम्युनिस्ट कार्यकर्ता सिपाहियो को चकमा देकर भाग गया ।" प्रात काल उठकर मैं 'विशाल भारत' ऑफिस गया और शेख को अपने साथ एक बंगाली क्रान्तिकारी सज्जन के पास ले गया और



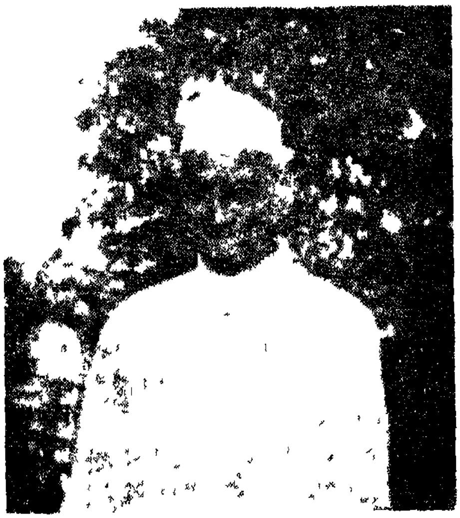
प्रसिद्ध क्रान्तिकारी आसामी बाबू

भागीरथ कनोडिया से लाकर पचास रुपये उन्हे दे दिये। वह मारवाडी सेठ के वेश मे फैजाबाद जाकर आचार्य नरेन्द्र देव के यहाँ ठहरे थे। आचार्य जी से उनका परिचय मैंने अपने मकान पर कलकत्ते मे ही करा दिया था। आचार्य जी ने उन्हे रेलवे गार्ड के साथ बिठलाकर गुजरात भिजवा दिया था। उसके बाद वह पकड लिए गये और उन पर मुकदमा भी चला और कई महीने की जेल भी हुई। अगर पुलिस को इस घटना की पूरी-पूरी जानकारी होती तो मुझे भी अवश्य जेल की यात्रा करनी पडती।

कलकत्ते मे तैयब शेख मेरे मकान पर ही रहते थे और रात मे बडी देर मे आ पाते थे। एक बार कही बाहर भोजन करने के बाद उन्हे हैजा हो गया। सौभाग्य से कपूरारिष्ट मेरे पास था और समय पर उसके प्रयोग ने उनकी जान बचा दी। उनके पाखाने और कै साफ करने का काम मुझको ही करना पडा था। पूर्ण स्वस्थ होने पर मैंने पच्चीस रुपये देकर उन्हे बम्बई भिजवा दिया था। एम० एन० राय के आगरा आने पर मैंने यह घटना उन्हे सुनाई थी पर उन्होने एक शब्द भी धन्यवाद का नही कहा था। कलकत्ते मे रामधन को एम० एन० राय एव उनकी पत्नी एलिन राय से मैंने ही मिलाया था।

कलकत्ते मे ही आसामी बाबू दो बार मेरे कमरे पर ठहरे थे। वह क्रान्तिकारी पार्टी के मुखिया थे और उनके सिर पर नौ हजार रुपये का पुरस्कार था। वह कटियारी (हरदोई) रियासत मे पहलवान के रूप मे रहते थे। उन्होने तरनतारन मे एक सरदार सिक्ख के यहाँ भी डाका डाला था। सुभाष बाबू के वह कृपापात्र थे और किदवई साहब भी उन्हे जानते थे। भाई श्रीराम शर्मा ने ही उनको मेरे पास ठहरने के लिए भेज दिया था। वह कई बगाली क्रान्तिकारियो को स्त्री के वेश

बाबा पृथ्वीसिंह आजाद



मे कटियारी ले गये थे। कटियारी के राजा साहब रुक्मागद सिंह पहलवानो के सरक्षक थे। उनके यहाँ पचास पहलवान आश्रय पा रहे थे। आसामी बाबू बड़े चरित्रवान व्यक्ति थे। एक बार प्रात काल पाँच बजे जब वह दण्ड-बैठक लगा रहे थे, तीन-चार युवतियो ने उन्हे घेर लिया। वह उन्हे धक्का देकर यह कहते हुए भाग गये कि मैं बदमाशी नही करूँगा। आसामी बाबू को लखनऊ मे किसी ने जहर दे दिया था। उस समय वह श्री जगनप्रसाद रावत के कमरे मे ठहरे थे। उनके असली नाम का किसी को भी ज्ञान न था।

शहीदो के श्राद्ध का काम लेने के बाद मुझे अनेक क्रान्तिकारियो के सम्पर्क मे आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वतन्त्रता-सग्राम-सेनानियो के शिरोमणि बाबा पृथ्वीसिंह आजाद से मेरा परिचय सन् 1953 मे हुआ था जब वह स्वय मेरे पास पधारे थे और चीन जाने का प्रयत्न कर रहे थे। पिछले तीस वर्षों से मैं उनका कृपापात्र बना हुआ हूँ। झाँसी के क्रान्तिकारी भगवान दास माहौर तथा उनके सहयोगी सदाशिवराव से भी मेरा घनिष्ठ परिचय हो गया। माहौर जी की रचनाओ को प्रकाश मे लाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। झाँसी के पण्डित परमानन्द जी के भी निकट सम्पर्क मे मै आ सका। उनको भेट किए गए अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन भी मेरे द्वारा ही हुआ था। लाहौर के क्रान्तिकारी भाई परमानन्द जी से भी मेरा परिचय था। दीनबन्धु एण्ड्रूज ने उनके बारे मे लेख लिखकर उन्हे काले पानी से मुक्त कराया था। वह एण्ड्रूज से मिलने के लिए शान्ति-निकेतन आये थे और वही मैने उनके दर्शन किये थे। भाई परमानन्द जी ने मुझसे कहा था, "मै एक ऋषि से मिलने शान्ति-निकेतन आया हूँ।" आगे चलकर श्रीयुत शिववर्मा, काशीराम, वैशम्पायन और सुशीला देवी से भी मेरा परिचय हुआ। मैनपुरी कान्स्पिरेसी के क्रान्तिकारियो मे श्री दम्भी लाल पाण्डेय फर्रुखाबाद मे मेरे शिष्य रह चुके



डा० भगवानदास माहौर पुलिस हिरासत मे एक दुर्लभ चित्र

थे और भाई शम्भूदयाल सक्सेना मुझसे मिलने यहाँ फीरोजाबाद पधारे थे। उन्होने बताया कि 'फिजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष' पुस्तक उन सब को पढ़ने को दी जाती थी और उन सबने उससे बड़ी प्रेरणा ग्रहण की थी। बाबू शम्भूदयाल सक्सेना, मेरे सहयोगी डॉ० मथुराप्रसाद मानव, जो इस पुस्तक के लिपिक हैं, के

पूज्य चाचा थे। इस पुस्तक से लोकनायक जयप्रकाश नारायण जी ने भी प्रेरणा प्राप्त की थी। उनके जीवन-चरित मे श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी ने इसका उल्लेख किया है। स्वयं जयप्रकाश जी ने भी फीरोजाबाद के भारती भवन की निरीक्षण पुस्तिका मे यह लिखा है।

सन् 1944 मे मैने 15-16 दिन तक बिहार के छपरा जिले की यात्रा की थी और अमर शहीद फुलैना बाबू के बारे मे भाषण दिये थे। उन्हे सुनकर पुलिस ने मेरे नाम वारण्ट जारी कर दिया था। जब मैं शिवान मे ठहरा हुआ था उस समय एक रात को पुलिस ने प्राइवेट तौर पर मुझे खबर दे दी कि आपके नाम वारण्ट कट चुका है। इस कारण बचने के लिए कल ही बिहार छोड जाइये। बस दूसरे दिन मै गोरखपुर के लिए रवाना हो गया। ब्रिटिश-शासन-काल मे यह नियम था कि एक प्रान्त मे जारी किया गया वारण्ट अन्य प्रान्त मे भी लागू हो जाता था। इसलिए वह वारण्ट यू० पी० मे जारी हो गया था। तब मै गोरखपुर छोडकर टीकमगढ पहुँच गया। वहाँ मैने महाराज साहब श्री वीरसिंह जूदेव से कहा, "मुझे भी जेल की हवा खा आने दीजिये।" महाराज साहब ने राज्य के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट से मेरे सामने तो कहा, "चौबे जी को झाँसी पुलिस के सुपुर्द कर दो।" पर प्राइवेट तौर पर उन्हें मना कर दिया था। कुछ दिनो बाद महाराज साहब ने कहा, "चौबे जी, जेल से तुम जिन्दा नही लौटते। वहाँ तुम्हारे पेडो का और जवाकुसुम का इन्तजाम कौन करता? इसलिए मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट से मना कर दिया था।" पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब सेंट स्टीफेंस कॉलेज दिल्ली मे दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के शिष्य रह चुके थे और क्रिकेट के अच्छे खिलाडी थे और वह मेरे प्रति श्रद्धा भी रखते थे। इस प्रकार मै जेल जाते-जाते बच गया।

स्व० फुलैना बाबू पर उनकी पत्नी श्रीमती तारारानी ने 'उनकी याद' नामक पुस्तक लिखी है, उसकी पुस्तक की भूमिका मैने ही लिखी थी। उस पुस्तक का द्वितीय सस्करण राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, छाप रहे है।

26

महाकवियों के सम्पर्क में

हिन्दी के जिन महाकवियो के निकट सम्पर्क मे आने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उनमे कविवर शकर, श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, माखन लाल चतुर्वेदी, जग्गन्नाथ दास रत्नाकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और रामधारी सिह 'दिनकर' आदि प्रमुख हैं।

प० नाथूराम शर्मा शकर जी के निवास स्थान की मैंने तीर्थ यात्रा अपने अनुज स्व० रामनारायण चतुर्वेदी के साथ की थी। उस समय उन्होने हम लोगो के स्वागतार्थ आशीर्वाद स्वरूप एक कविता रची थी।

कविवर स्व० श्रीधर पाठक के पास उनके निवास स्थान पद्मकोट (लूकरगज, इलाहाबाद) पर मुझे सोलह दिन रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और जब कविवर रत्नाकर जी कलकत्ते पधारे थे तो निरतर बारह दिन तक मैंने उनकी सेवा मे उपस्थित होकर उनके जीवन- चरित-सम्बन्धी नोट्स लिये थे। सत्यनारायण जी से तो सन् 1912 से ही परिचय था और उनकी कीर्ति-रक्षा के लिए कुछ सेवा भी मुझसे बन पडी। बन्धुवर नवीन जी और दिनकर जी दोनो ही की कृपा 'विशाल भारत' पर रही थी और राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण जी गुप्त के निवास स्थान चिरगाँव की तीर्थ यात्रा मैंने तीन-चार बार की थी। श्री सियाराम जी के विषय मे तो मैंने एक लेख भी लिखा था। अपनी रुचि के कवि, श्री माखनलाल चतुर्वेदी से तो मैं सन् 1916 से ही परिचित था। उनके प्रथम दर्शन मैंने इन्दौर मे किये थे। उनसे मैंने बार-बार आग्रह किया था कि अपनी कविताओ के सग्रह छपावें। उन्होने तकाजो से तग आकर अपनी सब कविताएँ मुझे भेज दी थी पर मैं छपा न सका था। बाद मे उनके कई काव्य-सग्रह प्रकाशित हो गये थे। श्री हरिशकर जी से तो घनिष्ठ सम्बन्ध था ही और कविवर बच्चन जी ने भी 'विशाल भारत' पर कृपा की थी। इन कवियो के विषय मे अनेक लेख लिख चुका हूँ। यहाँ कुछ विशिष्ट घटनाएँ ही देना पर्याप्त होगा।

शकर जी तथा उनके कुटुम्ब के 100 वर्ष से अधिक आर्यसमाज की सेवा मे व्यतीत हुए थे। कविवर निराला जी शकर जी के बडे भक्त थे। एक बार जब वह शकर सदन आगरे मे ठहरे हुए थे, उन्होने हरिशकर जी से पूछा, "क्या घर के बालक भी कुछ लिख लेते हैं?" उन्होने उत्तर दिया, "तीनो भाई दयाशकर, कृपाशकर और विद्याशकर कुछ-कुछ लिख तो लेते हैं।" इस पर निराला जी बोले, "तब तो यह सिद्धो का कुटुम्ब है।" यह बडे दुर्भाग्य की बात है कि 'शकर सर्वस्व' का द्वितीय सस्करण भी नही छप सका। बन्धुवर हरिशकर जी के स्वर्गवास के बाद उनकी स्मृति-रक्षा के लिए आर्यसमाज ने



बालकृष्ण शर्मा नवीन, स्वर्गीय गणेशशकर विद्यार्थी की पौत्री को लिए हुए एक भावपूर्ण मुद्रा

कुछ भी नही किया। आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश ने केवल 114 रुपये उनके पत्रो की प्रतिलिपिया टाइप कराने के लिए दिये थे। फीरोजाबाद के डी० ए० वी० कॉलेज ने उन पर एक विशेषाक निकाल दिया था।

स्व० वशीधर जी विद्यालकार भी बहुत अच्छे कवि थे। महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर एक कवि सम्मेलन मथुरा मे हुआ था जिसके सभापति शकर जी थे। उस सम्मेलन का मैने सचालन किया था। उस अवसर पर श्री वशीधर जी ने अपनी वह प्रसिद्ध कविता सुनायी थी "दरवाजे को खोल दे माली, मुझे बुलाती डाली।" उपस्थित जनता ने उसे बहुत प्रसन्द किया था। मौलवी अब्दुल हक साहब को भी श्री वशीधर जी की कविताएँ बहुत पसन्द आयी और उन्होने वशीधर जी को अपनी उस्मानिया यूनिवर्सिटी मे हिन्दी विभाग का अध्यक्ष बना दिया था।

अवधी के महाकवि स्व० वशीधर शुक्ल जी से भी मेरा अच्छा-खासा परिचय था। मैने उनकी तीन कविताएँ—कवि सम्मेलन, मुशायरा और सिनेमा—'सुमित्रा' के विशेषाक मे छपा दी थी। महापण्डित राहुल साकृत्यायन जी का तो यह मत था कि महाकवि तुलसी के बाद सबसे अधिक सशक्त अवधी भाषा वशीधर जी ने ही लिखी थी। प्रिसिपल मनोरजन ने भी भोजपुरी मे कई शक्तिशाली रचनाएँ की थी। आवश्यकता इस बात की है कि जनपदीय भाषाओ की कविताओ का एक सर्वोत्तम सग्रह छपाया जाये। मनोरजन जी ने 'फिरगिया' नामक कविता बहुत अच्छी लिखी थी। श्री जगदम्बा प्रसाद हितैषी से मेरा अच्छा परिचय था। वृन्दावन के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन मे उन्होने राजा महेन्द्र प्रताप पर एक अच्छी कविता सुनायी थी। वृन्दावन मे जो सम्मेलन हुआ था वह राजा महेन्द्र प्रताप द्वारा गुरुकुल वृन्दावन को दी हुई भूमि पर ही हुआ था पर राजा साहब को किसी ने याद भी नही किया था। यह बात हितैषी जी को बहुत अखरी तब उन्होने तत्काल उस कविता की रचना की और सुनायी।

कविवर नवीन जी का मै विशेष कृपा पात्र था। अपने सर्वोत्तम पत्र उन्होने मुझे ही लिखे थे। वह बडे मनमौजी आदमी थे और पत्र लिखते समय अपने विचारो को सर्वथा अनियन्त्रित ढग से प्रगट कर देते थे। उनके कुछ पत्र तो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच जाते थे। नवीन जी के स्वर्गवास पर अनेक विशेषाक निकले थे। वह एक बात मे बडे सौभाग्यशाली रहे कि उन पर लिखे हुए श्री लक्ष्मीनारायण

दूबे के शोध ग्रन्थ की गणना सर्वोत्तम शोध ग्रन्थो मे की जाती है। मैंने 'नर्मदा' के विशेषाक मे उनके पत्रो को छाप दिया था।

कविवर दिनकर जी तो 'विशाल भारत' के खास कवि थे। उनका उदय भी 'विशाल भारत' के द्वारा ही हुआ था। बिहार के एक प्रान्तीय सम्मेलन मे मैंने कह भी दिया था, "यदि कविवर दिनकर जी अफ्रीका मे होते तो मै वहाँ भी उनके दर्शनार्थ जाता।" मरे इस कथन का दुष्परिणाम यह भी हुआ कि कितने ही व्यक्ति दिनकर जी के विरोधी बन गये। दिनकर जी की वाणी मे बडा ओज था और अपनी सुन्दर कविताओ का इतने अच्छे ढग से सुनाने वाला हिन्दी मे दूमरा कवि बच्चन जी के सिवा नही था। चूँकि मै उम्र मे उनसे बडा था इसलिए वह मेरे प्रति श्रद्धा रखते थे। मेरे जन्म-दिवस पर अपनी एक सुन्दर कविता उन्होने मुझे भेट की थी।

→



पण्डित श्रीधर पाठक

27

कुछ विदेशी महापुरुष

वैसे तो महापुरुषो को किसी देश-विदेश की सीमा मे बाँध देना अपने सकीर्ण दृष्टिकोण का ही परिचय देना है, फिर भी सुविधा की दृष्टि से हमे यह विभाजन स्वीकार करना पडा। महापुरुष तो विश्व मानव होते है। महात्मा गाधी को सिर्फ भारत मे और दीनबन्धु ऐण्ड्रूज को केवल इग्लैड मे सीमित नही किया जा सकता है। यदि धृष्टता क्षमा की जाये तो मैं कहूँगा कि मेरा दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही व्यापक रहा है। 'हमारे आराध्य' नामक मेरी पुस्तिका मे जिन 17 मानवो का चरित्र-चित्रण है, वे सब विदेशी ही हैं और 'सेतु बन्धु' मे भी, जिसका द्वितीय सस्करण 'विश्व की विभूतियाँ' के नाम से छप गया है, अनेक विदेशियो के रेखाचित्र हैं। महापुरुषो को उत्पन्न करने का ठेका किसी देश-विशेष ने नही लिया है, यद्यपि उग्र देशभक्ति से प्रेरित व्यक्ति सर्वोपरि अपने देश को ही महत्त्व देते रहे है। एक पुरानी उक्ति है "एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मन, स्व-स्व चरित्रम् शिक्षेरन् पृथिव्याँ सर्व मानवा" यानी पृथ्वी के सभी मानवो ने भारत देश मे उत्पन्न महापुरुषो के चरित्र से शिक्षा ग्रहण की है।

अब विश्व बहुत छोटा हो गया है और उसके देश एक दूसरे के बहुत निकट आ चुके है। जो घटना न्यूयार्क मे घटती है, कुछ मिनटो मे ही उसके समाचार भारत मे आ जाते है। अब हमारा मूल मन्त्र होना चाहिए "उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"

जिन विदेशी महापुरुषो या विशिष्ट व्यक्तियो के दर्शन मैं भारत मे ही कर सका, उनमे मुख्य है— जापान के गाधी कागावा, नोबुल पुरस्कार विजेता पर्ल बक, विश्वविख्यात पत्रकार लुई फिशर, मिस म्यूरियल लीस्टर। हाँ, समय-समय पर खास-खास विदेशियो से सम्पर्क होता रहा है। कुमारी मार्जोरी साइक्स के साथ मैने दीनबन्धु ऐण्ड्रूज की जीवनी के लेखन मे कार्य किया था। वह कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे महीने-भर मेरी अतिथि भी रही थी। वह तो अब भारतीय नागरिक ही बन गयी हैं। श्रीयुत् होरेश एलेक्जेण्डर तथा मिस अगाथा हेरीसन के दर्शन मुझे मत्री कालोनी, दिल्ली मे हुए थे जहाँ वे दोनो महात्मा गाधी जी से मिलने पधारे थे। उन दोनो ने ही मुझसे आग्रह करके दीनबन्धु ऐण्ड्रूज की जीवनी मे मिस मार्जोरी साइक्स को सहयोग देने के लिए कहा था।

कलकत्ते मे मिस शेफर्ड पतित स्त्रियो के उद्धार का कार्य कर रही थी, साल-डेढ़ साल तक मैंने उन्हे भी सहयोग दिया था।

मिस म्यूरियल लीस्टर से परिचय

यह घटना सन् 1925 या '26 की है। श्री कृष्णदत्त पालीवाल कांग्रेस की ओर से एसेम्बली का चुनाव लड रहे थे और उनके साथ एक अंग्रेज महिला भी पधारी थी जो भारतीय ग्रामो की दशा देखने को उत्सुक थी। मुझे एक सज्जन ने सूचना दी कि वह साबरमती आश्रम मे महात्मा जी के दर्शन करती हुई आई हैं और श्रीरामचन्द्र पालीवाल के घर पर ठहरी हैं। मै तुरन्त ही वहाँ गया और मैंने पालीवाल जी से पूछा, 'इधर ठहरने की आपने क्या व्यवस्था की है?" पालीवाल जी ने सहज भाव से कहा, 'हमारे पास तो केवल एक ही जगह है, पौरी का चबूतरा।" मैंने उस पर एतराज किया तो उन्होने कहा, "आप अगर बेहतर प्रबन्ध कर सकते हैं तो करें।" मै तुरन्त बाबू हजारीलाल चतुर्वेदी की सेवा मे उपस्थित हुआ और उनसे प्रार्थना की कि वह चौबे मुहल्ला स्थित अपनी पीली कोठी की ताली मुझे दे दें जहाँ मै मिस म्यूरियल लीस्टर को ठहरा सकूँ। उन्होने ताली मेरे सुपर्द कर दी और तब उस कोठी के हॉल मे उन्हे ठहरा दिया गया। वह बडी प्रसन्नतापूर्वक वहाँ ठहरी और प्रातःकाल उन्होने कहा, "यहाँ के निर्मल आकाश को देखकर मुझे बडा आनन्द आया।" कुछ देर बाद मिस म्यूरियल लीस्टर को मै अपने घर ताई जी और अपनी पत्नी से मिलाने ले आया। उन दोनो ने स्वागत सत्कार के बाद मुझसे कहा, "इनसे पूछिये कि इन्होने शादी की?" इस पर मुझे कुछ हँसी आ गयी। मिस म्यूरियल ने पूछा, "ये क्या पूछ रही है?" तो मैंने अंग्रेजी मे उनका प्रश्न दुहरा दिया। इस पर म्यूरियल लीस्टर ने अंग्रेजी मे कहा, "टेल देम, आई एम ए वर्कर।" (इनसे कहिए कि मै तो एक काम करने वाली स्त्री हूँ।) मैंने उनकी बात घरवालो को समझा दी।

जब पालीवाल जी के साथ मिस म्यूरियल लीस्टर ग्राम-भ्रमण के लिए जाने लगी तो पालीवाल जी ने कहा कि आप इनके दुभाषिया बन जाइये। मैंने यह कार्य सहर्ष स्वीकार कर लिया और पाँच-छ घण्टे तक दुभाषिये का काम करता रहा। इस प्रकार मेरा उनसे कुछ परिचय हो गया। उसके बाद मैंने विलायत से उनके कार्य का विवरण भी मँगा लिया और उस पर एक लेख लिखकर पत्रो मे छपवा भी दिया।

जब वह साबरमती मे महात्मा जी से मिली थी तो उन्होंने महात्मा जी से प्रार्थना की कि आप हमारे देश इंग्लैंड की यात्रा कीजिये। महात्मा जी ने उत्तर दिया, "मै आप लोगो को क्या सिखा सकता हूँ?" (वॉट कैन आई टीच यू?) इस पर मिस म्यूरियल लीस्टर ने तपाक से कहा, "आपसे कौन कहता है कि आप हमे कुछ सिखावें, आप हमसे कुछ सीखे।"—(हू आस्क्स यू टू टीच अस, यू मस्ट लर्न समथिंग फ्रॉम अस।)महात्मा जी जवाब खाने वाले आदमी नही थे। उन्होने फौरन ही उत्तर दिया, "बिल्कुल ठीक। मै इंग्लैंड आऊँगा। पर इस शर्त पर कि आप इंग्लैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड की यात्रा करके अपने देशवासियो को बतलाइये कि आपकी ब्रिटिश सरकार किस तरह भारतीयो को शराब का जहर पिला रही है।" वह राजी हो गयी और उन्होने वचन दिया कि वह ऐसा अवश्य करेंगी। अपने वचन का उन्होने पालन भी किया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जब महात्मा जी गोलमेज कान्फ्रेंस मे विलायत गये थे तो वह अन्यत्र न ठहरकर मिस म्यूरियल लीस्टर के कार्यस्थल 'किंग्सले हॉल' मे ही ठहरे थे। मिस म्यूरिल लीस्टर ने आगे चलकर एक पुस्तक लिखी जिसका नाम था 'एण्टरटेनिंग गाधी' यानी गाधी जी का आतिथ्य।

किंग्सले मिस म्यूरियल लीस्टर का भाई था। उसके स्वर्गवास के बाद उसकी स्मृति मे मिस म्यूरियल लीस्टर ने किंग्सले हॉल की स्थापना की

थी। इनके पिता जी ने इन दोनो के लिए जो पैसा छोडा था उससे 500 रुपये के करीब ब्याज आता था। वह सब रुपया मिस म्यूरियल लीस्टर ने लन्दन के मुहल्ले के बच्चो और स्त्रियो की सेवा के लिए अर्पित कर दिया। मिस म्यूरियल लीस्टर बडी दबग महिला थी। उन्होने जापान की यात्रा के समय जापानियो को खासी डाँट भी बतला दी थी क्योकि उन दिनो जापान चीन पर जुल्म कर रहा था। उन्होने दो किताबें और भी लिखी थी—'माई होस्ट दि हिन्दू' एव 'इट आॅकर्ड टू मी।'

मिस म्यूरियल लीस्टर को विलायत मे जेल की यात्रा भी करनी पडी थी। उनकी माँग थी कि बच्चो को जो दूध दिया जाय वह पूर्ण रूप से जाँच के बाद ही दिया जाय। इस अभियान मे वह विजयी हुई थी।

नोबुल पुरस्कार विजेता पर्ल बक

जिन दिनो मै 'विशाल भारत' मे काम कर रहा था, मेरे नाम एक फोन आया। वह कलकत्ते के एक विख्यात ग्रैड होटल से था। मैने फोन उठाया तो उधर मे किसी सज्जन ने कहा, "मैं अमेरिका से आया हूँ और गाधीवादी लेखक रिचर्ड ग्रिग द्वारा लिखित परिचय-पत्र आपके नाम लाया हूँ। आपसे मिलने कब आऊँ?" मैने तुरन्त ही उत्तर दिया, "आपको कष्ट करने की जरूरत नही है मैं खुद ही अपकी सेवा मे हाजिर हो रहा हूँ।" इतना कहकर मैं होटल ग्रैड पहुँचा। वहाँ 'एशिया' नामक पत्र के सचालक मि० रिचर्ड वार्ल्श उपस्थित थे। उनसे घण्टे भर बातचीत होती रही। चलते वक्त उन्होने कहा, "क्या आप एक अमेरिकन लेखिका पर्ल बक से मिलना पसन्द करेगे? वह छद्म नाम से यात्रा कर रही है। पुलिटजर प्राइज की वह विजेता हैं। वह ग्रेट ईस्टर्न होटल मे ठहरी है।" मैंने उत्तर दिया, "मैं अवश्य उनकी सेवा मे उपस्थित होऊँगा।" अकस्मात् उस दिन होली पडवा थी। मुझे इस बात की पूरी आशका थी कि मुझ पर कोई न कोई रग अवश्य डालेगा। इसलिए मैने एक जोडी कपडे अपने साथ ले लिये थे। घोडा गाडी तक पहुँचते ही एक सज्जन ने मुझ पर रग डाल दिया। घोडा गाडी के भीतर मैंने अपने कपडे बदले और रगीन कपडो का पुलन्दा बनाकर बगल मे ले लिया। पुलन्दा लिए हुए मैं पर्ल बक की सेवा मे पहुँचा। कोई पौने घण्टे उनसे बातचीत होती रही। उन्होने मुझे बतलाया कि वह आगरे जा रही है। तब मैंने कहा, "आगरे के लिए मै परिचय-पत्र दे दूँगा। यहाँ मेरे साथ श्रीराम शर्मा नामक सज्जन ठहरे हुए हैं, वह आपकी आगरे की यात्रा का प्रबन्ध कर देगे।" श्रीमती पर्ल बक ने पूछा, यह पोटली क्या है जो बगल मे लिए हुए हो?" "तब मैंने होली पर्व का हाल बताया। जिससे उनकी जिज्ञासा जाग्रत हो गई और उन्होन कहा, "मै होली देखना चाहती हूँ।" मैने उत्तर दिया, "कलकत्ते की होली मे बडा हुडदग होता है। उसका देखना खतरनाक होगा।" इतना कहकर मैं चला आया और निवास स्थान पर पहुँचकर भाई श्रीराम जी से कहा, "एक बढिया शिकार हाथ आ गया है।" वह चौकन्ने हुए और बोले, "कौन-सा शिकार?" तब मैंने सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया। दूसरे दिन मै उन्हे साथ लेकर पर्ल बक की सेवा मे गया। भाई श्रीराम जी ग्रामीण प्रश्नो के विशेषज्ञ थे और उन्होने पर्ल बक को वचन दिया कि वह भारतीय ग्रामीण जीवन की एक झलक उन्हे दिखला देगे।

जब मिस्टर वार्ल्श और पर्ल बक आगरे पहुँचे तो मेरे छोटे भाई स्व० रामनारायण चतुर्वेदी ने उनसे मुलाकात की और उन दोनो को भाई श्रीराम जी के ग्राम ले गये। पर्ल बक ने अपनी पुस्तक 'माई सेवरल वर्ल्ड्स' (मेरे अनेक ससार) मे एक अध्याय अपनी किरथरा यात्रा पर दिया है जो काफी

मनोरजक है। किरथरा मे उनके आतिथ्य का प्रबन्ध श्रीरामजी के अनुज जगन्नाथ ने किया था, जो कई वर्ष से अस्वस्थ थे और खाट पर लेटे रहते थे। पर उनमे ग़ज़ब की प्रबन्ध शक्ति थी। श्रीराम जी की धर्मपत्नी ने भी स्वादिष्ट भोजन बनाया था। भोजन के उपरान्त उन दोनो अतिथियो ने पूछा कि भोजन बनाया कैसे गया। जब उन्हे मामूली चूल्हा दिखलाया गया तो वह चकित रह गये।

मिस्टर वाल्शं बडे साधन-सम्पन्न प्रकाशक थे। उनके द्वारा प्रकाशित 'एशिया' नामक पत्रिका की चालीस हजार प्रतियाँ छपती थी, जिन्हें वह बहुत कम मानते थे। उस वक्त तक उनका विवाह पर्ल बक के साथ नही हुआ था, आगे चलकर हो गया था। यद्यपि मै उन दोनो विख्यात अमेरिकन अतिथियो के बारे मे स्वय ही लेख लिख सकता था। पर मैंने यह सुअवसर भाई श्रीराम को प्रदान कर दिया था। भाई श्रीराम जी ने बहुत अच्छा लेख लिखा था जिसे मैंने 'विशाल भारत' मे छाप दिया था। पेशेवर प्रतिष्ठित लेखक ऐसा कभी नही करते कि ऐसे दुर्लभ अवसरो का उपयोग दूसरो को करने दे। भारत-यात्रा के दो-तीन वर्ष बाद पर्ल बक को जब नोबुल प्राइज़ मिला था तब मुझे कुछ आश्चर्य हुआ था और मैंने भाई श्रीराम जी से कहा था, "क्या पर्ल बक वही है जिनसे हम लोग मिले थे? वह तो युवती-सी ही मालूम होती थी जबकि उनकी उम्र चालीस साल बताई जाती है।" इस पर श्रीरामजी बोले, "हाँ, यह वही पर्ल बक हैं। अपने स्वास्थ्य का भरपूर ध्यान रखकर वह अपने यौवन को बनाये हुए हैं।"

इसके कुछ वर्ष बाद पर्ल बक भारत पधारी। उनका दिल्ली मे स्वागत किया गया था। मै उस मीटिंग मे उपस्थित था और मैंने उन्हे अपने पिछले परिचय की याद दिलायी। उन्हे उसका भली-भाँति स्मरण था। उन्होने बडे दुखपूर्वक कहा, "मै तो अब विधवा हूँ। कुछ समय पूर्व मिस्टर वाल्शं का देहान्त हो चुका है।"

अमेरिका मे भारतीय स्वाधीनता की समर्थक सस्था मे पर्ल बक का प्रमुख हाथ था। अपने ग्रन्थो से उन्हे जो आमदनी हुई थी उसे उन्होने कुछ भिन्न-भिन्न जातीय बच्चो के पालन-पोषण पर खर्च कर दिया था। उनका जन्म और पालन-पोषण चीन मे हुआ था जहाँ उनके पिता मिशनरी थे। उनके ग्रन्थ 'गुड अर्थ', जिस पर उन्हे नोबुल प्राइज़ मिला था, मे चीन के ग्रामीण जीवन का ही वर्णन है। उस ग्रन्थ पर एक उत्कृष्ट फिल्म भी बनी थी जिसे देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।

अमेरिकन पत्रकार लुई फ़िशर

एक दिन मैंने राइटर का यह तार किसी अग्रेज़ी पत्र मे पढा कि लुई फिशर नामक अमेरिकन पत्रकार अमुक प्रकाशक के लिए महात्मा गाधी जी का जीवन चरित लिख रहे है। मैंने तुरन्त ही हवाई डाक से एक पत्र अमेरिका भेज दिया जिसका आशय यह था कि मैं आपके इस महत्त्वपूर्ण कार्य मे सर्वथा निस्वार्थ भाव से कुछ सेवा करना चाहता हूँ। लौटनी डाक से उनका पत्र आया। उसका एक वाक्य था, "आई एम ग्लैड दैट यू एक्ज़िस्ट" (यानी मुझे यह देखकर हर्ष होता है कि आप जैसा कोई व्यक्ति मौजूद है)। फिर उन्होने लिखा था, "कृपया बताइये, आप क्या मदद दे सकते हैं?" मैंने तुरन्त ही चि० बुद्धिप्रकाश से ऐण्ड्रूज़-गाधी-पत्र व्यवहार की 53 चिट्ठियाँ टाइप करायी और उन्हे हवाई डाक द्वारा तेरह रुपया खर्च करके अमेरिका भेज दिया। लुई फिशर ने उन पत्रो का उपयोग अपनी पुस्तक महात्मा गाधी जी की जीवनी मे यथास्थान कर दिया। उस पुस्तक की रचना मे उनके दो वर्ष से अधिक लग गये थे और उसके छपते ही सर्वप्रथम उसकी एक प्रति उन्होने मुझे भेंट दी थी।

जब लुई फ़िशर साहब भारत पधारे तो मैंने उनकी सेवा मे उपस्थित होकर उनसे बातचीत भी की थी। वह रूस मे पद्रह वर्ष रह चुके थे और उनकी पत्नी भी रूसी ही थी। वह तत्कालीन रूसी शासन पद्धति के विरोधी थे। अशोक होटल मे जब मैं उनसे बातचीत कर रहा था, लुई फिशर साहब ने मुझसे एक सवाल किया, "प० जवाहर लाल जी का स्थान कौन ले सकता है ?" मैं उनके इस प्रश्न का उत्तर न दे सका तो उन्होने स्वय ही कहा, "क्या जयप्रकाश जी उनके उत्तराधिकारी नही बन सकते ?" मैंने उत्तर दिया, "ही हैज़ आलरेडी मिस्ड दि बस" (यानी उन्होने तो इसका अवसर खो ही दिया है)। अब मैं सोचता हूँ कि अपने उस वाक्य मे मैंने श्रद्धेय जयप्रकाश जी के साथ न्याय नही किया था। वह पद-लोलुप नही थे और उस दिशा मे उनकी कोई आकांक्षा भी नही थी।

लुई फिशर साहब की जो थोडी-सी सेवा मैंने की उसके बदले मे उन्होने मेरे कई कार्य किये। सुप्रसिद्ध अहिसावादी सम्पादक विलियम लायड गैरीसन के पौत्र से उन्होने 1200 रुपये हिन्दी भवन, दिल्ली मे गैरीसन लाइब्रेरी खुलवाने के लिए भिजवाये और गैरीसन की चार बहदाकार जिल्दो वाली जीवनी भी उन्होने मुझे भेजी। वह ग्रन्थ सर्वथा दुर्लभ था और शायद एक हज़ार रुपये मे भी न मिलता।

लुई फिशर एक सप्ताह तक महात्मा गाधी जी के साथ भी रह चुके थे और उन्होने 'ए वीक विद गाधी' नामक पुस्तक भी लिखी थी। उनकी लिखी महात्मा गाधी जी की अग्रेज़ी जीवनी का हिन्दी अनुवाद सस्ता साहित्य मण्डल ने प्रकाशित किया था। उनकी एक पुस्तक 'स्टालिन और गाधी' भी थी जिसमे दोनो का तुलनात्मक अध्ययन था।

लुई फिशर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के पत्रकार थे और उनका जीवन बडा सघर्षमय रहा। एक बार तो उन्हे भोजन के लाले भी पड गये थे और उन्हे अपना ओवर कोट बेचना पडा था। अपने जीवन के अन्तिम काल मे वह एक विश्वविद्यालय के अन्त-र्राष्ट्रीय राजनीति के अध्यापक भी बन गये थे। मेरे सग्रहालय मे उनके बहुत-से पत्र सुरक्षित हैं।

जापान के गांधी : कागावा

कागावा का शुभ नाम मैंने पहले सुन रखा था। वाई०एम०सी०ए० के प्रकाशन विभाग से मैंने उनका जीवन-चरित भी मँगा लिया था और उसके आधार पर एक लेख 'जापान के गाधी कागावा' लिखकर ट्रैक्टाकार मे प्रकाशित भी करा दिया था। पर मुझे स्वप्न मे भी यह आशा नही थी कि मुझे कभी कागावा के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा। इस-लिए पत्रो मे यह समाचार पढकर, कि ईसाई मिशनरियो की एक सभा मे सम्मिलित होने के लिए कागावा जापान से भारत पधार रहे हैं, मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। मै उन दिनो बम्बई गया हुआ था और कागावा भी मद्रास से बम्बई आने वाले थे। इसलिए मैंने बम्बई मे मिलने के लिए उनसे समय माँगा। उन्होने सहर्ष समय दे दिया। उ्ही दिनो महाराज वीरसिंह जूदेव भी बम्बई पधारे थे। मैंने उनसे अपने कागावा से मिलने की बात कही। उन्होने तुरन्त ही कहा, "इस समय अग्रेज़ो के सम्बन्ध जापान से अच्छे नही हैं। और स्वभावत अग्रेज़ो की खुफिया पुलिस कागावा पर निगाह रखेगी। यदि आप कागावा से मिलेंगे, तो सी० आई० डी० की कुदृष्टि आप पर भी पड जायेगी। आप खुद सोच-समझ लीजिये।" तब मेरे मन मे यह ख्याल आया कि मैं देशी रियासत मे रह रहा हूँ। ओरछा राज्य के एक मत्री ठाकुर सज्जन सिंह जी ने मुझे सावधान करते हुए कहा था, "चोबे जी, आप कोई ऐसा काम न करें जिससे महाराज पर धर्म सकट उपस्थित हो। यदि ब्रिटिश

सरकार औरछेश पर यह दबाव डालेगी कि चौबे जी को राज्य से निष्कासित कर दिया जाय, तो वह ऐसा हरगिज नहीं करेंगे, चाहे उन्हे गद्दी छोडनी पडे।" ठाकुर साहब की इस बात को ध्यान मे रखकर मैंने यही उचित समझा कि कागावा से न मिलूं और मैंने उन्हे (कागावा को) लिख भी दिया कि मैं दो दिन पहले बम्बई छोड रहा हूँ। इस पर कागावा का उत्तर आया कि मैं दो दिन पहले बम्बई पहुँच सकता हूँ। इसका कोई उत्तर न देकर मैं बम्बई से टीकमगढ के लिए रवाना हो गया। इसके आठ-दस दिन बाद मुझे कलकत्ते जाना पडा। अकस्मात् उन्ही दिनो कागावा भी कलकत्ते पहुँचे। मैंने पत्रो मे पढा कि उनका भाषण वाई० एम० सी० ए० के भवन मे होने वाला है। मैं भाषण से कुछ मिनट पहले भवन मे पहुँच गया और ज्यो ही कागावा साहब पधारे, मैंने तुरन्त उनसे प्रार्थना कर दी कि मीटिंग समाप्त होने के बाद मुझे पद्रह मिनट समय दे। वह सहमत हो गये। मीटिंग समाप्त होने पर मैं अकेले ही उनसे मिला। मैंने उनसे कहा, "सम्भवत अग्रेजो की सी० आई० डी० आपका पीछा कर रही होगी। इसी कारण मैं बम्बई मे आपसे न मिल सका।" उन्होने कहा कि मुझे इस बात का पता है। मैंने अपने उस लेख की प्रति भी उन्हे भेट कर दी, जो मैंने उनके विषय मे लिखा था। उनके पास अधिक समय था भी नही, इसलिए विशेष बातचीत हो नही सकी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि कागावा ने वर्धा पहुँचकर महात्मा गाधी जी के दर्शन किए थे और बातचीत भी की थी। उस बातचीत की पूरी-पूरी रिपोर्ट महादेव भाई देसाई ने 'यग इडिया' मे छपा दी थी।

जापान मे नगरो की गन्दी बस्तियो को सुधारने के लिए कागावा ने अपना सम्पूर्ण जीवन ही अर्पित कर दिया था। अपने विवाह के बाद वह अपनी पत्नी सहित एक गन्दी बस्ती के छोटे-से कमरे मे रहने के लिए चले गये थे। उस कमरे मे कई व्यक्ति पहले से मौजूद थे। कोठरी की लम्बाई छ फुट थी और चौडाई भी इतनी ही थी। उसमे सत्तर वर्ष का एक बूढा, साठ-पैसठ वर्ष की एक बुढ़िया, ग्यारह वर्ष का एक अपराधी लडका, एक अनाथ माता और उसके चार बच्चे और एक भिखारिन थे। यही कागावा का परिवार था। किसी नयी बहू के सामने ऐसी विकट समस्या शायद ही कभी उपस्थित हुई हो। कागावा की आमदनी कुल जमा तीन पौण्ड, यानी करीब 45 रुपये थी और इतने मे ही ग्यारह प्राणियो का पेट भरता था। उस गन्दी बस्ती मे चारो ओर अस्वच्छता तथा दुर्गन्ध का साम्राज्य था। पाखाना एक ही था। कपडो को एक छोटी से नदी मे धोना पडता था और उनके सुखाने के लिए कोई जगह न थी। खटमलो की भर-मार थी और वह अमर थे। जितने ही मारो, उतने ही बढते थे।

कुछ वर्ष पूर्व कागावा का देहान्त हो चुका है, पर शान्ति-निकेतन के जापान अध्यापक साईजी माकिनो से मुझे ज्ञात हुआ था कि कागावा की धर्म-पत्नी अभी जीवित हैं।

भाग : दो

आपबीती

1

मेरे पूज्य माता-पिता

"कक्का, तुम बु बात सुनाओ, जब तुम हमारी ननसार को पैदर ही गये।" यह प्रश्न हमने पूज्य पिताजी से न जाने कितनी बार पूछा होगा। और उन्होने बिना धैर्य खोए बार-बार उस मनोरजक यात्रा का विवरण हमे सुनाया था।

कोई 85 बरस पहले की बात है। हमारी ननसाल मैनपुरी मे कोई विवाह होने वाला था और उस कुटुम्ब के जामाता होने के कारण कक्का के नाम निमन्त्रण आया था। मैनपुरी फीरोज़ाबाद से 42 मील दूर है। उन दिनो वहाँ के लिए रेल नही थी। इक्के और बैलगाडियो से ही काम चलाना पडता था। कक्का उन दिनो 8-10 रुपये महीने पाते थे और उनके पास खर्च करने के लिए इतना पैसा नही था कि वह बैल-गाडी मे जा सकें। इसलिए वह वहाँ पैदल ही गये। कक्का कहते थे, "सवेरे चार बजे उठकर कुछ परांठे और कसार साथ मे लेकर हम चल दिये और शाम को सात बजे मैनपुरी जा पहुँचे।" हम पूछते, "कक्का इक्कीस कोस तो बहुत दूर है।" कक्का जवाब देते, "घोडन को घरी कित्तो दूर। पैर मजबूत होने चाहिए और देह मे राम, फिर आदमी इक्कीस कोस क्या, पचास कोस भी पैदल जा सकता है।"

पूज्य माता जी



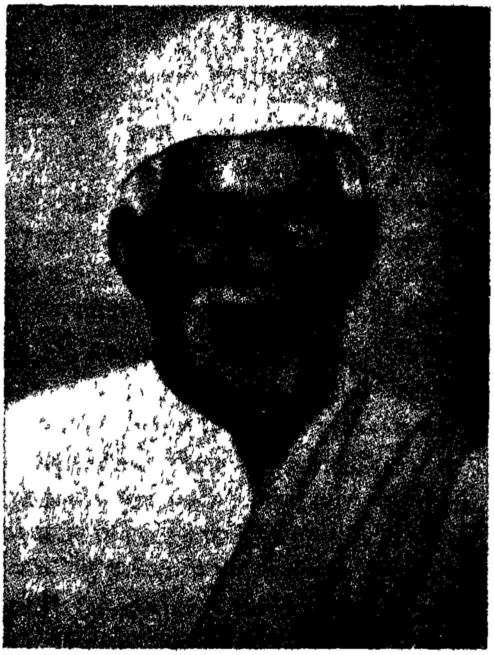
कक्का काफी व्यवहार-कुशल थे। मैनपुरी के एक मील निकट पहुँचने पर किसी कुएँ पर उन्होने हाथ-मुँह धोया और मैनपुरी के गज से दो पैसे का इक्का किया और जमाई साहब ससुराल मे इक्के पर घुड घुडाते हुए जा पहुँचे। हम लोग इस इक्के वाली बात पर बहुत हँसते, पर कक्का को इस बात से सन्तोष था कि उन्होंने रुपया-सवा रुपया किराये का बचा लिया और अपने गौरव की भी रक्षा कर ली। हम लोग फिर पूछते, "कक्का तुम थके नही," वह जवाब देते, "हमने बरातियो

को भोजन कराया और सबके अन्त मे स्वय भोजन किया और किसी को भी यह मालूम नहीं होने दिया कि इक्कीस कोस पैदल चलकर आये हैं।" यह घटना हमारे पूज्य पिता जी के चरित्र पर और उनके संघर्ष-मय जीवन पर भी अच्छा प्रकाश डालती है। दरअसल उनकी सारी जिन्दगी सघर्ष करते हुए ही बीती।

गदर के आस-पास की बात है। मथुरा के चूना-ककड मुहल्ले मे लछमनदास नामक एक चौबे जी रहा करते थे। वह बजाजी करते थे। गज-गाढे की दुकान थी और आस-पास बसे हुए कोरी लोगो से कपड़ा खरीदते और बेचते थे। उनके दो पुत्र हुए—सकटूराम और गणेशीलाल—और एक पुत्री। सकटूराम का विवाह उन्होने बाल्यावस्था मे ही कर दिया था, पर दुर्भाग्यवश वह बालक थोडे दिनों बाद ही स्वर्गवासी हो गया। इस दुर्घटना से लछमनदास इतने दुखित हुए कि उनका भी प्राणान्त हो गया। उनकी पत्नी पहले ही चल बसी थी। इस प्रकार गणेशीलाल और उनकी बहन, जो आठ-दस साल की थी, दोनो बिल्कुल अनाथ हो गये। फिर उनके बहनोई उन्हे और उनकी बहन को फीरोजाबाद ले गये। फीरोजाबाद मे ही बहनोई निहालचन्द्र तथा उनके बडे भाई जमनादास ने उनका पालन-पोषण किया था। वही से उनका विवाह हुआ और वहीं आगे चलकर हम सबका जन्म हुआ। कक्का जमनादास के गुण गाते-गाते अघाते नही थे। प्रबन्ध शक्ति और किफायतशारी उन्होने जमनादास से ही सीखी थी।

कक्का बड़े गुरुभक्त थे। प० जयराम जी का नाम वह बडी श्रद्धा के साथ लेते थे और उनके गुणों का वर्णन करते हुए हर्षातिरेक से उनकी आँखे सजल हो जाती थी। अपने गुरु के प्रति श्रद्धा प्रकट करने का कोई भी मौका वह हाथ से नही जाने देना चाहते थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि प० श्रीधर पाठक जी भी इन्ही प० जयराम जी के शिष्य थे।

पूज्य पिता जी



सन् 1852 से लेकर 24 दिसम्बर सन् 1944 तक का कक्का का 93 वर्षीय जीवन अत्यन्त सघर्षमय रहा। सन् 1875 मे वह मुदर्रिस हुए थे और पूरे पचास वर्ष उन्होने ग्राम-स्कूलो की मुदर्रिसी की थी। प्रारम्भ मे उनका वेतन छह रुपये मासिक था और अन्त मे बढ़ते-बढ़ते वह पच्चीस-तीस तक पहुँच गया था, लेकिन ये पच्चीस-तीस रुपये उन्हे सिर्फ पाँच वर्ष तक ही मिले थे। ज्यादातर वह दस-बारह रुपये महीने ही पाते रहे। कक्का बडे किफायतशार थे। उन दिनो मे भी, जब गेहूँ 20-25 सेर बिकने थे, कक्का बेझर (जौ और चना का मिश्रण) ही खाते थे। वह कहा करते थे "खायेगा चना तो रहेगा बना। खायेगा गेहूँ तो जायेगा कहूँ।" उनका अभिप्राय यही था कि जो आदमी अपने जीवन-स्तर को बढ़ायेगा, उसे नौकरी करने के लिए घर से दूर जाना पड़ेगा। कक्का ने आगरा जिले



स्वर्गीय बहिन रामप्यारी जी

की भिन्न-भिन्न तहसीलो मे काम किया था। शमसाबाद मे वह पद्रह बरस रहे थे और वहाँ उन्होने छात्रो को तथा छात्रो के लडको को भी पढ़ाया था। जगनेर मे वह आठ वर्ष रहे थे। हमारे तीस रुपये महीने पर नौकर हो जाने के बाद भी कक्का साल मे एक बार अपने शिष्यो के पास चक्कर लगा आते थे और उनसे दस-बारह रुपये भेंट मे वसूल कर लाते थे। हमे इससे बुरा महसूस होता था, पर कक्का कहते "अगर कोई चेला श्रद्धापूर्वक कुछ भेंट करता है तो लेने मे बुराई भी क्या है?"

कक्का की किफायतशारी यद्यपि हद तक पहुँची हुई थी, फिर भी मौका पडने पर वह बडी उदारतापूर्वक खूब खर्च भी कर देते थे। प्रबन्धकर्ता वह अव्वल नम्बर के थे। वेतन बहुत कम होने पर भी हमारे घर मे कभी किसी चीज की कमी नही रहती थी। पानी पीने के बतन हमेशा स्वच्छ रखते थे। जाडे के कपडे पहले से बनवा देते थे, ताकि दर्जी का अधिक पैसे न देने पडे। एक पसन्ना (मिट्टी का एक बर्तन) भरा हुआ घी बराबर घर मे मौजूद रहता था। पद्रह-पद्रह बरस तक यद्यपि उन्होने स्वय घी का स्वाद नही जाना, रूखी रोटी ही खाई—लेकिन हम लोगो को किसी चीज की कमी महसूस नही होने दी। आगरा हमारे यहाँ से अट्ठा न दूर है। जब मैं मैट्रिक का इम्तिहान देने वाला था, कक्का अट्ठाइस मील पैदल चलकर ग्यारह रुपये प लिए आगरा पहुँचे थे। वह दिन भर पैदल चलकर रात को बेलनगज मे ठहर गये और फिर सवेरे त कर जब चार बजे 'चौबे बोर्डिंग हाउस' पहुँचे तो उस समय उन्होने मुझे कडवे तेल के दीपक की रोशनी मे पढते हुए पाया था। इस बात से वह बहुत प्रसन्न हुए कि मैं प्रात काल उठकर पढ रहा था। उन दिनो ग्यारह रुपये भेजने मे शायद मनीआर्डर की फीस दो आने ही लगती थी, पर कक्का भला दो आने क्यो खर्च करने लगे!

फिजूलखर्ची से कक्का को सख्त नफरत थी। अगर गेहूँ के चार दाने भी घर मे पड़े हुए दीख पडते तो वह बहुत नाराज होते। चूँकि उनकी आवाज बहुत बुलन्द थी, इसलिए वह दूर-दूर तक पहुँच जाती थी। कभी-कभी तो बाहर वालो को यह भ्रम हो जाता था कि इस घर मे कोई लडाई-झगडा हो रहा है। कक्का का तकियाकलाम था—"का नाम जो है सो" और जब वह नाराज होते थे तो इन शब्दो का बार-बार प्रयोग करते थे। यह बतलाने की आवश्यकता नही कि हम सब अत्यन्त निर्धन थे। विवाह के बाद भी निर्धनता इतनी अधिक थी कि न तो कक्का के पास और न माता जी के पास ही जाडे के पर्याप्त कपडे थे। पर बहू के

लिए और बच्चों के लिए उन्होंने पूरे-पूरे कपड़े बनवा दिये थे। घर मे एक चद्दर थी, जिसे बाहर जाते समय कभी हमारी माँ, तो कभी हमारी काकी ओढ लिया करती थी। जब मैं मैट्रिक तथा एफ० ए० की पढ़ाई के लिए आगरा गया तो ग्यारह रुपये महीने मेरे मौसा, श्री चोखेलाल जी ने चार वर्ष तक भेजे थे। यदि मौसा जी इतनी उदारता न दिखलाते तो मुझे अंग्रेजी मिडिल पास करके रेल की कोई नौकरी करनी पडती। उनके ऋण से मैं जन्म-जन्मान्तर मे भी उऋण नही हो सकता।

कक्का ने 1930 या '31 मे काम करना छोड दिया था और तब तक वह पूरे पचपन बरस अध्यापन कार्य कर चुके थे, फिर भी उन्होने परिश्रम करना नहीं छोडा और अपने जीवन के एक महीने पूर्व तक वह बराबर शारीरिक श्रम करते रहे। एक रात को वह गिर पडे थे और इस कारण उन्हें मजबूरन खाट पर लेटना पडा। सन् 1875 से, जब वह ग्राम स्कूल मे अध्यापक हुए थे, 1944 तक यानी पूरे 69 वर्ष उन्होंने घर का सम्पूर्ण काम स्वय सँभाला और मुझे सारी जिम्मेदारियो से मुक्त रखा। जब कक्का का स्वर्ग-वास हुआ, मैं 52 वर्ष का हो चुका था और तब तक मैं घरेलू प्रबन्ध का 'क ख ग' तो क्या 'अ आ इ ई' भी नही जानता था। पिता का दीर्घजीवी होना किसी भी पुत्र के लिए सबसे बडी नियामत है।

कक्का ने 93 वर्ष की उम्र पाई। अन्त तक वह पैदल चलते रहे और उनका हाजमा दुरुस्त रहा। वह कभी कब्ज नही होने देते थे। कक्का की भूख बहुत अच्छी थी, पर वह भोजन-भट्ट नही थे। उनकी भूख एक परिश्रमी मजदूर की भूख थी। अपने जीवन मे वह कम-से-कम डेढ़-दो लाख मील पैदल चले होगे। जैसा कि प्राय होता है, दीर्घजीवी आदमी के जीवन मे अनेक दुर्घटनाएँ घट जाती है और कक्का पर तो कई वज्रपात ही हुए। मेरी छोटी बहन का स्वर्गवास हो गया, दूसरी बहन विधवा हो गई, मेरी पत्नी चल बसी और सबसे भयकर दुर्घटना यह हुई कि मेरे छोटे भाई रामनारायण का देहान्त 28 वर्ष की उम्र मे हो गया था, जबकि कक्का लगभग 80 वर्ष के थे। कक्का ने इन महान् दु खो को बडे धैर्य के साथ सहा।

● ●

पूज्य माताजी के विषय मे अधिक बतलाने की आवश्यकता नही। वह रामायण की बडी प्रेमी थी और उन्होने इकतीस बार सम्पूर्ण रामायण का पाठ किया था। हमारी नानी भी रामायण की भक्त थी और उनके भाई रामायण के अच्छे ज्ञाता थे। माता जी का अधिकाश जीवन गरीबी मे ही बीता। वह बडे मधुर स्वभाव की थी। रामायण ने उनके जीवन को अत्यन्त सुसस्कृत बना दिया था। चूंकि हमारी ननसाल मे वैद्यक होती थी, इसलिए माता जी भी छोटी मोटी औषधियाँ जानती थी और मुहल्ले की स्त्रियो को खाँसी इत्यादि की दवाई दिया करती थी। अनेक स्त्रियो मे दूसरो की निन्दा या चबाव-चर्चा करने का दुर्गुण होता है, पर वह उससे सर्वथा मुक्त थी। एक बार किसी स्त्री ने किसी लडकी की चरित्रहीनता की चर्चा की। माता जी ने उन्हे बहुत फटकारा और कहा, "अगर किसी मे गलती हो जाय तो उसको छिपाना चाहिए, न कि उसकी चर्चा या प्रचार करना चाहिए।"

अम्मा ने जीवन-भर प्राय कष्ट ही पाये, लेकिन उन्होने बराबर सतोष से काम लिया। मेरी नौकरी लग जाने पर उनको कुछ आर्थिक सुविधा हो गयी थी। जब मैं नियमित रूप से घर पर दस-बारह रुपये महीने भेजने लगा—उन दिनो मुझे तीस रुपये ही मिलते थे—तो उसका माता जी पर काफी प्रभाव पड़ा। अम्मा को रामायण कण्ठस्थ थी और उसका प्रयोग भी वह बडी खूबी से करती थी। जब मैं मन्दाग्नि से

पीड़ित हो मरणासन्न हो गया तो हमारी ननसाल के राजवैद्य हकीम बाबूराम जी, जो अम्मा के भतीजे होते थे, मैंनपुरी मे पधारे और उन्होने मुझे स्वस्थ करके मेरे जीवन की रक्षा की। जब वह चलने लगे तो माताजी ने रामायण की चौपाई का वह अश उद्धृत किया जिसे भगवान राम ने हनुमान जी से कहा था, "नाहि न तात। उऋण मैं तोही।"

कक्का और अम्मा का एक मधुर मजाक हमारी बहन ने सुनाया था। जाडे के कपड़े न पिताजी के पास थे, न माताजी के पास। कक्का ने मजाक मे कहा, "तमाखू खान वारेन को जाडो थोरे ही लगत है।" अम्मा ने जवाब दिया, "जाडो तो तन्दुरुस्त आदमी को नाँय लगै।" कक्का स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। यही कारण है कि उन्होने इतनी लम्बी उम्र पाई। माता जी का मुझ पर बडा स्नेह था और वह अक्सर कहा करती थी, "जो इच्छा तुम करोगे, वह पूरी होगी।" और पूज्य पिताजी कहते थे, "जो इच्छा करिहो मनमाही, राम कृपा कछु दुर्लभ नाही।" माता-पिता का यह आशीर्वाद ही मेरे जीवन का सबसे बड़ा सहारा रहा है।

2

मेरा विद्यार्थी जीवन

मेरे विद्यार्थी जीवन का प्रारभ सन् 1900 मे हुआ और अन्त सन् 1913 मे। छह बरस हिन्दी मिडिल पास करने मे लगे, फिर सात वर्ष अग्रेज़ी की इटर परीक्षा उत्तीर्ण होने मे। गरीबी के कारण मैं बी० ए० क्लास मे दाखिल ही नही हो सका। पिता जी का वेतन उस समय बारह रुपये महीना था और हम लोग घर मे आठ प्राणी थे। माता-पिता, हम चार भाई-बहनें, हमारी ताई और बुआ की लडकियाँ। मेरा विवाह सन् 1909 मे हो गया था, लेकिन गौना 1912 मे हुआ। इस प्रकार घर मे नवे प्राणी का प्रवेश हुआ। बारह रुपये महीने मे इतने जीवो की भोजन-व्यवस्था ही अत्यन्त कठिन थी, फिर भला उच्च कक्षाओ मे मेरी पढाई कैसे हो सकती थी ! उन दिनो मैट्रिक तथा इण्टर की पढ़ाई के लिए आगरा जाना होता था। वहाँ पर मुरादाबाद के राजा श्री जयकृष्णदास जी का बनवाया हुआ एक छात्रावास था जिसे 'चौबे बोर्डिंग हाउस' कहते थे पर जिसका वास्तविक नाम था, 'पाठक बृन्दावन वैदिक आश्रम'। लोग राजा साहब का नाम भूलते जा रहे है। यह वही राजा साहब थे जिन्होने स्वामी दयानन्द जी के 'सत्यार्थ-प्रकाश' का प्रथम सस्करण अपने खर्च से छपवाया था।[1] उनके पौत्र सर जगदीश प्रसाद आगे चलकर वायसराय की कौंसिल के सदस्य बने। चतुर्वेदी समाज उनका और उनके कुटुम्ब का अत्यन्त ऋणी है। वह छात्रालय अब भी विद्यमान है। उससे पचासो विद्यार्थियो ने लाभ उठाया है। मुझे उस छात्रावास से पाँच रुपये महीने की छात्रवृत्ति भी मिलती थी और आगे चलकर फीस भी आधी हो गयी थी। इस प्रकार पूज्य मौसाजी के ग्यारह रुपये महीने की सहायता से मैं अग्रेजी मे एफ० ए० पास हो सका। मौसा जी मुझे बी० ए० की पढाई के लिए भी मदद देने को तैयार थे, पर कक्का साहब के भार को कुछ हलका करने के लिए मुझे नौकरी करनी पडी। ग्रेजुएट बनने की मेरी लालसा मन मे रह गयी।

अपने इस तेरह वर्षीय जीवन की मुझे अनेक मधुर स्मृतियाँ हैं जिनमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं— अपने अध्यापको की। चूंकि मैं एक मुदर्रिस पिता का पुत्र था, इसलिए अध्यापको का विशेष कृपापात्र बन गया। हिन्दी मिडिल तक पढने मे मुझे प० कुजीलाल जी, प० बाँकेलाल जी और प० छिगामल जी, इन तीनो मास्टरो से पढना पडा, जिनमे पिछले दो हमारी जाति के ही नही, हमारे मुहल्ले के भी थे और हमारे कक्का के साथी

1. उन्होंने सर सैयद अहमद खाँ को भी अलीगढ़ के एंग्लो ओरिएटल कॉलिज खोलने के लिए चन्दा दिया था।

तथा मित्र भी थे। प० बाँकेलाल जी को हम लोग 'मरखने पण्डित जी' कहा करते थे। स्कूल मे सबसे अधिक रुआब उन्ही का था। आलसी लडके उनके डर मे थरथर काँपते थे। हम लोग यह ड्यूटी एक लडके के सुपुर्द कर दिया करते थे कि वह देखता रहे कि मरखने पण्डित जी कहाँ पहुँच गये हैं। रास्ते मे चौबे रामलाल की दुकान पडती थी और घर से आते वक्त पण्डित जी उस दुकान पर पाँच मिनट के लिए बैठ जाते थे। बस तभी से क्लास मे हम लोगो का ऊधम बन्द हो जाता था और उस दुकान से चलते ही लडके कहते, "डाकगाडी ने टूडला स्टेशन छोड दिया है।" पण्डित जी के हाथ मे एक लकडी रहती थी जिसका प्रयोग वह आवश्यकता के अनुसार निस्सकोच भाव से किया करते थे। वह इस सिद्धान्त के अनुगामी थे कि लडके की पिटाई न की जाये तो वह बिगड जाता है। बात यह थी कि गणित का कठिन विषय उनके सुपुर्द था और उन दिनो गणित को ही अधिक महत्त्व दिया जाता था। जो विद्यार्थी गणित मे फेल हो जाता, उसे अगली कक्षा मे ही नही चढ़ाया जाता था। इस प्रकार मरखने पण्डित जी की जिम्मेदारी सबसे भारी थी और यदि वह कठोर नियत्रण न रखते तो आगे चलकर हिन्दी मिडिल के अनेक विद्यार्थी फेल हो जाते। इसके विपरीत उनके ही बडे भाई प० छिगामलजी अत्यन्त भोले-भाले और सहृदय व्यक्ति थे और उन्होने अपनी जिन्दगी मे शायद ही किसी विद्यार्थी को कभी पीटा हो।

स्वय हमारे पिता जी बडे कठोर शिक्षक थे। यह उन दिनो की बात है जब विद्यार्थियो को बुलाने के लिए शिक्षको को उनके घर जाना पडता था। कोई-कोई नटखट विद्यार्थी तो पेड पर चढ जाता और उसको वहाँ से उतारना आसान काम न होता। ग्रामो के विद्यार्थी प्राय उद्दड होते थे पर कक्का का घूँसा न० एक खाने वाले छात्र को जन्म-भर उसकी याद रहती थी। मुझे सिर्फ एक बार घूँसा न० दो खाने का मौका मिला, सो इस कारण कि मैंने चक्कू से कक्का की लाठी को छील डाला था। उस न० दो की याद करके अब भी कँपकँपी आ जाती है। एक बार जब कक्का ने हमारे चिरजीव गुपलेश को घूँसा न० दो खिलाया तो हमारी अम्मा बडी नाराज हुई और कक्का को बडी डाँट पिलाई। हिन्दी मिडिल मैंने फर्स्ट डिवीजन से पास किया और उसके बाद मै मिशन स्कूल के छठे दर्जे मे दाखिल हो गया। उन दिनो उमे स्पेशल क्लास कहते थे। अपनी मातृभाषा मे सब विषय पढ़ लेने पर आगे चलकर उन्हे अग्रेजी के द्वारा पढने मे बडी सुविधा होती थी। स्पेशल क्लास के विद्यार्थी प्राय अपनी कक्षाओ मे सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते थे और इसी कारण मैं भी छठे, सातवें और आठवें दर्जे मे अव्वल रहा।

आगरा के विद्यार्थी जीवन मे मैं रामायण के प्रसिद्ध टीकाकार प० रामेश्वर भट्ट, हमारे हेड-मास्टर सी०ए० डाबसन, प० किशनलाल जी, श्री घीसूलाल जी, श्री चन्द्रपुरी गोस्वामी और श्री एकनाथ बनर्जी का विशेष कृपापात्र था। भट्टजी खूब हँसते और हँसाते रहते थे। एक दिन उन्होने मुझसे कहा, "चौबे, कल तुम रामानन्दी तिलक लगाकर आना।" मैंने निवेदन किया, "मेरा उसमे तो विश्वास ही नही है।" पण्डित जी ने कहा, "इससे क्या, हमारा आदेश है।" दूसरे दिन रामानन्दी तिलक लगाकर गया तो लडके खूब हँसने लगे। इस पर मैंने भट्ट जी से शिकायत की तो वह बोले, "देखो चौबे! अगर तुम पैसा खर्च करके इनको मिठाई खिलाते तो भी तुम्हारे साथी इतने खुश न होते। तुमने तो इनको मुफ्त मे प्रसन्न कर दिया। यह क्या कम बात है!" पण्डित जी के इस उपदेश का मुझ पर गहरा असर पडा। इस ससार मे दु खो और चिन्ताओ का इतना अधिक भाग है कि लोगो को हँसाने वाला व्यक्ति आसानी से लोकप्रियता प्राप्त कर सकता है। अपना मजाक उडाना भी एक कला है, जो मुश्किल से सीखी जा सकती है। मैंने उस कला का कुछ अभ्यास किया है

और साढे चौदह वर्ष तक महाराज ओरछा के यहाँ मुख्यतया उस कला के बलबूते पर अपनी जीविका चलाता रहा हूँ। श्री चन्द्रपुरी गोस्वामी की नियमबद्धता, प० किशनलाल जी की हास्यप्रियता और श्री घीसूमल जी की चारित्रिक दृढ़ता का मुझ पर काफी प्रभाव पड़ा था। लेकिन यदि कोई मुझसे पूछे कि तुम्हे अपने जीवन मे सर्वश्रेष्ठ शिक्षक कौन मिला, तो मैं निस्संकोच कहूँगा—हमारे गणित के अध्यापक श्री एकनाथ बनर्जी। पूरे दो साल तक मैं दो-दो पीरियड रोज़ उनसे पढता रहा और मुझे एक दिन भी ऐसा याद नही आता, जब उन्होने किसी भी प्रकार का प्रमाद या एक मिनट का अपव्यय ही किया हो। क्लास मे विद्यार्थियो के बैठते ही वह अपना काम शुरू कर देते थे और लगातार डेढ घण्टे तक गणित पढ़ाया करते थे। अपने जीवन मे सिर्फ एक बार वह कॉलेज मे लेट पहुँचे थे सो भी तब, जब आगरा मे भयकर हिन्दू-मुस्लिम दगा हो गया था और पुलिस ने उन्हे सीधे कॉलेज जाने से रोक दिया था। यद्यपि उनके वहाँ पहुँचने की कोई आवश्यकता नही थी, फिर भी घूम-फिरकर कॉलेज पहुँच ही गये। हाँ, इसमे उन्हे बीस-पचीस मिनट का विलम्ब हो गया। अपने शिक्षक जीवन मे उन्होने जिस नियमबद्धता और परिश्रमशीलता का परिचय कम-से-कम तीस-पैंतीस बरस तक दिया था, उसका उदाहरण आगरा विश्वविद्यालय मे कठिनाई से ही मिलेगा। हमारे सहपाठी श्री चम्पाराम जी चतुर्वेदी भी बनर्जी साहब की तरह ही सुयोग्य शिक्षक रहे थे। इसमे कोई सन्देह नही कि ऐसे शिक्षक वन्दनीय है और उनका महत्त्व राजनैतिक नेताओ से कही अधिक बढकर है।

एफ० ए० के प्रथम वर्ष मे मुझे कला विभाग मे अव्वल आने पर प्रथम पुरस्कार महामना मालवीय जी के करकमलो से मिला था। अग्रेज़ी के 143 विद्यार्थियो मे मेरे नम्बर सबसे ऊँचे थे और इतिहास तथा सस्कृत मे भी मैं प्रथम था। हाँ, गणित के 40 विद्यार्थियो मे मेरा नम्बर तीसरा था। उन दिनो मेरी स्मरण-शक्ति इतनी अच्छी थी कि इतिहास के पृष्ठ-के-पृष्ठ मैं याद कर सकता था। द्वितीय वर्ष मे उस स्मरण-शक्ति का ह्रास हो गया, इसका मुख्य कारण मेरा असयत जीवन ही था। याददाश्त एक ऐसी मशीन है जो बडी सँभाल के साथ ही सुरक्षित रह सकती है। इटर की परीक्षा मैं केवल द्वितीय डिवीजन मे ही पास कर सका।

मेरा छोटा भाई (स्व०) रामनारायण कभी-कभी अभिमान के साथ कहा करता था, "हिन्दी तो हमने माँ के दूध के साथ पी है।" जिस दिन प० रामेश्वर भट्टजी ने निबन्ध मे हमे 5 मे से 4 नम्बर दिये और कहा, "चौबे, तू अच्छा लिख लेता है," उसी दिन सम्भवत मेरे लेखक-जीवन का प्रारम्भ हो गया। मेरा प्रथम लेख 'स्वावलम्बन' काशी के 'नवजीवन' मे मई-जून सन् 1912 के अक मे छपा था। स्व० केशव जी शास्त्री उस पत्र के सम्पादक थे। उस लेख मे शब्दाडम्बर की भरमार थी। एक वाक्य सुन लीजिए

"तात्पर्य यह है कि यदि हम परतन्त्रता की वैतरणी नदी को पार कर स्वतन्त्रता रूपी स्वर्ग-लाभ किया चाहते है तो हमे आत्मविलम्बन रूपी गाय की पूंछ पकडनी चाहिए।"

'मर्यादा' के जुलाई सन् 1912 के अक मे प्रकाशित मेरे लेख ने सारी क्लास पर सकट ला दिया। लेख का शीर्षक था, 'औरगज़ेब के जीवन पर एक दृष्टि'। उन दिनो प्रोफेसर ईश्वर प्रसाद जी हमारे यहाँ आगरा कॉलेज मे इतिहास पढ़ाया करते थे और कभी-कभी अनुवाद सिखाने का कार्य भी ले लिया करते थे। औरगज़ेब के विषय मे एक पुस्तक पढाई जाती थी। उसी के आधार पर लिखकर मैने वह लेख 'मर्यादा' को भेज दिया और उसके सुयोग्य सम्पादक प० कृष्णकात जी मालवीय ने मुझे प्रोत्साहन देने के ख्याल से उसे छाप भी दिया। हमारे किसी साथी ने 'मर्यादा' का अक प्रोफेसर साहब को दिखला दिया। वैसे भी मैं उनका

कृपापात्र था । वह मेरी गरीबी को जानते थे और उन्हे यह भी पता था कि मेरे पिता जी एक मामूली मुदर्रिस हैं, इसलिए मेरे साथ उनका व्यवहार बहुत ही सहृदयतापूर्ण था । अपने प्रिय शिष्य की इस करामात पर वह बडे प्रसन्न हुए । क्लास के सामने उन्होने मेरी प्रशसा भी की और उक्त लेख का कुछ अश अनुवाद को दे दिया । 'मर्यादा' की उन दिनो बडी धाक थी । सरस्वती के बाद उसी का नम्बर था और उसमे किसी नवयुवक के लेख का प्रकाशित हो जाना निस्सन्देह गौरवजनक था ।

'मर्यादा' के बाद तो अन्य पत्रो मे लेख छपना और भी सरल हो गया ।

उन्ही दिनो जब मैं नवें या दसवे दर्जे का विद्यार्थी था मैंने कविवर सत्यनारायण जी के दर्शन किये । जब महामना मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए चन्दा करने आगरा पधारे थे, उस समय कविरत्न जी ने उनके स्वागत मे एक कविता पढी थी । इस मधुर कविता की ध्वनि अब भी मेरे कानो मे गूंज रही है । मालवीयजी ने सत्यनारायण जी को अपने पास बुलाकर उनकी पीठ ठोकी थी और बहुत प्रोत्साहित किया था । उन्हे बहुत बरसो तक सत्यनारायण जी का स्मरण रहा । और जब सन् 1925 मे मैंने उन्हे सत्यनारायण जी का जीवन-चरित भेट किया तो उन्होने उसे न केवल पढा बल्कि उसकी आलोचना भी की । उन्होने मुझसे कहा, "तुमने सत्यनारायण जी के गार्हस्थ्यक जीवन पर जो कुछ लिखा है, उसे छोड देते तो ठीक होता । अंग्रेज़ लेखक अपने कवियो की चारित्रिक त्रुटियो पर अधिक प्रकाश नही डालते । बहुत बचाकर लिखते है । तुमने तो भण्डाफोड ही कर दिया है । यह अनुचित है ।"

3

मेरा भी एक भाई था

मिलहि न जगत सहोदर भ्राता ।

—तुलसीदास

दिसम्बर सन् 1908 "बनारसी उठो तो सही । दाई के घर हमारे साथ चलना है ।" दादा केशवदेव ने रात के चार बजे कहा । मैं हडबडी मे उठ बैठा और दादा के साथ हो लिया । दाई का घर कोई मील-भर दूर था । हम लोग उसे बुला लाये । दो घण्टे बाद एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम रखा गया रामनारायण, जिसे हम सब प्रेमपूर्वक 'पटे' के नाम से पुकारते थे ।

पटे उम्र मे मुझसे सोलह साल छोटा था और उस समय काका 56 वर्ष के थे । वह उनकी अन्तिम सन्तान था । पटे को अम्मा और कक्का ने बड़े स्नेहपूर्वक पाला था । परिणामस्वरूप पटे ने माता-पिता, दोनो के सद्गुणो को ग्रहण कर लिया था ।

पटे अक्सर कहा करता था, "हिन्दी प्रेम तो हमने अपनी माँ के दूध के साथ पिया था, जिन्होने इक्कीस बार रामायण का पाठ किया था और हमारे कक्का को हजारो कवित्त कण्ठस्थ थे । हिन्दी काव्य के समझने के लिए हमे घर से दूर जाने की ज़रूरत नही ।"

निस्सदेह पटे का हिन्दी विषयक ज्ञान असाधारण था । सम्मेलन की विशारद परीक्षा उसने पास की थी । उस समय की एक घटना मुझे अब भी याद है । सम्मेलन वालो की अव्यवस्था के कारण विशारद के पर्चे फीरोज़ाबाद केन्द्र पर पहुँचे ही नही । पटे ने परीक्षा की सब तैयारी कर ली थी अत उसे बडी निराशा हुई । उसी वक्त मैंने यह तय किया कि जल्दी से आगरे जाने वाली ट्रेन पकडी जाय और नागरी प्रचारिणी सभा मे पटे को बिठलाया जाय । ट्रेन के आने मे पच्चीस मिनट की देरी थी और स्टेशन मील-सवा मील की दूरी पर था । हम दोनो बेतहाशा भागे और ट्रेन पकड ली ।

हम लोग भाई हरिशकर जी के यहाँ ठहरे । पटे उन दिनो भोजन-सम्बन्धी नियमो मे काफी कट्टर था और अन्य किसी ब्राह्मण के यहाँ की भी कच्ची रसोई नही खाता था । अतएव भाई हरिशकर जी को ख़ास-तौर पर उसके लिए पूडियाँ बनवानी पडी ।

एक बार हरिशकर जी ने पटे से पूछा, "तुम्हारे दादा तो हमारे यहाँ की कच्ची रसोई खा लेते हैं, तुम्हे क्या एतराज़ है ?" पटे ने तुरन्त उत्तर दिया, "दादा तो भ्रष्ट हो गये हैं ।" हरिशकर जी पटे के इस

जवाब की याद करके अक्सर हँसा करते थे। आगे चलकर पटे की यह कट्टरता स्वय ही दूर हो गयी। जब मैं पटे के साथ लखनऊ गया था और रत्नाकर जी के घर पर ठहरा था, उस समय भी पटे के लिए पक्की रसोई का प्रबन्ध कराना पडा था। आचार्य प० पद्मसिंह जी उस समय हमारे साथ थे। तभी से वह आचार्य का कृपापात्र बन गया था।

पटे को इस बात की शिकायत थी कि उसके लेख मैं 'विशाल भारत' मे नहीं छापता, और उसने यह बात प० पद्मसिह जी को लिख भी भेजी थी। उन्होने अपने एक पत्र मे मुझको डाँट पिला दी। आगे चलकर पटे के दो-तीन लेख मैंने छाप भी दिये थे। आज मुझे इस बात का हार्दिक पश्चात्ताप है कि पटे की साहित्यिक प्रतिभा के विकास के लिए मैंने कुछ भी नही किया। जितना समय मैंने हिन्दी के अन्य लेखको तथा कवियो को अर्पित किया उसका शताश भी यदि मैं पटे को दे सकता तो वह भी एक प्रतिष्ठित लेखक बन गया होता। पर सार्वजनिक कार्यकर्ता के जीवन का एक अभिशाप होता है कि उसके घरवालो की प्राय उपेक्षा हो जाती है। अपनी एक कहानी 'सम्पादक की समाधि' मे मैंने एक वाक्य लिखा है "जो आदमी अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए अपने अधीनस्थो के व्यक्तित्व का विनाश करता है, वह पापी है, अधम है, नीच है, पामर है।" यह अपराधी आत्मा की स्वीकारोक्ति ही थी।

पटे पद्मसिह जी का अनन्य भक्त था और आचार्य जी भी उससे मिलने के लिए लोहामण्डी से 'चौबे बोर्डिंग' अक्सर जाया करते थे। उन्होने पटे को सस्कृत पढाने की बात भी कही थी। वैसे बी० ए० मे पटे ने सस्कृत ली थी। अपने अन्तिम दिनो मे सितम्बर सन् 1936 मे पटे ने मुझसे कई बार कहा था, "दादा, तुम सब काम छोडकर प० पद्मसिह का जीवन-चरित लिख दो।" मैंने पटे को उस समय यही उत्तर दिया था, "पटे तुम पहले स्वस्थ हो जाओ, फिर हम-तुम दोनो मिलकर यही पुण्य कार्य करेंगे।"

दुर्भाग्यवश पटे का स्वर्गवास 6 अक्टूबर, सन् 1936 को हो गया और प० पद्मसिह जी की जीवनी लिखने का विचार जहाँ का तहाँ पडा रहा। एक बार मैंने लिखने का निश्चय भी किया और जीवन-चरित के भिन्न-भिन्न विभाग भी करा लिए। कुछ काम आगे बढा भी पर फिर वह बन्द कर देना पडा।

'विशाल भारत' के पद्मसिह अक के लिये पटे ने अपने सस्मरण भी लिखे थे जिनका अन्त इस उर्दू कविता मे किया था—

"कोई बैठ के लुत्फ उठायेगा क्या,
जब रौनके बज्म, तुम्ही न रहे।"

अर्थात्—कोई आदमी आनन्द कैसे लेगा, जब सभा की रौनक आप ही नही रहे।

एक बार फुटबाल खेलते हुए पटे की टाँग टूट गयी थी और उसे महीने-भर खाट पर पडा रहना पडा था। उस समय मैंने उसे कुछ चिट्ठियाँ भी भेजी थी, जिन्हे उसने बहुत सम्हाल कर रखा था। मुझे पत्र लिखने का व्यसन है। जिन्दगी मे शायद लाख-डेढ लाख चिट्ठियाँ तो मैंने भेजी ही होगी। आज भी सौ रुपये महीने के लगभग पोस्टेज इत्यादि पर खर्चा प्रतिमाह करना पडता है, पर पटे मेरे पत्रो के लिए तरसता रहता था। एक बार मैंने उसे लिखा था "लुकास द्वारा लिखित 'जेंटल आर्ट' नामक किताब आगरा कॉलिज लाइब्रेरी से लेकर भेज दो।" पटे ने वह किताब तो भेज दी पर साथ ही लिखा "दादा, तुम खुद बहुत बढिया पत्र लेखक हो। लुकास की किताब से तुम्हें कुछ भी सीखने की जरूरत नहीं।"

पटे की उस उक्ति को मैंने तब भी अत्युक्तिमय समझा था और और आज भी यही मानता हूँ।

एक बार जीवन मे निराशा का ऐसा 'मूड' आया कि दिल्ली, पूना, काशी इत्यादि के सम्मेलनो के अवसर पर कई विभागो के सभापतित्व का जो सम्मान मुझे मिलने वाला था उसे मैंने सधन्यवाद अस्वीकृत कर दिया । पटे को इससे बहुत बुरा लगा। उसने मुझे लिखा, "तुमको जो गौरव मिलता है, उसमे हमे भी खुशी होती है । दादा, तुम उसे अस्वीकृत क्यो कर देते हो ?" पटे के हृदय मे मेरे लिए अत्यन्त स्नेह था । अपने अन्तिम दिनो मे उसने काश्मीर की यात्रा की थी और वहाँ बहिन सत्यवती मलिक के भी दर्शन किये थे और उनसे बहुत प्रभावित भी हुआ था। पटे ने मुझे लिखा था "दादा, मुझे इस बात से बहुत दुख हुआ कि तुम आर्थिक कठिनाइयो के कारण काश्मीर यात्रा नही कर सकते । मैं उसका प्रबन्ध करूँगा, तुम निश्चित रहो ।"

गुलमर्ग मे पटे एक खड्ड मे गिरते-गिरते बचा। उसका पैर फिसल गया, पर खैरियत यह हुई कि एक लकडी मे उलझ जाने के कारण वह कई सौ फुट नीचे गड्ढे मे गिरने स बच गया ।

अन्तिम बीमारी के दिनो मे पटे मेरे पास कलकत्ता आ गया था। उसने उन दिनो कई बार था, कहा "कक्का मर्द आदमी है। लाला (चि०बुद्धिप्रकाश) बहुत होशियार लडका है।"



छोटे भाई स्वर्गीय रामनारायण चतुर्वेदी

जापान से लौटे हुए एक भारतीय विद्यार्थी हमारे यहाँ पधारे । उन्हे पटे की एक कविता कण्ठस्थ थी, सो उन्होने पटे को सुना दी। हम दोनो को बडा हर्ष हुआ ।

पटे को टाइफाइड (मोतीझला) हुआ था और जैसा कि अक्सर होता है वह बीमारी किसी न किसी अग पर अपना खराब असर छोड जाती है। पटे की नेत्र-ज्योति पर टाइफाइड ने अपना दुष्प्रभाव छोड दिया था। यह तय किया गया कि पटे की रीढ़ की हड्डी से रस निकाला जाय । उसी क्रिया का पटे के स्वास्थ्य

पर विघातक असर हुआ। सुना है कि हजार मे सिर्फ एकाध केस मे ही ऐसा हुआ करता है। मैं इन बातो से सर्वथा अनभिज्ञ था और पटे की बीमारी को मामूली ही समझता रहा। जब डॉक्टर बुलाया गया तो उसने स्थिति गम्भीर बतलाकर तुरन्त कारमाइकेल अस्पताल भेजने का आदेश दिया। अस्पताल से एम्बुलेंस मँगाई गयी और पटे को वहाँ भेज दिया गया।

साथ में मुझे भी अस्पताल जाना था, पर मैं जा नही सका। मैं थका हुआ था और दोपहर का सोना मेरे लिए अनिवार्य था। इसलिए मैं विश्राम करने के लिए लेट गया। दो घण्टे बाद मैं भडभडा कर उठ बैठा और मैंने अंग्रेजी मे कहा, "मदर, पटे कैन नॉट डाई। देअर इज सो मच ऑफ वर्क टू बी डन फॉर सोशलिज्म।" (अम्मा पटे मर नही सकता, क्योंकि समाजवाद के लिए अभी तो बहुत काम करना बाकी है।)

चूँकि मैं लगभग 54-55 वर्षों से अंग्रेजी द्वारा ही अपना मानसिक भोजन लेता रहा हूँ, मेरे मुँह से अंग्रेजी वाक्य ही निकल गये।

बहुत वर्षों तक मैं यही मानता रहा कि पटे का स्वर्गवास हुआ ही नही। कई बार पटे ने स्वप्न मे मुझसे कहा भी, "दादा, मैं तुम्हारे जीवन के साथ जीवित हूँ। तुम अपनी तन्दुरुस्ती का ख्याल रखो। अपने स्वास्थ्य की हानि करके मेरी डबल मौत मत करना।"

पटे के स्वर्गवास के बाद जितनी बार मैंने उसको याद किया है, उतनी बार उसके 28 वर्षीय जीवन मे भी नही किया था। मैं उसकी उपस्थिति का अनुभव प्राय करता रहा हूँ और मेरा अब यह दृढ विश्वास हो गया है कि जिन्हे हम प्रेमपूर्वक स्मरण करते हैं, वह मरते नही। उन्हे भुलाकर हम विस्मृति के गढ़े मे भले ही ढकेल दें।

पूज्य महात्मा जी ने हमारे कक्का के स्वर्गवास पर हमे लिखा था, "और मरता है कौन ? जीव तो हर्गिज नही, जिसके साथ हमारा सम्बन्ध था और है और रहेगा।"

इस सिद्धान्त के अनुसार पटे की आत्मा अब भी जीवित है और समय-समय पर मुझे वह सावधान भी करती रहती है।

जब कारमाइकेल अस्पताल से 'विशाल भारत' ऑफिस को फोन पहुँचा कि पटे का स्वर्गवास हो गया तो ब्रजमोहन वर्मा ने मेरे पास वह दु खद समाचार भेज दिया। मैं अस्पताल गया और वहाँ काले पर्दे के भीतर पटे की लाश को देखा। वह मेरे जीवन की सबसे बडी दुर्घटना थी। मैं चाहता था कि कोई सहानुभूति युक्त आदमी मुझे वहाँ मिल जाता जिससे मैं यह कह सकता, "यह लडका फर्स्ट क्लास फर्स्ट एम० ए है। कॉलेज मे अध्यापक रह चुका है। मेरा छोटा भाई है।" पर अस्पताल मे तो सभी अजनबी थे।

पटे चला गया। महात्मा जी ने किसी से उसके स्वर्गवास का समाचार सुनकर लिखा था "भाई रामनारायण जिस रास्ते गये हैं उस रास्ते हम सभी को जाना है, केवल समय का ही फर्क है।"

बापू की बात बिल्कुल ठीक थी। पर बकौल कविवर मैथिलीशरण जी गुप्त—"पर अन्त तक रोते रहेंगे हम तुम्हारे शोक मे।"

पटे की मृत्यु से हृदय को जो घाव लगा वह अब तक नही भरा। आज उस दुर्घटना को 47 वर्ष से अधिक हो चुके हैं।

पटे को तो जाना ही था—हम सभी को जाना है—पर कई बातें मेरे हृदय मे काँटे की तरह खटकती रहती हैं। पहली बात तो यह है कि मैं पटे की बीमारी मे कोई तीमारदारी नही कर सका। मैंने

नर्सिंग का काम सीखा ही नहीं और बीमार आदमी की सेवा करने की कुछ भी सामर्थ्य मुझ मे नही है। अब मैं समझता हूँ—घर के हर बच्चे को प्रारम्भ से ही नर्सिंग की शिक्षा देनी चाहिए। दूसरी बात जो मुझे निरन्तर खटकती रहती है, वह यह है कि अपनी आर्थिक अव्यवस्था के कारण मेरे पास उन दिनो एक रुपया भी न था, यद्यपि पौने दो सौ रुपये मासिक वेतन मिलता था, जो 1936 मे अच्छा वेतन माना जाता था। पटे को होमियोपैथ डॉक्टर को दिखलाना चाहता था पर उनकी फीस, आठ रुपये मेरे पास नही थी। और तो और कफन के लिए पैसे भी नही थे जो भाई बसन्तलाल चतुर्वेदी ने दिये।

"कौडी न रख कफन को"—मेरा आदर्श रहा है। पर इसके माने यह नही कि अपने छोटे भाई के लिए भी पैसा पास न रखा जाय।

एक बात मुझे और भी बडे दुख के साथ याद आ रही है। आगरा कॉलेज की मैनेजिंग कमेटी के एक सदस्य ने पटे की पुन नियुक्ति का विरोध किया था और उसकी नौकरी छुडाकर बडे अभिमान से कहा था, "वी हैव गॉट रिड ऑफ कम्यूनिस्ट" अर्थात् "हमने एक साम्यवादी से छुटकारा पा लिया।" यह बात पटे के साथी मिस्टर काटजू ने मुझे सुनाई थी। पटे निस्सदेह प्रगतिशील विचारो का था। फ़ासिस्ट लोगो के विरुद्ध उसने लेख लिखा था। साम्यवादी कार्यकर्ताओ से वह मिलता-जुलता भी था। कृष्णस्वामी[1] से उसका परिचय था पर किसी पार्टी से उसका सम्बन्ध न था।

काटजू साहब ने मुझे बतलाया था, "पटे इधर-उधर भटकते हुए पूछता था, 'मुझे किस अपराध के लिए निकाला जा रहा है।'"

आज जब मैं पटे की उस स्थिति की कल्पना करता हूँ तो हृदय मे एक हूक-सी उठती है।

पर अब मैं समझने लगा हूँ कि नवीन सामाजिक क्रान्ति लाते समय ऐसी लाखो ही दुर्घटनाएँ होगी। यह अनिवार्य है। हज़ारो ही प्रगतिशील युवक तलवार के घाट उतारे जायेगे और लाखो की ही नौकरियाँ छूटेगी। पटे की दुर्घटना से मुझे विचलित न होना चाहिए था पर मनुष्य आखिर मनुष्य है। वह अपने निजी दुख को असाधारण महत्त्व देता है। पटे तो साम्यवादी था नही पर मैं अपने 78वें वर्ष से साम्यवादी विचारधारा का समर्थक हो गया हूँ। जिन दिनो पटे का स्वर्गवास हुआ था, फीरोज़ाबाद मे रामलीला हो रही थी। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर भगवान राम के विलाप का अभिनय हो रहा था। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने कहा—"मिलहि न जगत सहोदर भ्राता।"

इस उक्ति की सत्यता का अनुभव वही अभागे कर सकते है जिनके जीवन मे वैसी दुर्घटना घटी हो। मैं भी अभागा हूँ। मेरे भी एक भाई था जो 28 वर्ष की आयु मे चल बसा।

पुनश्च

पटे एक मेधावी विद्यार्थी था। बी० ए० मे भी उसकी पाँचवी पोज़ीशन आयी थी। वह बडा स्नेही व्यक्ति था और उसके स्वाभाविक स्नेह के कारण उसके मित्रो की सख्या काफी बडी थी। पटे के कितने ही साथी-सगी अब भी उसे प्रेमपूर्वक स्मरण कर लेते है।

1 आगरा के एक साम्यवादी कार्यकर्ता

4

धर्मपत्नी को श्रद्धांजलि

मेरी पत्नी का स्वर्गवास 30 सितम्बर, सन् 1930 ई० को हुआ था। उस दुर्घटना को अब 53 वर्ष होने को आये । इस लम्बे अर्से मे कभी भी मैंने उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित नही की, यद्यपि एक अपराधी की भाँति मैं उन्हे निरन्तर याद करता रहा। 'सम्पादक की समाधि' नामक कहानी मे मैने अपना हृदय उडेल दिया था । उस कहानी को और उसे इस अध्याय मे आगे उद्धृत भी कर रहा हूँ । यद्यपि वह कल्पित कहानी है तथापि उसमे मेरी हृदयगत भावनाओ का सजीव चित्रण हो गया है ।

यह कहना तो गलत होगा कि मैंने जान-बूझकर घर वालो पर कोई अत्याचार किया, पर उनकी उपेक्षा मुझसे अवश्य हो गयी । बात दरअसल यह हुई कि पत्रकारिता के सार्वजनिक जीवन मे फँस जाने के कारण मेरा जीवन अन्तर्मुखी होने के बजाय बहिर्मुखी बन गया। मैं सन्तोषजनक ढग पर अपने गार्हस्थक कर्त्तव्यो का पालन न कर सका । सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक एमर्सन ने शायद मेरे जैसे व्यक्तियो को ध्यान मे रखकर कहा होगा "माई लव अफार इज स्पाइट ऐट होम" । (यानी बाहर वालो से तुम्हारे प्रेम के मानी है, घर वालो से विद्वेष) ।

मेरा विवाह सन् 1909 मे हुआ पर वास्तविक गृहस्थ-जीवन सन् 1912 मे प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार मेरा गृहस्थ-जीवन कुल जमा 18 वर्ष रहा। चतुर्थ सन्तान के दस-बारह दिन बाद प्रसूति मे मेरी पत्नी का आकस्मिक देहान्त हो गया। यह कैसी दुर्भाग्य की बात थी कि चार बच्चो का पिता होने पर भी मैं प्रसूति नामक बीमारी से परिचित भी न था । तब तक आगरा मे सरोजिनी नायडू अस्पताल की स्थापना भी नही हुई थी । मैंने सुना है कि अपने प्रारम्भ से अब तक सरोजिनी नायडू अस्पताल 20-21 हजार बालक-बालिकाओ को सकुशल जन्म दे चुका है। सहस्रो माता-पिताओ के आशीर्वाद स्व० हजारीलाल जैन को प्राप्त हो चुके है ।

मेरे एकागी जीवन की भूल से दूसरे युवक कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। मैं प्रत्येक विवाहित युवक से, जो मेरे सम्पर्क मे आता है, 'सम्पादक की समाधि' पढने का अनुरोध करता हूँ। अपने बाह्य जीवन की चिन्ता मे व्यस्त रहने के कारण न तो मैं अपनी मानस सन्तान (ग्रन्थ इत्यादि) की चिन्ता कर सका और न औरस सन्तान (बाल-बच्चो) की ।

आज से इक्यावन वर्ष पूर्व 9 जनवरी, सन् 1932 को अपनी एक तुकबन्दी मे अपनी स्वर्गीया

सहधर्मिणी को इन शब्दो मे निमन्त्रित किया था। उस दिन पौष शुक्ल 2 थी और मेरी 40वी वर्षगाँठ ·

"जीवन बसत की अवाई आज देखो प्रिये,
स्वागत करे को, कूकि कोकिला सुनावौ तुम।
आशालता झूमे मन सुमन प्रफुल्लित हो,
आली बानि माली तिन्हे सफल सजावौ तुम।
जस की जुही की गन्ध जग मे पसारिबे को,
हीतल कर सीतल समीर सरसावौ तुम।
जो पै छरछन्द मे न कविता ह्वै आवौ देवि,
जीवन उद्यान मेजु सविता ह्वै आवौ तुम॥
प्रेम रस प्यासे भटकत फिरौ चाहे जितै,
भावन के भूखे बस म्हौं की ही खाओगे।
सूखि जैहै सरिता सरोवर विलीन ह्वै हैं,
जीवन की आस लै जिते ही तुम जाओगे।
मारग अकेले मे दुकेले अब ह्वै हो नाँहि,
साथी बिछुरे को कहूँ खोज हूँ न पाओगे।
व्याकुलता त्यागि मनीराम धीर धारी अब,
सूखे रस हीन वृथा वासर बिताओगे॥

जैसा ऊपर लिखा है, 'सम्पादक की समाधि' ही मेरी पूरी भावना तथा अनुवाद का प्रतीक है। वह इस प्रकार प्रकाशित हुई थी

सम्पादक की समाधि

टन नन् न्।

"हैलो हू आर यू प्लीज (आप कौन है) ?" मैने टेलीफोन पर पूछा।

"का हल्लो-हल्लो करि रए हो ? कछु पतौऊ है, कँ बजे हैं ? पाँच की गाडी से चलनौ है और साढे तीन बज चुके। हम तो तुम्हारे मारे तग है।"

"अच्छा, अच्छा ! श्रीमती जी है ! लेउ अभैई आए। फाइनल प्रूफ के लिए रुकना पडा।"

"फिनाइल रहन देउ। जल्दी आऔ।"

'देशभक्त' का वार्षिक अक निकालकर मै मदुरा, विजयनगर, सेतुबन्ध रामेश्वर इत्यादि की यात्रा पर जा रहा था। कम्पोजीटर और फोरमैन दनादन काम मे लगे हुए थे। प्रूफ आया। सरसरी निगाह से एक बार देखकर और सहकारियो से विदा ग्रहण करके मैं टैक्सी लेता हुआ घर आया। श्रीमतीजी अत्यन्त व्यस्त थी। खैरियत यह थी कि सब सामान उन्होने बाँध रक्खा था। रात के तीन बजे से उठकर वह तैयारी कर रही थी। भोजन बनाया था, कपडे ठिकाने रखे थे। नौकर का हिसाब साफ किया था, और न जाने क्या-क्या किया था। मैं सात बजे सोकर उठा, और डेली पेपर पढ़ने लग गया था। पहुँचते ही मधुर मुस्कान

के साथ उन्होंने खासी डाँट बतलाई, "तुम्हें तो कोई अंग्रेजी पढ़ी-लिखी अखबार-बाँचनबारी स्त्री मिलती, तौ तुम्हारे होस ठिकाने आउते । पाँच बरस बाद तो तीरथ करिबेको विचार करो है, सोऊ अब आइ बैठे । कछु खबर्ऊ है, का का लै चलनो है ? जब हम न रहेगे तब मालूम परैगी, कैसे घर को काम होत हैं ।"

मैंने कुछ झेंपकर कहा, "अच्छा, अबकी बार और माफ करो । कृष्ण भगवान ने शिशुपाल के सौ कसूर माफ किये थे, अभी तो हमारे चार दर्जन भी नही हुए । रही अखबार-बाँचनबारी स्त्री की बात, तो सो हमने एक ईसाइन लडकी के लिए 'देशभक्त' मे विज्ञापन दे दिया है । सहायक की हमे सचमुच ज़रूरत है । कोई-न-कोई मिल ही जायेगी । अगर बदसूरत हो, तो तुम भी उससे रोटी-ब्यालू का काम ले लेना, और खूब-सूरत हुई तो' तो अब हम का कहैं ।"

"चलौ रहन देउ, तुम्हे जेई बाते सूझिति है ।"

●

मदरास मेल से रवाना हुआ । पत्नी तीर्थ यात्रा के लिए जा रही थी, मैं जर्नलिस्टिक टूर पर था, और साथ मे चार वर्ष की लडकी सरला भी थी । तीनो अपने-अपने विचारो मे मग्न थे ।

पत्नी ने लम्बी साँस लेकर कहा, "अखबार वालो का काम भी बहुत खराब है । छुट्टी ही नही मिलती । अब पाँच बरस बाद निकास हुआ है ।" वह पिंजरे से छूटे हुए पक्षी की तरह अपने को स्वतन्त्र पा रही थी और तुलसीकृत रामायण मे से सेतुबन्ध का प्रकरण उसने पढने के लिए निकाल रखा था । मैं सोच रहा था—'विजयनगर मे 'आध्र प्रकाश' के सम्पादक मि० सुब्रह्मण्यम, एम० एल० ए० आवेगे । उनसे अनेक विषयो पर बातचीत करनी है। अगर हो सका तो दो दिन के लिए उतर जाऊँगा । सफर लम्बा है । जर्नलिस्ट एसोसिएशन के विषय मे भी बातचीत कर लूँगा ।' सरला को रेल मे चढ़ते ही भूख लग आयी थी, और वह अपनी माँ से खाना माँग रही थी । स्टेशन पर ज़िद करके उसने चार-पाँच खिलौने भी खरीदवा लिए थे और उन्हे वह इधर-से-उधर रख रही थी । हम तीनो व्यक्ति इतने पास होते हुए भी एक-दूसरे से कितनी दूर, कितने परे थे । जाते एक ही तरफ थे, मगर लक्ष्य सबका जुदा-जुदा था ।

विजयनगर म मि० सुब्रह्मण्यम मिले । आखिर ठहरना ही तय हुआ । हम लोग एक सुसज्जित बँगले मे ठहरे । श्रीमतीजी और सरला को वहाँ छोडकर मैं घूमने निकला । इस लेखक से मिला, उस जर्नलिस्ट से बातचीत की । प्रत्येक स्थान पर डेढ-दो घंटे लग गये । मैंने दिल मे सोचा, बडी देर हो गयी । जल्दी से मि० सुब्रह्मण्यम को लेकर लौटा । अपराधी की भाँति बँगले पर आया । पत्नी ने कोई शिकायत नही की, पर लडकी सरला भला क्यो चूकने वाली थी—"बडी देर मे आये, हमे क्यो नही लै गये, हमारे लयें कछु लाये, और अम्मा भूखी बैठी हैं और हमारी चिरैया टूटि गयी ।"

मैंने पत्नी को डाँटकर कहा, "बस इसी से हमारी लडाई होती है । अब तक भूखी क्यो बैठी रही ? तुलसीदास ने यह किस काण्ड मे लिखा है कि भूखी रहकर पति की आत्मा को कष्ट दो ।"

मैं यह जानता था कि वह मुझे भोजन कराये बिना स्वयं कभी नही खाती थी, चाहे दिन-भर भूखा रहना पडे, पर फिर भी मैं अपराधी उसे ही समझता था । वह चुपचाप सुनती रही। मैंने भोजन करना प्रारम्भ किया । बीच मे मैंने कहा, "भई यहाँ से दस-बारह मील दूर एक वृद्ध साधु रहते है । बडे पहुँचे हुए सुने जाते हैं । कहो तो उनके दर्शन करते चलें ।"

यह सुनते ही पत्नी के मुँह पर कुछ प्रसन्नता के लक्षण दिखाई दिये । साधु-सन्तों के प्रति उनके

हृदय में स्वाभाविक श्रद्धा थी। उन्होंने कहा, "हाँ, जरूर-जरूर !"

इस पर मैं बोला, "मगर एक बात और सुनी है। इस साधु महात्मा ने एक कठोर नियम बना रखा है, वह यह कि वह दो प्रकार के आदमियों से नही मिलते, एक तो पत्रकार अखबार वाले से और दूसरे किसी स्त्री से ।"

यह सुनकर वह निराश हो गयी। उस समय मुझे एक चालाकी सूझी। मैंने कहा, "देखो। अगर तुम एक बात पर राजी हो जाओ तो सब काम बन जाये। मर्द की पोशाक पहन लो, ऊपर से ओवरकोट डाल लो, साफा बाँध लो और सिख बन जाओ। मैं कह दूँगा कि मैं व्यापारी हूँ और ये पजाबी, टैक्सी ड्राइवर हैं। मुझसे बहुत मेल-जोल है। इस यात्रा पर रवाना हुआ तो ये भी तैयार हो गये। (मुस्कराकर) कहूँगा, बडे सज्जन आदमी हैं।"

श्रीमती कुछ परेशान-सी हो गयी। बोली, "जि तुमने बुरी सुनाई। हम मर्दन के कपडा कैसे पहने ? नाहि-नाहि, हम नही जायेंगी।"

मगर साधु महात्मा के दर्शनो का मोह ऐसा न था जिसे श्रीमतीजी आसानी से छोड देती। थोडी देर बाद राजी हो गयी।

प्रात काल मे विजयनगर के प्राचीन स्थानो को देख-भालकर तीसरे पहर हम लोग साधु जी के दर्शन के लिए चलने की तैयारी कर रहे थे। कोट-पैण्ट पहनना श्रीमती जी के लिए आसान न था। मैने कहा, "मैं पहना सकता हूँ, नेकटाई भी बाँध दूँगा, पर पहनाई देनी पडेगी। स्त्री से पुरुष बनाना आसान नही। भई, आखिर कुछ-न-कुछ जुर्माना देना ही पडेगा ?"

पत्नी बोली, "तो हम नाँहि जाति।"

ज्यो-त्यो मनाकर और नेकटाई पहनाकर मैंने उनसे कहा, "देखिए, इस दर्पण मे देखिए, आप सरदार सुन्दरसिंह टैक्सी-ड्राइवर बन गये, या नही।"

जब तक वह दर्पण देखे, तब तक मैंने उनका एक चुम्बन ले लिया। सच्ची नाराजी दिखलाते हुए उन्होने कहा, "बडे पापी हो। आज एकादशी है। तीरथ के लिए और साधु जी के दर्शन के लिए चल रहे है।"

मैंने जवाब दिया, "कोई अन्न की चीज तो मैंने तुम्हे खिलाई नही, जिससे तुम्हारा व्रत भग हो गया हो।"

उन्होने सिर्फ इतना ही कहा, "चलो, रहन देउ।"

हम लोग बैलगाडी से रवाना हुए। रास्ते-भर श्रीमती जी मुँह फुलाए बैठी रही, शायद इसलिए कि मैं बच्ची की निगाह बचाकर वही भूल दुबारा न कर बैठूं। अफसर की टेढी निगाहें देखकर जूनियर बाबुओ को छुट्टी माँगते हुए डर लगता है, यहाँ तो तरक्की का सवाल था।

सरला ने कहा, "अरे, अम्मा तो लोग हो गयी।"

तब भी श्रीमती के चेहरे पर हँसी न आयी। मैं बोला, "तीर्थ यात्रा से चाहे जिसको लाभ हो, हमारा तो बडा नुकसान हुआ है। कई वर्ष की ब्याही हुई मेहरिया छिन गयी।"

सरला भी अपनी अम्मा को मर्दानी पोशाक में देखकर हँसी से लोट-पोट हुई जाती थी। मैंने उसे सावधान किया, "देखो, साधुजी के यहाँ इनसे अम्मा मत कहना, नही तो साधु जी तुम्हें पकडकर अपनी झोली में डाल लेंगे।"

सरला साधुजी की झोली से कुछ डरी, फिर भी उसने पूछा, "अम्मा से अम्मा क्यो नही कहूँ ?"

साधुजी का आश्रम दस पन्द्रह मील दूर था। पहुँचते-पहुँचते शाम हो गयी। छोटा-सा बगीचा था। बीच मे एक कुटी थी। द्वार पर एक आदमी मिला। किसान-सा मालूम होता था। पहले उसने अपनी भाषा मे कुछ कहा, जिसका हम लोग कुछ भी मतलब न समझ सके। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई आदमी लोटे मे ककड डालकर बजा रहा हो। सरला उसकी बोली सुनकर हँस पडी। मैंने उसे डाँट पिलाई। फिर उस किसान ने अग्रेजी मे लिखा हुआ एक कागज जेब से निकालकर दिया। उसमे लिखा था, "जर्नलिस्ट्स एण्ड लेडीज आर नॉट अलाउड इनसाइड," अर्थात "पत्रकार और स्त्री कुटीर मे न आयें।"

सरदार सुन्दरसिह ने पूछा, "क्यो क्या बात है ?"

"सरदारजी, कोई बात नही।" मैने गम्भीरतापूवक उत्तर दिया, और फिर एक कागज पर पेंसिल से लिख भेजा, "एस० के० भट्टा और सरदार सुन्दरसिह" और फिर मन मे सोचा, 'चलो, अच्छी प्रेस सामग्री मिलेगी। वर्षों से जिस साधु से कोई पत्रकार इटरव्यू नही ले सका, उससे आज बातचीत करूँगा, और अखबारो मे उस पर एक लेख लिख डालूँगा।'

जिस समय हमे साधु जी ने अन्दर बुलाया, काफी अँधेरा हो चुका था। मैंने सुन्दरसिह से हँसकर कहा, "बडे भाग्यवान हो भाई। शाम हो चुकी है। साधु जी को जरा भी सन्देह नही होगा। दिन होता तो तुम्हारी सारी करतूत खुल जाती। चले हैं पैंट कोट पहनकर सरदार साहब बनने।"

अब जाकर मेरी स्त्री के चेहरे पर जरा-सी मुस्कराहट आयी।

प्रणाम करके हम लोग बैठ गये। अग्रेजी मे बातचीत प्रारम्भ हुई, और घटे-भर तक होती रही। बीच मे सरदार साहब चुपचाप बैठे मुँह देखते रहे। तत्पश्चात् साधु जी ने पूछा, "आप लोग किस प्रान्त के रहने वाले है ?"

मैंने कहा, "मै भरतपुर राज्य के एक ग्राम का रहने वाला हूँ और ये पजाबी सिख है।"

मेरे आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा और मैंने सुना कि साधु जी हमारे ग्राम के निकट के ही निवासी हैं। फिर तो उन्होने अपनी ग्रामीण बोली मे बोलना प्रारम्भ किया। सरला कुछ चौकन्नी-सी हुई और सरदार साहब भी सचेत हो गये। आज वर्षों बाद साधु जी को अपनी मातृभाषा मे या यो कहिये कि ग्राम्य भाषा मे किसी से बोलने का अवसर प्राप्त हुआ था, इसलिए प्रयत्न करने पर भी वह अपनी भावुकता को न दबा सके। अब तक वह अपने ग्राम का पता भी किसी को न बतलाते थे, पर आज वह अपने को रोक न सके। उनकी एक लडकी हमारे ग्राम मे ब्याही थी। जब उसका नाम पूछा तो उन्होने कहा, "सरला।"

मेरी सरला डरी। उसने समझा कि साधु जी ने झोली मे रखा।

मैंने कहा, "अरे सरला, वह तो हमारे पडोस मे ही रहती है।" साधु जी का दिल भर आया।

मैंने कहा, "बीस-पच्चीस दिन बाद मैं अपने घर लौटूंगा। कहिये तो उससे कुछ कह दूं।"

साधु जी ने एक दीर्घ निश्वास ली और कहा, "क्या कहोगे ? कोई कहने की बात भी तो हो।"

साधु जी को भावुकता मे देखकर मैंने समझा कि तवा गरम है, जर्नलिस्ट रोटी सेकने का अच्छा मौका है। पूछा, "महात्मा जी, एक जिज्ञासा है। आपने यह नियम क्यो बनाया कि आप किसी पत्रकार या स्त्री से न मिलेंगे।"

साधुजी ने जवाब दिया, "क्या करेंगे आप सुनकर ? आप व्यापारी आदमी हैं, आपको इससे कुछ

लाभ न होगा।"

मैंने फिर भी आग्रह किया, तो साधु जी ने यह आत्मकथा सुनाई

"सत्तर वर्ष का हो चुका, आज यह बोझ हलका करना चाहता हूँ। यह बात मैने आज तक किसी से नही कही, पर तुमसे कहता हूँ। तुम मेरे निकट के हो, इसीलिए मेरा मन विवश हो गया, पर एक शर्त है कि तुम यह बात मेरे मरने के पहले किसी से नही कहोगे, यहाँ तक कि मेरी लडकी से भी नही। उसकी माता के प्रति मैंने घोर अपराध किया था।"

मैं कुछ चौंका। दिल मे ख्याल आया कि साधु जी पहुँचे हुए हजरत मालूम होते हैं। सम्भव है इन्होने कोई हत्या की हो। जासूसी कहानी के लिए अच्छा मसाला मिलेगा। मैंने कहा, "साधु जी महाराज! हम लोग यात्री ठहरे। अंग्रेजी पोशाक जरूर पहन ली है पर दिल हमारा भारतीय है। हममे धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा है। तीर्थ यात्रा पर जा रहे हैं, भला हम विश्वासघात कर सकते हैं! हम किसी से कुछ न कहेंगे, आप बेखटके सुनाइये।"

साधु जी ने कहा, "पहले मैं एक दैनिक पत्र का सम्पादक था। पत्र का नाम नही बताऊँगा। हर जगह मेरा नाम छपता था। सभाओ मे मेरी पूछ होती थी। डिनर्स मे मुझे बुलाया जाता था। प्रेस एजेंसी मेरी बीमारी तो क्या छीकने तक की खबर देश-भर मे फैला देती थी। हाँ, एक बात मैं भूल गया। मेरी एक स्त्री थी और मैं उसे सदा भुलाए रहता था। वह हिन्दी तो पढ लेती थी, मगर अंग्रेजी का एक अक्षर भी नहीं जानती थी, इसलिए मै उसे अशिक्षित और असभ्य समझता था।"

यह सुनकर मैंने सरदार सुन्दरसिह की तरफ देखा, मानो मौन भाषा मे कहा, वह भी तुम्हारी साथिन थी। सुन्दरसिह ने धीरे से मेरा पाँव दबाकर चुप रहने का सकेत दिया। साधु बोल रहे थे "मैं उससे कहा करता था कि तुम मेरे लिए उपयुक्त साथी नही हो। दो-तीन बार मैंने उसे डेली न्यूजपेपर सुनाने की कोशिश की पर उसे तुलसीकृत रामायण मे जो आनद आता था, वह अखबार मे कभी नही आया। मैं उसे दासी की भाँति ही समझता था। मै उससे कपडे धुलवाता था, बर्तन मँजवाता था, पानी भरवाता था और भोजन बनाना तो उसका जन्मसिद्ध कर्त्तव्य था ही। मैं समझता था कि ईश्वर की ओर से जीवन-भर के लिए मुझे एक अच्छी अवैतनिक दासी मिल गयी है। स्त्रियो की स्वाधीनता के विषय मे लिखे हुए मेरे लेख कितने ही पत्रो मे उद्धृत हुए थे, और पुस्तकाकार भी छपे थे। पर मैंने यह कभी ख्याल नहीं किया कि मेरी स्त्री को भी कुछ स्वाधीनता चाहिए। जिन दिनो मै अपने लेख पर दूसरे पत्रो मे लीडिंग आर्टिकल देखकर खुश होता था, उन्ही दिनो सरला और उसकी माँ जाडे के कपडे न बन सकने के कारण बगल मे हाथ दबाये घर पर सर्दी के दिन काटती थी। बाहर मै सूटेड-बूटेड प्लेटफार्म से धाराप्रवाह व्याख्यान देता था, उधर घर पर पत्नी अपनी फटी हुई धोती मे पैबन्द लगाती थी। आफिस मे मै सरकार के कठोर शासन की निन्दा करता था और घर पर मेरा शासन उससे कम कठोर न था। जिस दिन मैंने अपना इण्टरव्यू तार के द्वारा भारत-भर के पत्रो को छपने के लिए भेजा था, उस दिन घर मे तरकारी के लिए भी पैसा नही बचा था और जब मै अमुक सभा का सभापित होकर गया था, पत्नी ने अपने हाथ के कडे बेचकर घर के लिए अनाज मँगाया था। जब सरला टाइफायड ज्वर से पीडित थी, मै घर से सात सौ मील दूर एक पोलिटिकल मीटिंग अटेण्ड कर रहा था और भारतवर्ष के दीन-हीन बच्चो की दुर्दशा पर चार आँसू बहा रहा था—

" 'दूध पीना तो प्रत्येक बच्चे का जन्मसिद्ध अधिकार है।' यद्यपि मेरी पत्नी को अपनी बाली

बेचकर बीमार लड़की के लिए विदेशी दवा का प्रबन्ध करना पडा था, मगर देशी दूध उसे फिर भी न मिल सका।"

यहाँ पहुँचकर साधु जी ने एक लम्बी साँस ली। मै अपराधी की भाँति घबराया हुआ था। मै डर रहा था कि कही मेरी स्त्री का हृदय द्रवित न हो जाये। चुनाँचे मैने आँख के इशारे से उन्हे सावधान भी कर दिया।

साधु जी ने एक ठडी साँस भरकर कहा, "उन दिनो पत्रकार का जीवन बडा खतरनाक था। आप व्यापारी आदमी उसका अन्दाजा भी नही लगा सकते। कभी नौकरी लगती, कभी छूटती। महीनो घर पर बेकार बैठा रहना पडा। इस बीच मै अपनी स्त्री के लगभग सब गहने बेचकर खा गया। केवल दो गहने रह गये थे—नाक की नथ और पाँव के बिछुए। यद्यपि उसके सब गहने मेरे ही काम आये थे, पर मै उससे बराबर झगडा करता रहता। कहता, 'तुमने व्यर्थ ही इतना रुपया इनमे फँसा रखा है। रुपये होते तो बैंक मे जमा होते।' वह यही उत्तर देती थी, 'मुझे गहनो का शौक नही। गृहस्थी मे ये गहने वक्त-बेवक्त काम आ जाते हैं। मै नही चाहती कि तुम किसी के सामने हाथ पसारो। घर मे चीज हो, तो उसे रखकर हारी-बीमारी मे काम निकल सकता है।' इस प्रकार हारी-बीमारी आती रही और गहनो से काम निकलता रहा। यद्यपि स्त्रियो के लिए वोटाधिकार पर मैने बडे तगडे लेख लिखे थे, और मेरी मित्र 'चाली' की सम्पादिका श्रीमती ज्योतिष्मती, एम० ए० ने उन पर मुझे खूब बधाई दी थी, पर मैने स्वप्न मे भी यह ख्याल नही किया था कि ज्योतिष्मती के लिए वोट पर जितना अधिकार चाहिए, कम-से-कम उतना तो सरला की माँ को अपने मायके से लाये हुए गहनो पर है ही।"

साधु जी फिर कुछ रुके, और अपने को जरा सँभालकर बोले, "आप नही जानते कि पत्रकार का जीवन कितना बाह्य हो जाता है। जनता के सम्मुख बार-बार आने की प्रवृत्ति आन्तरिक आध्यात्मिक भावो को कुचल डालती है। अस्त-व्यस्त जीवन मे यह सोचने का अवकाश ही नही मिलता कि आखिर इस विज्ञापन से जीवन को कुछ वास्तविक लाभ है या नही। मै समझता रहा कि जिन्दगी यो ही कट जायेगी, सरला की माँ जीवन-भर मेरी सेवा यो ही करती रहेगी, पर भाग्य मे कुछ और ही लिखा था।

"आखिर दुर्भाग्य का वह काला दिन आ ही गया। रात के बारह बजे थे। सर्दी से हाथ-पाँव ऐंठे जाते थे, गली-बाजार सब खाली थे। कही पर कुत्ता भौक रहा था, कही-कही किसी के चलने की आहट सुनाई दे जाती थी। मैं एडीटोरियल लिखकर घर लौटा। पत्नी को कई दिन से ज्वर आ रहा था। पर मैंने उसकी कुछ भी परवाह न की थी। उन्ही दिनो मेरे यहाँ दो-तीन पत्रकार अतिथि भी ठहरे हुए थे, और उनके लिए, उन बीमारी के दिनो मे भी, वह भोजन बनाया करती थी। मैं समझता था कि स्त्रियाँ बिना कारण के बीमार होती हैं, और यो ही बिना दवा के तन्दुरुस्त हो जाती है। मैंने पूछा, 'कहो कैसी तबीयत है?' उसने जवाब दिया, 'कुछ नही, ठीक है।' शरीर जल रहा था। देखा तो ज्वर 104 डिग्री था। घबरा गया। भागा-भागा डॉक्टर के यहाँ पहुँचा। डॉक्टर साहब आये। उन्होने मरीज को देखकर कहा, 'एडीटर साहब, आप भी गजब के अकलमन्द आदमी है। अब तक क्या कर रहे थे? इन्हे तो डबल निमोनिया हो गया है।' डॉक्टर साहब ने नुसखा लिखा। मैंने जेब मे हाथ डाला तो पैसा नही। स्त्री ने ठाकुर जी के सिंहासन की ओर इशारा किया। उसके नीचे दबे हुए दो रुपये निकल आये। उन्हे डॉक्टर साहब के हवाले किया। दवा खाने के साथ ही उसका बोल बन्द हो गया। गरीब अपनी मन की बात भी न कह सकी। हाँ, एक बार सरला की ओर देखकर

उसने मेरी ओर जरूर देखा था। सूर्योदय होते-होते मेरा जीवन अंधकारमय बन गया। वह हृदय बेधक दृश्य अब भी मेरी आँखों के सामने है। वह मर चुकी थी, परन्तु उसके चेहरे पर अब भी पूर्ण शान्ति थी, मानो उसने मेरा सम्पूर्ण अपराध क्षमा कर दिया हो। वह लाल कपडे पहने हुए थी। ऐसे ही कपडे पहनकर वह अपनी माँ के घर से मेरे घर आई थी, वैसे ही कपडे पहनकर आज वह मेरे घर से सदा के लिए विदा हो रही थी। मैं फूट-फूटकर रोने लगा। पडोसी लोग अर्थी की चिन्ता मे थे। ऑफिस से वेतन मिलने मे दस दिन की देर थी। पागल की तरह मैंने पत्नी के सन्दूक को टटोला। रामायण मे पाँच रुपये का नोट मिल गया। तब मुझे ख्याल आया कि प्रतिवर्ष रामायण का पाठ समाप्त कर वह एक रुपये का नोट चढाया करती थी, जिसे मैं घोर अधविश्वास कहा करता था। इस अधविश्वास ने ही उस समय मेरी लाज रख ली।

"अत्येष्टि के बाद घर लौटा, तो मुझे पता लगा कि मेरा क्या खो गया है। अब मुझे चिन्ता थी, तो केवल एक बात की कि स्त्री के फूल त्रिवेणी तक कैसे पहुँचाए जाएँ। एक बार उसने कहा था, 'मेरी एक बात मानो तो कहूँ। मेरे फूल त्रिवेणी पर पहुँचा देना।' मैंने घोर अधविश्वास कहकर उस बात को उडा दिया था। तीसरे दिन जब मैं चिता की भस्म स फूल बीनने गया, तो उसके साथ ही मुझे वह सोने की नथ मिली, जिसे पहनकर वह सौभाग्यवती श्मशान को गयी थी। उस समय मुझे उसकी बात याद आ गयी कि गहना समय कुसमय काम आता है, और उसका गहना बडे सकट के समय काम आया। उसने, जब तक वह जीती रही, किसी के सामने हाथ नही फैलाया, आज मरने के बाद भी उसकी खातिर मुझे किसी के सामने हाथ नही फैलाना पडा।

"सध्या समय जब पण्डित जी के साथ पीपल के पेड पर घडा बाँधने तथा दीपक रखने गया, तो पण्डितजी ने कहा, 'इस दीपक को आप जलाइये, और फिर कहिये—मैं दीपक को इसलिए जलाता हूँ कि जिससे गतात्मा का मार्ग प्रकाशमय हो।' उस समय मेरे दिल को धक्का लगा। कँपकँपी-सी आ गयी। हाथ से दीपक छूट पडा। पण्डितजी ने कहा, 'यह क्या, आपका ध्यान किस दिशा मे है?' मैंने कहा, 'पण्डित जी, मेरा ध्यान अब ठीक दिशा मे है। जीवन-भर जिसके हृदय को जलाकर अपना मार्ग प्रशस्त और उसका मार्ग अधकारमय बनाता रहा, अब दो पैसे का स्नेहहीन दीपक जलाकर उसके मार्ग को कैसे प्रकाशमय बना सकता हूँ।' जो मनुष्य अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए अपने अधीनस्थ प्राणियो के सुख-दुख की चिन्ता न करता हुआ, उसके व्यक्तित्व को कुचलकर, यश-लिप्सा से आगे बढने का प्रयत्न करता है वह अधम है, नीच है, पापी है, पामर है।"

साधु जी थोडी देर चुप रहे फिर बोले, "अब आप समझ गये होगे, मैं पत्रकारो से क्यो नही मिलता। जिनका जीवन सर्वथा बाह्य बन जाता है, उनसे मिलकर मैं क्या करूँ? रही स्त्री की बात, सो एक स्त्री पर घोर अत्याचार करने के बाद मैं अब क्या किसी स्त्री को मुँह दिखलाने लायक रहा हूँ?"

मैं स्तब्ध रह गया। वृद्ध साधु की आँखो मे आँसू झलक रहे थे, जिन्हे रोकने का वह निष्फल प्रयत्न कर रहे थे। बिल्कुल सन्नाटा था। सरदार साहब की ओर देखा तो उन्हे गश आ गया था। भोली-भाली सरला ने, जो अब तक खिलौनो की धर-उठाई कर रही थी, यह देखा, तो वह अकस्मात् बोल उठी, "बाबूजी, अम्मा को क्या हुआ, देखो।"

सारा भडाफोड हो गया। साधुजी ने आँखे मूँद ली। हाथो से मुँह ढक लिया और कहा, "आपने मेरे साथ विश्वासघात किया। आप स्त्री को यहाँ क्यो लाये? मालूम होता है, आप भी कोई चालाक पत्रकार

हैं। आपकी इस ऊपरी सज्जनता के भीतर अधमता इतनी दूर तक चली गयी है, इसका मुझे पता न था। अब आप कृपा करके चले जाइये।"

मैंने सिर्फ़ इतना ही कहा, "यह अधर्मी अपने भयकर अपराध के लिए क्षमा-याचना करता है, और अपना तुच्छ जीवन आपकी सेवा मे अर्पित करता है।"

साधु ने कहा, "बस, आप चले जाइये। अभी वक्त नही आया।"

साधु जी चुप हो गये। हम लोग लौट आये। सेतुबन्ध रामेश्वर की यात्रा की, और फिर अपने घर वापस आ गये।

●

कुछ वर्ष बाद मेरी पत्नी भी चल बसी। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई अकस्मात् उसी दिन विजय नगर की मुहर लगी एक चिट्ठी मुझे मिली। उसमे लिखा था "जीवन-यात्रा अब समाप्त हो रही है। यह उपवन और यह कुटीर तुम्हारे लिए छोडे जाता हूँ।"

नीचे साधु जी के हस्ताक्षर थे। मैंने दिल मे सोचा कि अब वक्त आ गया है।

●

मैं अब उसी कुटी मे रहता हूँ। सम्पादक की समाधि बनवा दी है, और मैंने भी यह नियम बना लिया है, दो प्रकार के आदमियो से नही मिलता—एक तो पत्रकार से और दूसरा स्त्री से।

5

इन्दौर के राजकुमार कालेज में

जब मै फर्रुखाबाद के सरकारी स्कूल मे सहायक अध्यापक था, उन दिनो 'आर्य मित्र' के सम्पादक श्री लक्ष्मीधर वाजपेयी से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। उन्हे मैं गुरुतुल्य पूज्य मानता था। वह 'आर्य मित्र' का काम छोडकर इन्दौर से निकलने वाले 'नवजीवन' मे कार्य करने के लिए जाने वाले थे। उन्होने मुझसे आग्रह किया कि मै 30 रुपया मासिक पर उनकी जगह आगरा मे 'आर्य मित्र' मे चला जाऊँ। पत्रकारिता के क्षेत्र मे प्रवेश करने की मेरी इच्छा पहले ही से थी, इसलिए मैंने सहर्ष उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और एक महीने की छुट्टी के लिए प्रार्थना-पत्र भेज दिया। छुट्टी के बाद सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने का निश्चय था, पर एक घटना ऐसी घटी, जिसकी मैंने स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी। जिस दिन सरकारी नौकरी से एक महीने की छुट्टी की स्वीकृति की सूचना आई उस दिन उसी डाक से इन्दौर के राजकुमार कॉलेज के हिन्दी अध्यापक के पद पर नियुक्ति का आदेश मिल गया। बात यह हुई थी कि महीने डेढ-महीने पहले अपने हाईस्कूल के हेडमास्टर साहब मुहम्मद ऐजाज़ आलम के विशेष आग्रह पर मैंने वहाँ अपनी अर्ज़ी भेज दी थी। प्रार्थना-पत्र मे लिख दिया था कि मैं वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा पास हूँ। हेडमास्टर साहब ने सिफारिश के तौर पर मेरी अत्युक्तिमय प्रशसा भी कर दी थी। नौकरी मिलने की कोई उम्मीद नही थी क्योकि ग्रेड 80 से 120 रुपये तक का था। अर्ज़ी हेडमाटर साहब ने खुद ही बोलकर लिखवाई थी। मैने उसे अपने अच्छे-से-अच्छे अक्षरो मे लिखा था। मेरे सौभाग्य से मेरा प्रार्थनापत्र स्वीकृत हो गया। मैं आगरा के बजाय इन्दौर चला गया। जाने के पूर्व जब मैं आगरा के इस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स (शिक्षा निरीक्षक) से मिला तो वह बोले, "यगमैन, यू आर एक्सेप्शनली फॉरचूनेट फॉर थर्टी टू एटी इज़ ए बिग जम्प।" (अर्थात्—नवयुवक तुम अत्यत भाग्यशाली हो, क्योकि 30 से 80 की फलाग बडी ऊँची है।)

इन्दौर निवास (1914 से '20) मेरे लिए अत्यत लाभदायक सिद्ध हुआ। सन् 1918 के प्रारभ मे वहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आठवाँ अधिवेशन होने वाला था। मैं उसके साहित्य विभाग का मत्री चुना गया। श्री सम्पूर्णानन्द जी उस विभाग के प्रधान थे। मैं इन्दौर 1914 मे पहुँचा था और वह सन् 1915 मे। तभी से मेरा-उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। वह उम्र मे मुझसे तीन वर्ष बडे थे। वह मेरे साथ छोटे भाई जैसा व्यवहार करते थे। उनके सम्पूर्ण जीवन काल मे मैं उनका कृपापात्र रहा।

सन् 1917 के अन्तिम महीनो मे मैंने अपने खर्च पर वृन्दावन तथा प्रयाग की यात्रा भी सम्मेलन

के कार्य के लिए की थी। वृन्दावन मे मुझे स्व० राधाचरण गोस्वामी तथा श्री किशोरीलाल गोस्वामी के भी दर्शन हुए और प्रयाग मे श्रद्धेय टण्डन जी तथा प० सुन्दरलाल जी के। टण्डन जी उस समय खपरैल से पटी एक छोटी कोठरी मे सम्मेलन का सचालन करते थे।

वह दृश्य मुझे अभी तक याद है जब लोगो ने इन्दौर स्टेशन पर महात्मा जी का स्वागत किया था। वह उस समय अँगरखा पहनते और काठियावाडी पगडी बाँधते थे। उस सम्मेलन मे कई उल्लेख योग्य व्यक्ति पधारे थे, जैसे शिवप्रसाद जी गुप्त, सेठ जमनालाल जी बजाज, अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी और श्री वेंकटेश नारायण जी तिवारी इत्यादि। श्री जमनालाल जी, श्री वाजपेयीजी और मुझे अपनी कार मे बिठाकर अपनी आढन की दुकान पर भी ले गये थे। सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनो से यह एक बडा लाभ होता था जो भावी साहित्यिक जीवन के लिए लाभदायक तथा सहायक सिद्ध होता था। इसी सम्मेलन के लिए मैंने सत्यनारायण जी कविरत्न को विशेष रूप से आमत्रित किया था। वह पधारे और उन्होने कई कविताएँ, जो हाल ही मे लिखी थी, सुनाईं। वे मुझे इतनी अच्छी लगी कि मैंने उनके हस्ताक्षरो मे उनसे लिखवा लिया था। उनमे वह कविता भी थी जिसके अन्त मे होता है "कोरो सत्य ग्राम को बासी कहा तकल्लुफ जाने।" सत्यनारायण उन दिनो मिर्जई पहनते थे और दुपल्ली टोपी लगाते थे तथा ब्रजभाषा मे बात करते थे। जब वह पण्डाल मे आना चाहते थे तो एक स्वयसेवक ने गँवार समझकर उन्हे घुमने नही दिया था। जब मुझे यह बात मालूम हुई तब मैं उन्हे वहाँ ले आया। जब सत्यनारायण जी ने गाधी जी के बारे मे अपनी कविता पढी तो पद्रह हजार की भीड ने स्तब्ध होकर उसे सुना। उस समय 'लीडर' के सवाददाता श्री वेंकटेश नारायण तिवारी जी ने कहा था---उस कविता ने उपस्थित जनता पर जादू जैसा असर किया।

सम्मेलन के पूर्व महात्माजी ने अपने दो प्रश्न गश्ती-चिट्ठी द्वारा जनता तक पहुँचाये भी थे। वे प्रश्न इस प्रकार थे—

1 कौन-सी भाषा राष्ट्रभाषा होनी चाहिए ?

2 शिक्षा किस भाषा मे होनी चाहिए ?

मैंने प्रथम प्रश्न भारत के प्रसिद्ध पुरुषो के पास भेजकर उनके उत्तर मँगाए थे। उनके जो उत्तर आये, उन्हे मैने सम्पादित कर राष्ट्रभाषा नामक पुस्तिका मे सम्मेलन द्वारा छपवा दिया था। उस समय श्रद्धेय वियोगी हरि जी सम्मेलन मे काम करते थे। वह यमुना नदी के किनारे इलाहाबाद मे रहते थे। एक दिन शाम को मैंने उनके निवास-स्थान पर सात्विक भोजन भी किया था।

सम्मेलन की प्रदर्शिनी का उद्घाटन महात्माजी ने किया था और उस समय प्रोफेसर गीडीज़ ने उन्हे इन्दौर के विकास के विषय मे अपने नक्शे भी दिखलाये थे। प्रोफेसर गीडीज नगर-निर्माण-कला के विशेषज्ञ थे। उन्होने बारह भारतीय नगरो के प्लान बनाये थे। आगे चलकर मैंने उनका एक रेखाचित्र भी प्रस्तुत किया था।

इन्दौर मे ही मैंने चार वर्ष लगाकर 'प्रवासी भारतवासी' नामक पुस्तक लिखी थी।

6

मेरे सहायक और सहयोगी

एक बात मे मै अत्यन्त सौभाग्यशाली रहा हूँ, यानी समय-समय पर मुझे सुयोग्य सहायक मिलते रहे हैं। विशाल भारत मे ब्रजमोहन वर्मा तथा श्री धन्यकुमार जी जैन मेरे सहायक सम्पादक थे और स्व० श्रीपति पाडे प्रूफ रीडर। दरअसल पत्रो के सचालन और सम्पादन मे सहायको का जबरदस्त हाथ रहता है पर सम्पूर्ण श्रेय प्रधान सम्पादक को मिलता है। सहायक का कोई नाम भी नही जानता। 'विशाल भारत' मे मैंने सहायक सम्पादको के नाम देने की प्रथा प्रारम्भ कर दी थी। यहाँ तक प्रूफ रीडर श्रीपति पाडे का नाम भी दे दिया था।

स्व० वर्मा जी अग्रेजी और बाग्ला दोनो से अच्छे अनुवाद कर लेते थे और धन्यकुमार जी तो बाग्ला के श्रेष्ठ अनुवादक थे ही। परशुराम (राज शेखरबोस) तथा गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओ के अनुवाद धन्य कुमार ने ही किए थे। 'विशाल भारत' मे आने के पहले धन्यकुमार जी छुटपुट अनुवाद करते रहते थे। जब मै 'विशाल भारत' मे पहुँचा, एक दिन वह मेरे निवास स्थान पर पधारे और परिचय देते हुए बोले, "हम भी फीरोजाबाद के ही रहने वाले हैं। मेरे पूछने पर उन्होने बतलाया कि उनके बाबा फीरोज़ाबाद म ही किसी सेठ के मुनीम थे। धन्यकुमार के पिता जी बगाल मे ही रहे थे, इस प्रकार बाग्ला पर उनका विशेष अधिकार था। हिन्दी विश्वकोष के लिए उन्होने कुछ अनुवाद भी किये थे। मैंने तीस रुपये महीने पर उन्हे 'विशाल भारत' मे रख लिया था और इसी प्रकार पचास रुपये महीने पर ब्रजमोहन वर्मा को भी। वर्मा जी के खास चाचा जी स्व० कृष्णबलदेव मोहन जी हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखको मे से थे। वह श्रद्धेय टण्डन जी के फूफा लगते थे और बाबू श्यामसुन्दरदास के सहयोगियो मे से थे। मैं उनके शुभ नाम से परिचित था और उन्ही के अनुरोध पर मैंने वर्मा जी को नियुक्त कर दिया था। वर्मा जी विकलांग थे और बैसाखी के बल ही चल पाते थे। उन्हे बोन टी० बी० (हड्डियो का क्षय) हो गयी थी। और इसलिए उन्हे नौ महीने खाट पर लेटे रहना पडा था। इस बीच उन्होने 'मॉडर्न रिव्यू' के सभी पुराने अक पढ डाले थे। उनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी। 'विशाल भारत' छोडते समय मैंने लिखा था "विशाल भारत की सफलता का 75 प्रतिशत श्रेय वर्मा जी को है। मेरे इस कथन को कुछ लोगो ने सामान्य शिष्टाचार की बात माना था पर वह था नितान्त सत्य। वर्मा जी के लेखो का सग्रह मैंने ज्ञान-मण्डल काशी द्वारा छपवा दिया था और समीक्षको ने उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की थी। भाई धन्यकुमार जी आगे चलकर कवीन्द्र रवीन्द्र के सर्वश्रेष्ठ अनुवाद सिद्ध हुए। उन्होने कवीन्द्र की 27-28 पुस्तको के अनुवाद

स्वय छापे थे । स्वय प्रकाशक बन जाने पर उन्हे घोर परिश्रम करना पडा था, क्योकि पुस्तको की बिक्री करना अत्यन्त कठिन था । उनके अन्तिम दिन आर्थिक सकट मे बीते । वर्ष-दो वर्ष के लिए उन्हें उत्तर प्रदेश सरकार से 150 रुपये मासिक की सहायता मिलने लगी थी । उन्होने शरत् के कुछ उपन्यासो का भी अनुवाद किया था । खेद की बात है कि लोग उनको भूल गये है ।

'मधुकर' के दिनो मे बन्धुवर यशपाल जैन और भाई जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने पूरा-पूरा सहयोग दिया था । यशपाल जी छ वर्ष तक और जगदीश जी चार वर्ष तक मेरे साथ रहे थे । उन दोनो के सहयोग के कारण और महाराज वीरसिंह जू देव की उदारता से कुण्डेश्वर साहित्यिक केन्द्र बन गया था। और कई आन्दोलन वहाँ से सचालित हुए थे, जैसे—बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण आन्दोलन, जनपद आन्दोलन, पत्रकार आन्दोलन आदि । 'मधुकर' के जनपद आन्दोलन अक का सम्पादन तो जगदीशजी ने ही किया था जबकि वह 103 5 डिग्री बुखार से पीडित थे । नाथूराम प्रेमी-अभिनन्दन ग्रन्थ का सम्पादन मुख्यतया यशपाल जी ने ही किया था और हेमचन्द्र स्मृति-ग्रन्थ का भी । 'अहार' क्षेत्र के सग्रहालय की स्थापना का कार्य मैने उन्ही के सुपुर्द कर दिया था । जो कुछ वहाँ बन पडा उसका मुख्य श्रेय उन्ही को है ।

विन्ध्यवाणी मे भाई प्रेमनारायण खरे, श्री चतुर्भुज पाठक, स्व० पीताम्बर अध्वर्यु, श्री नन्दराम कठैल तथा श्री पस्तौर जी का पूरा-पूरा सहयोग मुझे मिला था ।

मधुकर एक ठेठ जनपदीय पत्र था और उसके पुराने अक अब भी शोधकर्ताओ के लिए उपयोगी सिद्ध होते है ।

सम्पादन कार्य मैंने मुख्यत दो ही पत्रो मे किया— 'विशाल भारत' और मधुकर' मे । वैसे कुछ महीने मै आर्यमित्र मे भी भाई हरिशकर जी शर्मा का सहायक रहा था और इक्कीस दिन तक दैनिक 'अभ्युदय' का भी सम्पादन मैंने किया था ।

यद्यपि सन् 1912 से ही मैं लेख लिखता रहा हूँ पर सन 1964 से जब मै दिल्ली से राज्य सभा की सदस्यता छोडकर अपने नगर फीरोजाबाद मे आया, तो मुझे सहायक की आवश्यकता प्रतीत होने लगी । भाई राजेन्द्र नाथ ने मेरे लेखन कार्य मे मुझे कई वर्ष तक सहयोग दिया । वह साहित्य प्रेमी थे और कविता भी कर लेते थे । उनके पूज्य पिताजी प० कुँजीलाल जी तहसीली स्कूल मे मेरे अध्यापक भी रहे थे । इस प्रकार राजेन्द्र जी मेरे गुरु भाई थे । भारती भवन की सेवा भी उन्होने सर्वथा निस्वार्थ भाव से की थी पर उनका कोई चित्र भी अब वहाँ नही है ।

श्री राजेन्द्र जी के चले जाने के बाद श्री पूरनचन्द्र जी ने भी एक साल मुझे सहायता प्रदान की थी । वह ट्रेण्ड अध्यापक थे पर आज के आपाधापी के जमाने मे शिक्षा जगत् मे स्थान न पा सके । सुना है कि वह आजकल हैदराबाद मे है और कोई बिजनेस करके अपनी जीविका कमाते है । वह सुखी हैं, यह और सन्तोष की बात है । आजकल बन्धुवर डा० मथुराप्रसाद मानव, एम० ए०, पी एच० डी० मुझे सहयोग प्रदान कर रहे है । वह नित्य प्रति दो-ढाई घण्टे का समय मेरे लिए देते हैं । उनका सहयोग मुझे 5-6 वर्ष से निस्वार्थ भाव से मिल रहा है । यदि उनका सहयोग न मिलता तो इस इक्यानवें वर्ष की आयु मे भी सक्रिय रहना मेरे लिए सभव न होता । वह ही मेरे पत्र तथा लेख लिख देते है । मैं बोलता जाता हूँ और वह मेरे भावो तथा विचारो का लिपिबद्ध करते जाते है । मेरी 'नब्बे वर्ष' नाम की पुस्तक की पाण्डुलिपि उन्ही ने तैयार की थी और यह 'महापुरुषो की खोज' भी उन्ही के हाथो की लिखी हुई है । वह मेरा दाहिना हाथ बन गये है ।

मानव जी हमारे नगर के डी० ए० वी० कॉलेज से सेवा-निवृत्त हो चुके हैं। वहाँ उन्होने सहायक अध्यापक, हिन्दी प्रवक्ता तथा प्रधानाचार्य के रूप मे सेवाएँ सम्पन्न की हैं। उन्हे सेवा निवृत्त हुए छठा वर्ष चल रहा है और तभी से वह मुझे सहयोग दे रहे है। वैसे उनसे मेरा परिचय पुराना है। सन् 52-53 से ही मेरा उनका पत्र-व्यवहार होता आ रहा है। मानव जी स्वय एक अच्छे कवि है। उनकी छोटी-बडी आठ-नौ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। वह लेख भी अच्छे लिख लेते है और कॉलेज पत्रिका तथा जीवन-चरितो का सम्पादन भी उन्होने किया है। मैंने स्वय उनका जीवन वृत्तान्त 'एक सघर्षशील व्यक्तित्व' के नाम से छपाया था। मानव जी राष्ट्रीय परिवार के व्यक्ति है। उनके पूज्य चाचा स्व० शम्भूदयाल सक्सेना मैंनपुरी षड्यन्त्र के क्रान्तिकारियो मे से थे और स्व० विश्वम्भरदयाल सक्सेना मैंनपुरी मे कॉंग्रेस के सस्थापको मे थे। विशम्भरदयाल सक्सेना स्वाधीनता से पहले यू० पी० एसेम्बली के निर्विरोध एम० एल० ए० निर्वाचित हुए थे। वह भ्रष्टाचार के घोर विरोधी थे और उसी के उन्मूलन के प्रयास मे उनका देहावसान हुआ। मानव जी का परिवार जमीदार था। इनके पूज्य पिता जी, श्री राम-स्वरूप धर्मप्राण व्यक्ति थे। उन्हे तुलसी की रामायण, जिसके वह नित्य-नियमित अध्येता थे, कण्ठस्थ थी। मानव जी कुल जमा 66 वर्ष के है। उनके लिए लम्बा समय साहित्य-सेवा के लिए पडा है।



डॉ० मथुराप्रसाद जी मानव (दाये) को 'महापुरुषो की खोज मे' लिखवाते हुए लेखक

पिछले उन्नीस वर्षों से मैं फीरोजाबाद मे रह रहा हूँ। यद्यपि इस बीच ज्ञानपुर और कोटद्वार मे भी कई वर्ष रहना पडा। इस नगर के साहित्यिक कार्यों मे सबसे अधिक सहयोग मुझे बन्धुवर जगन्नाथ लहरी ने दिया है। उनके पत्र 'फीरोजाबाद सन्देश' ने मेरी पूरी-पूरी सहायता की थी। तत्पश्चात् 'युग परिवर्तन' के सम्पादक भाई जगदीश मृदुल का नाम आता है। इन दोनो पत्रो ने मेरे पचासो लेख छापे होगे। मेरे साहित्यिक कार्यों मे भाई उमेश जोशी का पूरा-पूरा सहयोग रहा है। गांधी विचार केन्द्र उन्ही के द्वारा सचालित हुआ था। आज भी वह नगर की साहित्यिक गातिविधियो के केन्द्र बने हुए हैं।

फीरोजाबाद के साहित्यिक तथा सास्कृतिक क्षेत्र मे भाई रत्नलाल बसल का नाम सर्वोपरि उल्लेख योग्य है। स्कूली शिक्षा तो उन्होने नाममात्र को ही पायी है, पर पढा बहुत है। बाल्यावस्था से ही वह राज-नैतिक तथा साहित्यिक कार्यों मे रुचि रखते रहे हैं और सकटग्रस्त साहित्य-सेवियो की उन्होने बहुत सेवा की और करायी है। मुझे अभिनन्दन-ग्रन्थ भेट कराने का सुझाव उन्ही का था और दो हजार रुपये का चन्दा कराकर उन्होने ही उसे प्रारम्भ भी कर दिया था। शेष की सारी जिम्मेदारी बन्धुवर वृन्दावन दास जी (मथुरा) पर पडी थी। क्रान्तिकारियो की भी काफी सहायता उन्होने करायी है। उनके प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन मे उन्हे भी कुछ प्ररेणा मुझसे मिली थी पर उसका बदला उन्होने दस-बीस गुनी सेवा करके चुका दिया है।

इस अवसर पर मुझे स्व० गणेशलाल शर्मा प्राणेश की याद आती है। वह अच्छे कवि तथा लेखक थे और मेरे प्रति बडी श्रद्धा भी रखते थे। समय-समय पर साथ टहलते हुए, जो बातचीत उनसे हुई थी उसे उन्होंने लिपिबद्ध कर लिया था, यह बात उनके स्वर्गवास के बाद ही मुझे मालूम हुई। उन्होंने आचार्य प० पद्मसिंह शर्मा जी पर शोध-कार्य किया था। उसमें उनके 1200 रुपये खर्च भी हो गये थे पर उनका शोध-ग्रन्थ सशोधनार्थ लौटा दिया गया था ! वह सशोधन नही कर सके। उनकी पुत्री ने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली है। 'फीरोजाबाद-परिचय' ग्रन्थ उन्होने मेरी प्रेरणा से ही लिखा था जिसमे फीरोजाबाद के सर्वांगीण विकास पर प्रकाश डाला था। उनका एक काव्य सग्रह 'प्राणेश-पुष्पाञ्जलि' के नाम से प्रकाशित हुआ था। 'फीरोजाबाद के पचरत्न' एक छोटी-सी पुस्तिका भी उन्होने छपवायी थी जिसमे नगर के प्रमुख पाँच समाज-सेवियो के काव्य-चित्र थे।

बहुत कम लोग इस बात को जानते हैं कि स्व० भाई द्वारिकाप्रसाद सेवक फीरोजाबाद के ही निवासी थे और भारती भवन की स्थापना उन्होने ही की थी। आगे चलकर वह इन्दौर मे रहने लगे थे और वही से उन्होने मेरी 728 पृष्ठ की पुस्तक 'प्रवासी भारतवासी' छपायी थी और उसके बाद 'अमेरिका मे केशवदेव शास्त्री' पुस्तिका भी। मेरे इन्दौर निवास के छ वर्षों मे उनसे मुझे बडी सहायता मिली थी। उनके अन्तिम दिन बम्बई मे ही बीते। फीरोजाबाद मे उनकी कुछ जमीदारी थी, जिसे उन्होने बेच दिया था। उनकी गणना घर-फूंक तमाशा देखने वालो मे की जाती थी।

मेरे 'विशाल भारत' के दिनो मे और उसके बाद भी सर्वथा निस्वार्थ भाव से, बिना एक पैसा लिए भाई श्यामसुन्दर खत्री जी ने मेरी बडी सहायता की थी और वह जीवन के अन्त तक मेरे सहायक बने रहे। विश्व भारती का रामानन्द चटर्जी अक उन्ही की सहायता से निकला था और ब्रजमोहन वर्मा स्मृति ग्रन्थ भी। 'विशाल भारत' की सफलता का अधिकाश श्रेय उसके लेखको और कवियो को ही मिलना चाहिए। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण जी, कविवर दिनकर जी, बन्धुवर सोहनलाल द्विवेदी, बहिन सत्यवती मलिक, स्व० कमला चौधरी तथा चन्द्रगुप्त विद्यालकार इत्यादि अनेक प्रतिष्ठित लेखको और कवियो ने 'विशाल भारत' मे अपनी रचनाये भेजी थी। यह सूची इतनी लम्बी है कि यहाँ दी नही जा सकती।

मेरे पूज्य पिताजी अक्सर यह दोहा दुहराते रहते थे—

जो तृन सम उपकार को, जानत सदृश पहार
ऐसे सुजन कृतज्ञ को, होति न कबहूँ हार ॥

मेरे प्रचार-कार्य मे रामराज्य के सम्पादक भाई रामनाथ जी गुप्त ने भी बडी मदद की थी। आज भी 'अमर उजाला', 'विकासशील भारत', 'निजन गढ गौरव' 'सत्यपथ', 'जनतायुग', 'देश-धर्म', 'स्वतन्त्र भारत' आदि अनेक पत्र-सम्पादक मेरे लेख छापते रहते हैं। मैं अपने इन सभी सहायको और सहयोगियो का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

7

प्रवासी भारतीयों के लिए

श्री तोताराम सनाढ्य से भेंट

15 जून, सन् 1914 को मैं अपने जीवन का एक महत्त्वपूर्ण दिवस मानता हूँ, क्योकि उसी दिन फीरोजाबाद के भारती-भवन पुस्तकालय मे मुझे पण्डित तोताराम जी सनाढ्य के दर्शन हुए थे। वह एक महीने पूर्व फीजी द्वीप मे इक्कीस वर्ष रहकर भारतवर्ष लौटे थे और कलकत्ते मे उनका एक भाषण हुआ था। भारती-भवन के प्रबधक लाला चिरजीलाल ने मेरा परिचय पण्डित तोताराम जी से कराया। मैंने छूटते ही कहा, "पण्डित जी! आप अपने विदेश निवास के अनुभव लिख क्यो नही देते?" उन्होने उत्तर मे कहा, "मैं कोई लेखक तो हूँ नही, बोलकर कुछ बतला सकता हूँ। कोई लिख सके तो अच्छी बात है।" मैंने सहर्ष इस काम को अपने जिम्मे ले लिया और पन्द्रह दिन तक निरन्तर वह अपने अनुभव मुझे सुनाते रहे। मैने उन्हे अपनी भाषा मे लिपिबद्ध कर दिया। चूँकि मै सरकारी नौकर था, इसलिए अपना नाम दे ही नही सकता था। इस कारण 'फीजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष' नामक पुस्तक पण्डित तोताराम के नाम से ही छपी। दरअसल उसके वास्तविक लेखक वही थे और मैने तो केवल एक लिपिक का काम किया था। उस पुस्तक को जो प्रसिद्धि प्राप्त हुई, उसका विवरण आगे चलकर दिया जायेगा। इस समय तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस पुस्तक ने मेरे जीवन मे एक मोड ला दिया था और पूरे बाईस वर्ष तक प्रवासी भारतीयो की सेवा मेरे जीवन का मुख्य विषय रहा।

पण्डित तोताराम सनाढ्य



यह कार्य बहुत अशो मे सफल रहा । प्रवासी भारतीयों की ओर भारतवासियो का ध्यान गया । महात्मा गाधी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्री गोपाल कृष्ण गोखले, श्री मोतीलाल नेहरू, श्री जवाहरलाल नेहरू, श्रीमती सरोजिनी नायडू व माननीय श्रीनिवास शास्त्री इस आन्दोलन मे सहायक रहे। इसके फलस्वरूप शर्तबन्द कुली प्रथा, यानी गिरमिट प्रथा की समाप्ति हुई। भारत से बाहर बसे प्रवासी भारतीयो की ओर देश का ध्यान गया। वहाँ पर अध्यापक, प्रचारक, पुस्तकें तथा समाचार-पत्र भेजे गये, जिनसे उनमे जागृति आई व भारत के प्रति उनका तथा उनकी सन्तान का प्रेम बढा । दक्षिण अफ्रीका, गयाना, फीजी या अन्य उपनिवशो से जो भारतीय लौटे उनके पुनर्वास तथा सहायता का काम हाथ मे लिया गया । फीजी से वापस लौटने वालो तथा कलकत्ते के मटिया बुर्ज पर बसने वाले प्रवासियो की सहायता के लिए स्थानीय मित्रो, सरकार तथा देश-भर के अन्य सहयोगियो द्वारा सहायता व पुनर्वास के काम को आगे बढाया गया। मैंने स्वामी भवानीदयाल सयासी के सहयोग से उनकी समस्याओ के बारे मे 1936 मे एक रिपोर्ट भी तैयार की। स्वामी जी ने भारत लौटकर अजमेर मे एक प्रवासी भवन बनाया परन्तु दिल्ली मे प्रवासी भवन का अभाव अब तक खटकता रहा है। प्रधानमत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू उससे सहमत थे व प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने भी उसमे रुचि दिखाई है। भारतीय सास्कृतिक सम्बन्ध परिषद ने मेरे सुझाव पर 'फीजी मे भारतीयो के आव्रजन' का एक प्रामाणिक इतिहास बन्धुवर जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी से लिखवा भी लिया है। उन्हे मैंने अपनी सारी सामग्री उपयोग करने के लिए दी तथा समय-समय पर परामर्श भी दिया। इस प्रकार प्रवासी भारतीयो का काम यद्यपि बीच मे कुछ रुक गया था परन्तु एक प्रकार से अब तक चलता रहा है। प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी मारीशस, गयाना, बर्मा तथा फीजी जाकर प्रवासी भारतवासियो से मिल आई है और उनकी समस्याओ पर विचार हुआ है : हाल ही मे नये सिरे से भारतवासी अमेरिका, यूरोप तथा पश्चिमी एशिया मे रोजगार के लिए जा रहे है और समस्याओ को समझने व उनसे सम्पर्क रखने की जरूरत भी उतनी ही है।

पूर्वी अफ्रीका की मेरी यात्रा

स्वभाव से ही मै यात्रा-भीरु हूँ । यात्रा करने के कितने ही सौभाग्यपूर्ण अवसर मैने अपनी भीरुता के कारण खो दिये । मै केवल एक बार पूर्वी अफीका की यात्रा कर सका और दो बार रूस की । मेरी अफ्रीका की यात्रा की कहानी पढ़ लीजिये

काँग्रेस की वर्किंग कमेटी की मीटिंग उन दिनो साबरमती आश्रम मे होने वाली थी । महात्मा जी जेल मे थे । कोडा वेकटापैय्या वर्किंग कमेटी के प्रेसीडेण्ट थे और राजगोपालाचारी जी उसमे पधारे थे । जिस दिन मीटिंग हो रही थी उस दिन आचार्य गिडवानी जी ने मुझसे कहा, "चलिये, वर्किंग कमेटी की मीटिंग देख ले ।' मैने निवेदन किया कि मुझे वहाँ कौन जाने देगा ? गिडवानी जी ने कहा, "आप मेरे साथ चलिये, कोई नही रोकेगा ।" हम दोनो मीटिंग मे चले गये । कुल दस-बारह आदमी थे । राजा जी वहाँ मौजूद थे । उनसे मेरा परिचय कराया गया तो छूटते ही उन्होने कहा, "आप हम लोगो की पत्रों मे बहुत निन्दा कर रहे हैं ।" मै हक्का-बक्का रह गया। तब उन्होने बतलाया, "आप हम लोगो पर 'क्रिमिनल नेग्लीजेस' (अपराधपूर्ण उपेक्षा) का इल्जाम लगा रहे है कि हम लोग प्रवासी भारतीयो की उपेक्षा जान-बूझकर कर रहे हैं।" बात दरअसल यह हुई थी ये दो शब्द 'क्रिमिनल नेग्लीजेस' मुझे बहुत पसन्द आ गये थे । मैं उनका अनाप-शनाप प्रयोग अपने लेखों मे कर देता था । मद्रास का हिन्दू भी मेरे लेख छापता रहा था । इसलिए उसी मे उन्होने मेरे शब्द पढे होंगे ।

मैंने राजा जी की सेवा में इतना ही निवेदन किया कि मुझे उन शब्दों के लिए खेद है। ज्यादा बात करने का समय भी नहीं था इसलिए मामला जहाँ का तहाँ रह गया। वर्किंग कमेटी मे इस प्रश्न पर विचार हुआ कि कॉंग्रेस को अपना कोई प्रतिनिधि मडल पूर्व अफ्रीका भेजना चाहिए। उस समय कांग्रेस के सेक्रेटरी ने स्वय ही कहा, 'बनारसीदास चतुर्वेदी और जार्ज जोसेफ को क्यो न पूर्व अफ्रीका भेजा जाये?'' जोसेफ साहब उस समय 'यग इण्डिया' का सम्पादन कर रहे थे। वह उस समय उस मीटिंग मे मौजूद थे। इन्होने तुरन्त ही कहा, "चतुर्वेदी जी तो कांग्रेस के चवन्नी वाले मेम्बर भी नही हैं और मेम्बर बनना भी नही चाहते। फिर कांग्रेस उन्हें अपना प्रतिनिधि कैसे बना सकती है?" मैंने बडी विनम्रतापूर्वक निवेदन किया कि जोसेफ साहब का कथन ठीक ही है। नतीजा यह हुआ कि अकेले जार्ज जोसेफ साहब का नाम ही प्रतिनिधि मडल के लिए रखा गया। मीटिंग समाप्त हो गयी। तत्पश्चात् मैंने उचित समझा कि राजा जी से मिलकर अपने द्वारा प्रयुक्त उन अपशब्दो के लिए क्षमा-प्रार्थना कर लूँ। मै उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ। मैंने राजा जी से निवेदन किया कि भावावेश मे आकर मैंने उन अपशब्दो का प्रयोग किया था। इन शब्दो के ज़ोरदार प्रभाव को मैं नही समझ पाया था। इसलिए आपसे क्षमा-प्रार्थी हूँ। राजा जी बडे सुलझे हुए दिमाग के आदमी थे। वह बोले, "आपने अपनी गलती मान ली, बस यही काफी है। यह बात तो बतलाइये कि आप पूर्व अफ्रीका क्यो नही जाना चाहते?" मैंने कहा कि मैं तो कॉंग्रेस का मेम्बर भी नही हूँ फिर उसका प्रतिनिधि कैसे बन सकता हूँ। राजा जी ने उत्तर दिया, "आप चवन्नी वाले मेम्बर है या नही, इस सवाल का कोई महत्त्व नही। आपने दस वर्ष तक प्रवासी भारतीयो की जो सेवा की है उसी को ध्यान मे रखकर आपको अनुभव प्राप्त करने का मौका देना है।" उसी समय राजा जी ने कॉंग्रेस अध्यक्ष कोडा वेंकटापैय्या से कहा, "आप अपने अधिकार से पाँच सौ रुपया इस युवक की पूर्व अफ्रीका यात्रा के लिए दे सकते हैं ताकि यह भी जोसेफ के साथ अफ्रीका जा सके।" कॉंग्रेस प्रेसीडेण्ट ने राजा जी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और पाँच सौ रुपये जोसेफ साहब को दी हुई रकम मे बढा दिये। जोसेफ साहब पैसा लेकर ट्रावनकोर चले गये। वह किसी कारणवश वहाँ से लौट नही सके। मैं जब बम्बई पहुँचा तो मेरे पास पूर्व अफ्रीका की यात्रा के लिए एक पैसा भी नही था। तब मैं श्रीमती सरोजिनी नायडू की सेवा मे ताजमहल होटल मे उपस्थित हुआ और सम्पूर्ण स्थिति उन्हे बतला दी। उन्होने सारी बात ध्यानपूर्वक सुनकर कहा, "मैं तो लाचार हूँ। कुछ नही कर सकती।" पूर्व अफ्रीका के भारतीय नेता एम० ए० देसाई ने मेरी सर्वथा उपेक्षा ही की, तब मै बिल्कुल निराश हो गया। उस समय एक सिख सज्जन ने मुझसे कहा, "ये लोग आपको छोड ही देना चाहते हैं पर आप निराश न हो। अगर 100 रुपया आपको उधार मिल सके तो डेक (थर्ड क्लास) का टिकट लेकर अफ्रीका चले जाइये क्योकि आपको तो भारतीय कॉंग्रेस ने अपना प्रतिनिधि चुना है।" मैंने स्वर्गीय जमनालाल जी बजाज की दुकान से सौ रुपया उधार लिया और डेक का टिकट ले लिया। अब सवाल था, डॉक्टरी परीक्षा का। उन सिख महोदय ने डॉक्टरी परीक्षा का झूठा निशान मेरे हाथ पर लगा दिया और मुझे अन्य यात्रियो के साथ जहाज पर बिठला दिया। जहाज़ पर बैठने पर मै यह सोचने लगा कि इन लोगो ने मेरी उपेक्षा जान-बूझकर की है। डेक की यात्रा का यह मेरा पहला ही अवसर था। नि सदेह वह बडी कष्टप्रद होती है। जहाज़ के चलने पर बार-बार उबकाई आती थी। शौच का प्रबन्ध भी असन्तोषजनक था। आठ दिन तक यह यात्रा करनी पडी। श्रीमती सरोजिनी नायडू, एम० ए० देसाई और भारत सेवक समाज के सदस्य श्री सदाशिव गोविन्द बझे फर्स्ट क्लास मे यात्रा कर रहे थे। शिष्टता के नाते मैंने ऊपर फर्स्ट क्लास मे जाकर श्रीमती सरोजिनी नायडू से कहा, "मै भी इसी

जहाज से चल रहा हूँ। यदि मेरे योग्य कोई सेवा-कार्य हो, तो मुझे आदेश दीजिये।"

उस यात्रा की केवल एक बात मुझे याद है, वह यह कि मैने अपने लम्बे रजिस्टर मे एक लेख श्री गणेशशकर विद्यार्थी पर अग्रेजी मे लिखा था। गणेशजी उन दिनो जेल मे थे। अफ्रीका पहुँचने पर उस लेख को मैने भारतीय पत्रों को भेज दिया था।

आठ दिन बाद हम लोग पूर्व अफ्रीका के बन्दरगाह, मोमबासा पहुँचे।

भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू मे अद्‌भुत भाषण-शक्ति थी। उपस्थित जनता को वह मन्त्र-मुग्ध-सा कर देती थी। अग्रेजी और उर्दू दोनो मे ही खूब बोलती थी। पूर्व अफ्रीका कांग्रेस के अधिवेशन मे उनका भाषण अत्यन्त प्रभावशाली रहा। फिर तो उनके साथ लगभग एक महीने तक यात्रा करने और जगह-जगह पर उनका भाषण सुनने का सौभाग्य मुझे मिला। अफ्रीका के जगलो मे भी मोटर द्वारा उनके साथ यात्रा करनी पडी। वह प्रकृति की अनन्य प्रेमिका थी। नेरोबी से युगाण्डा तक रेल मे जाने के बजाय उन्होंने मोटर द्वारा घने जगलो मे होते हुए एक हज़ार मील की यात्रा करने का निश्चय किया था। जगलो मे उन दिनो शेर पाये जाते थे और मोटर द्वारा शेर के दर्शन करने की उनकी इच्छा थी। दो-तीन मोटरें साथ-साथ चल रही थी। उनकी मोटर मे बन्दूक लिये हुए शिकारी भी उनके साथ था। दुर्भाग्यवश सिह के दर्शन नही हुए पर उसकी आवाज़ दूर से अवश्य सुनाई पडी। उसी समय अफ्रीकन मोटर ड्राइवर ने कहा था 'शिम्बा'। स्वाइली भाषा मे सिह को 'शिम्बा' कहते हैं। सिंह तो नही मिला, चरख के दर्शन हो गये थे। नील नदी के जल प्रपात—रिपन फाल्स के दर्शन हम लोगो ने साथ-साथ किये थे।

टांगानिक्या (भूतपूर्व जर्मन ईस्ट अफ्रीका) की यात्रा भी बडी मनोरजक रही। वहाँ के मोशी नामक स्थान से अफ्रीका की सबसे ऊँची चोटी किलीमजार के दर्शन हुए थे। उस हिममण्डित पर्वत श्रेणी को देखकर मैं मुग्ध रह गया था। उस पर मैंने एक तुकबन्दी भी की थी जिसे भाई माखनलाल चतुर्वेदी की सेवा मे भेजा था। पूर्व अफ्रीका मे उन दिनो जगह-जगह आगाखानी खोजा मुसलमानो की छोटी-छोटी बस्तियाँ थी जहाँ सुदूर जगलो मे वह छोटे-मोटे व्यापार करते थे। कभी-कभी हमारी मोटर रात को बारह बजे उस वन्य प्रदेश मे पहुँच जाती और बीस-पच्चीस भारतीयो के बीच श्रीमती सरोजिनी नायडू का भाषण होता था। श्रीमती सरोजिनी देवी के अद्‌भुत पराक्रम के दृष्टान्त मुझे देखने को मिले। प्रमाद का उनमे नामोनिशान भी न था और हास्यप्रवृत्ति तो उनमे पराकाष्ठा पर थी। किसी आदमी ने उनसे कहा, "आप दक्षिण अफ्रीका जा रही हैं वहाँ जनरल स्मट्स से मुकाबला होगा।" सरोजिनी नायडू ने तुरन्त जवाब दिया, "जनरल इज़ ए स्ट्रॉंग मैन, आई एम ए स्ट्रॉंग वोमैन।"

पूर्व अफ्रीका से श्रीमती सरोजिनी नायडू दक्षिण अफ्रीका जाने वाली थी। वह यह नही चाहती थी कि मै उनके साथ जाऊँ इसलिए उन्होने मुझे बुलाकर कहा, "यू आर नॉट वैल इक्विप्ड फार दि टूर।" (आप उस यात्रा के लिए पूर्णतया सुसज्जित नही हैं।) उत्तर मे मैंने निवेदन किया, "भारत से पण्डित जवाहरलाल जी ने दो हज़ार रुपये तार द्वारा मुझे भेज दिये है और उनसे दक्षिण अफ्रीका की यात्रा के लिए साजो-सामान इकट्ठा कर सकता हूँ। लेकिन अब मैं यात्रा नही करना चाहता, घर लौट जाना चाहता हूँ। ये सब बातें सर्वे ऑफ़ इण्डिया—भारत सेवक समिति के सदस्य सदाशिव गोविन्द बझे को ज्ञात हो गई थी और उन्होने ठक्कर बापा को एक पत्र मे लिख भेजी थी। बझे साहब के उस पत्र को गश्ती चिट्ठी बनाकर सोसाइटी के अन्य सदस्यो को भी भेज दिया गया था। अकस्मात् जिस दिन बझे साहब का वह पत्र मैनपुरी मे मिस्टर ऐण्ड्रूज़

दुबे को मिला, उसी दिन 'लीडर' में उन्होंने श्रीमती सरोजिनी नायडू की प्रशसा मे मेरा लेख पढ़ा और वह चकित रह गये। बात दरअसल यह थी कि श्रीमती सरोजिनी देवी के रहन-महन का स्टेण्डर्ड बहुत ऊँचा था। पोशाक के विषय मे मेरी उपेक्षा उन्हे अरुचिकर लगी थी। इसलिए उन्होने मेरे बजाय अफ्रीका के लखपति मुस्लिम सज्जन को साथ ले जाना ठीक समझा। ये सब बातें महात्मा जी के कानो तक पहुँच गयी थीं। जब मैं अफ्रीका से बम्बई लौटा तो महात्मा जी ने श्री देवदास गाधी को आदेश दिया कि बनारसीदास चतुर्वेदी को जहाज से सीधा मेरे पास लाओ। उन दिनो महात्मा जी समुद्र तट पर जुहू (बम्बई) मे विश्राम कर रहे थे। जब मैं उनकी सेवा मे पहुँचा तो उन्होने कहा, "नाट ए वर्ड अगेंस्ट मिसिज नायडू" (यानी एक शब्द भी सरोजिनी देवी के खिलाफ न कहिये)। मैंने तभी उनकी सेवा मे निवेदन किया, "मैंने तो उनकी प्रशसा मे एक लेख अग्रेजी पत्रो मे भेजा था।" महात्मा जी मेरे उत्तर से बहुत सन्तुष्ट हुए। अपने उस लेख की प्रति मैंने श्रीमती सरोजिनी देवी की सेवा मे भी भेज दी थी। उसकी स्वीकृति मे उन्होने एक बहुत बढिया पत्र मुझे अँग्रेजी मे भेजा था। वह मूल पत्र तो राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित है पर उसकी प्रतिलिपि तथा अनुवाद मेरे पास है। उनके अग्रेजी पत्र का अनुवाद यहाँ दिया जाता है—

ब्रिटिश इडिया स्टीम नेवीगेशन क० लि०
एस० एस० खडाला
19 फरवरी, 1924

प्रिय श्री बनारसीदास,

आपके कृपा पत्र तथा उससे भी अधिक कृपालु उस प्रशसापूर्ण लेख के लिए, जो आपने मेरे केनिया के काम के बारे लिखा है, धन्यवाद। वहाँ सब मजे ही मजे नही रहे हैं, लेकिन यह वास्तविक गौरव की बात है कि उस समस्या के हल मे, जो प्राय हमारे हाथों मे ही निहित है, कुछ थोडा योगदान हो सका।

मुझे बडी प्रसन्नता है कि आपको अपनी कोठरी छोडकर वास्तविकताओ का आमना-सामना करना पडा। परछाइयो के पीछे पडने से नही बल्कि वास्तविकता को साहसपूर्वक पकडने से ही कोई किसी उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है—हमेशा आसान व लोकप्रिय बाते कहने से ही कर्त्तव्य की पूर्ति नही हो जाती—कभी-कभी कडी परन्तु लाभकारी बात भी कहनी पडती है। मैं समझती हूँ कि आप अब प्रवासी भारतीयो की वास्तविक सेवा करने की स्थिति मे होगे। तुमको उनकी समस्याओ को अध्ययन करने की बढिया सुविधा मिली—सरकार द्वारा पैदा की गयी समस्याएँ और स्वय उनके द्वारा पैदा की गयी समस्याएँ जिनका भार वह ढो रहे हैं। दृढ तथा न्याययुक्त ढग से तराजू को बराबर रखकर ही उनकी सहायता व सेवा कर सकने हो। मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारी शेष यात्रा श्री बझे के मार्गदर्शन मे होगी। वह इतने योग्य तथा स्पष्ट-द्रष्टा हैं कि एक निष्ठावान विद्यार्थी तथा समार के प्रति जागरूक पुरुष का सुनहरा सयोग बन जाता है। कृपया उन्हे मेरा स्मरण करावें और बताएँ कि मुझे दु ख है कि हम साथ-साथ वापस नही जा पायेंगे।

महात्मा जी से मेरा प्रणाम कहिए और बा से प्यार तथा सब मित्रो को सलाम, श्री ऐण्ड्रूज को भी, जो आपके आध्यात्मिक माँ-बाप हैं, मैं चाहती हूँ कि वृहत्तर भारत के तुम्हारे लग्नपूर्ण श्रम को सभी सफलताएँ प्राप्त हो। आपके स्वार्थविहीन, केवल प्रेम के लिए किये गये परिश्रम से मैं बहुत द्रवित हुई हूँ और अब जब आपने विश्व का विशालतर परिप्रेक्ष्य प्राप्त कर लिया है, मुझे विश्वास है कि आप अपने अकेले दम से महत्त्वपूर्ण काम को प्रथम ज्ञान, अनुभव तथा विवेक से परिपूर्ण करेंगे जिसे आपने केनिया तथा युगाडा के

छोटे प्रवास-काल मे प्राप्त किया है—इन गुणो की आपको आवश्यकता थी। विदा, तथा आपके प्यार तथा हार्दिकता के लिए पुन धन्यवाद।

आपकी बहुत शुभाकाक्षी
सरोजिनी नायडू

कांग्रेस में प्रवासी विभाग की स्थापना

प्रवासी भारतीयो की सेवा का कार्य मैंने 15 जून, 1914 को प्रारम्भ किया था। तभी से मेरे मन मे यह भावना थी कि इस पवित्र कार्य के लिए किसी सस्था की स्थापना होनी चाहिए। सस्था का मोह अधिकाश कार्यकर्ताओ को ग्रस लेता है और वे उसके चक्कर मे पडकर अपने समय, शक्ति तथा धन का भी अपव्यय कर बैठते हैं। स्वभावत मैं भी इस मोह मे फँस गया।

सन् 1925 के प्रारम्भ मे जब मै साबरमती आश्रम मे रह रहा था, कांग्रेस ने अपने प्रतिनिधि के रूप मे मुझे अफ्रीका भेजने का निश्चय किया था। दूसरे दिन बम्बई जाने के पूर्व मैने रात को श्रद्धेय काका साहब कालेलकर से भेट करने का निश्चय किया। वह बातचीत अग्रेज़ी मे हुई थी क्योकि मै उसे अग्रेजी पत्रो को भेजना चाहता था। उस इटरव्यू मे काका साहब ने सुझाव दिया था कि प्रवासी भारतीयो के लिए कांग्रेस मे प्रवासी भारतीय विभाग खुलवा देना चाहिए। यह प्रस्ताव मुझे बहुत पसन्द आया और मैंने नैरोबी पहुँचकर इस विषय पर पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया। यह पत्र-व्यवहार राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित है। साल-भर तक इस विषय की चर्चा इन पत्रो मे चलती रही और कानपुर के कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर, जो भारत कोकिला सरोजिनी नायडू की प्रधानता मे हुआ था, यह प्रस्ताव रखा गया था। स्व० भाई श्री कृष्णदत्त जी पालीवाल ने कृपाकर मुझे ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का सदस्य बना दिया था, इसलिए विषय-निर्धारिणी समिति मे भाग लेने का अवसर मुझे मिल गया था। मैने हिन्दी मे अपना भाषण दिया और दक्षिण भारत के सदस्यो की सुविधा के लिए अग्रेज़ी मे अपना भाषण पढकर सुनाने लगा। इस पर प० जवाहरलाल जी ने एतराज़ करते हुए कहा, "मैडम प्रेसीडेण्ट, आर मैनस्क्रिप्ट स्पीचिज़ आर अलाउड हियर!" (अर्थात् प्रेसिडेंट महोदया! क्या हस्तलिखित व्याख्यानो के पढने की अनुमति यहाँ दी जाती है?) मैंने उत्तर मे इतना ही कहा, "यदि मैं अच्छी अग्रेज़ी नही बोल सकता तो भाव प्रकट करने की अनुमति मुझे मिलनी ही चाहिए।" मैंने अपना पढ़ना जारी रखा।

श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और कहा कि इसे प्रेसीडेण्ट के प्रस्ताव के रूप मे रख दिया जायेगा क्योकि यह कोई विवादग्रस्त प्रश्न नही है। ऐसा ही किया भी गया। उक्त प्रस्ताव मे पाँच व्यक्तियो की एक कमेटी मुकर्रर की गई थी— (1) लाला लाजपतराय (2) डॉ० असारी, (3) श्रीमती सरोजिनी नायडू, (4) श्री टी० सी० गोस्वामी और पाँचवाँ मैं स्वय।

इस सम्बन्ध मे एक बात कहना आवश्यक है कि महात्मा जी ने निजी तौर पर मुझसे कहा था, "प्रवासी विभाग की स्थापना का प्रस्ताव मत रखो, क्योकि कांग्रेस वाले न तो खुद काम करेंगे और न तुम्हें करने देंगे। मैं तो तुम्हारे प्रस्ताव का विरोधी हूँ।" मैंने विनम्रतापूर्वक बापू से प्रार्थना की कि आप मुझे प्रयोग कर लेने दीजिए। विरोध न कीजिए। बापू ने मेरी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा, "अच्छा भाई, प्रयोग करके देख लो।" महात्मा जी की भविष्यवाणी सच हुई और कांग्रेस ने मुझे कार्य करने का मौका नही दिया,

क्योंकि मैं अवैतनिक कार्य कर ही नही सकता था। गरीबी एक अभिशाप है और निर्धन कार्यकर्त्ताओ को कार्य करने के अवसर ही नही मिलते। उन दिनो लाला लाजपतराय जी दिल्ली मे थे और मैं उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ था। बातचीत करते हुए मैंने शिकायत की कि कांग्रेस लीडर यह नही करते। इस पर लाला जी ने बडे तपाक से कहा, "आप यह उम्मीद क्यो करते है कि लीडर लोग आपकी मदद करें?" लाला जी के इस स्पष्ट उत्तर से मुझे कुछ बुरा तो अवश्य मालूम हुआ था। उनके पास से लौटते समय सडक पर यह सोचता चला जा रहा था, 'प्रवासी भारतीयो का कार्य अकेले मेरा ही है!'

1925 की कानपुर कांग्रेसी मे प्रवासी विभागकी स्थापना का प्रस्ताव तो जहाँ का तहाँ पडा रहा और प० जवाहरलाल जी ने इसी विषय परएक नया प्रस्ताव कलकत्ते की कांग्रेस मे पास करा दिया। एक बार पण्डित जी से मुलाकात होने पर मैंने अपनी फाइल जब उन्हें दिखाई तो उन्होने कहा, "आपको तो बहुत महीनो तक परिश्रम करना पडा, पर मैंने यह प्रस्ताव कुछ मिनटो मे ही पास करा लिया था।" इस उत्तर को सुनकर मैं चुप रह गया। मेरे मन मे यह विचार अवश्य आया कि मैं यह निवेदन कर दूँ कि आप जैसे साधन सम्पन्न और शक्तिशाली नेता के लिए जो काम मिनटो मे कराना आसान है उसके पूरा करने मे मेरे जैसे साधनहीन मामूली आदमी को महीनो लगाने ही पडते है।

कांग्रेस के प्रवासी विभाग से करीब ढाई वर्ष तक मुझे 25 रुपये महीने प्रवासी भारतीयो की सेवा-कार्य के लिए मिलते रहे फिर वह भी बन्द हो गये। सन् 1936 मे प० जवाहरलाल जी का पत्र मिला जिसका आशय यह था "आप जानते ही हैं कि कांग्रेस मे एक प्रवासी विभाग है और इस विषय का सारा काम उसी विभाग से होगा। इसलिए आपकी सहायता बन्द की जाती है।" इस पत्र से मेरे हृदय को धक्का लगा और मैने अत्यन्त निराश होकर प्रवासी भाइयो के कार्य को तिलाजलि ही दे दी। जिस मिशन मे मेरे क्षुद्र जीवन के 22 वर्षों का सर्वोत्तम समय खर्च हुआ था, जिसके लिए मैंने राजकुमार कॉलेज की नौकरी छोड दी और जिस पर काफी साहित्य भी मैंने प्रकाशित करा दिया था, उसको छोडते हुए मुझे हार्दिक वेदना हुई थी। पर इसके कुछ दिनो बाद ही मैंने दूसरा विषय 'शहीदो का श्राद्ध' अपना लिया। तब से अब तक मैं उसी कार्य मे व्यस्त रहा हूँ। मेरे प्रवासी भारतीयो के कार्य छोडने से स्वामी भवानीदयाल जी तथा दीनबन्धु ऐण्ड्रूज को बहुत खेद हुआ था। महात्मा जी की सेवा मे मैंने निवेदन किया, "आपका कहना ठीक ही था। कांग्रेस ने कार्य करने का मौका मुझे नही दिया, पर उसे मैं दोष नही देता।"

इस देश मे गरीब कार्यकर्त्ताओ के लिए कार्य करना कितना कठिन है, इसका अनुमान मेरे जीवन की इस दुर्घटना से लगाया जा सकता है।

कांग्रेस मे प्रवासी विभाग कायम हुआ और कुमारी मुकुल बनर्जी उसकी मंत्री बनी। उनके द्वारा एक काम तो अच्छा हुआ कि प्रवासी भारतीयो पर अंग्रेजी मे एक अच्छा ग्रन्थ निकल गया।

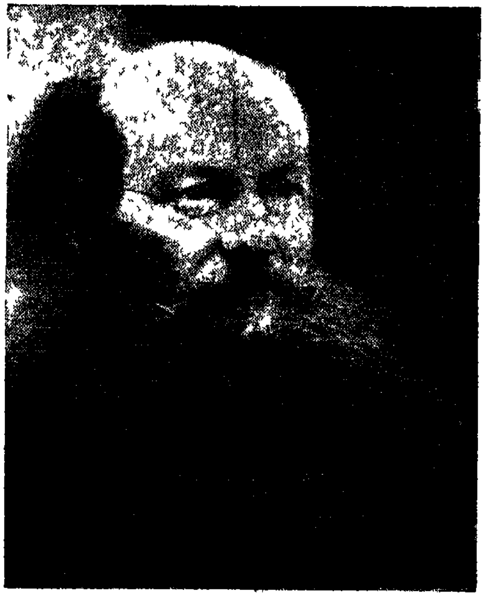
सन् 1914 से 1936 तक मेरे द्वारा जो सेवा बन पडी उसका रिकार्ड राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित है। यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ कि 'उस मिशन के बाद मैंने शहीदो के श्राद्ध का विषय अपने हाथ मे ले लिया और उससे मेरी आत्मा को बड़ी शांति भी मिली। तब से अब तक वह मेरा प्रिय मिशन बना हुआ है।

8

रूस की यात्राएं

रूस का भक्त मैं सन् 1918 से बन चुका था। जिन दिनो मैं डेली कॉलिज मे अध्यापक था और इन्दौर छावनी मे रह रहा था, एक शाम को घूमते-घामते वहाँ के सार्वजनिक पुस्तकालय विक्टोरिया लाइब्रेरी मे पहुँचा और एक अलमारी की पुस्तकें टटोलने लगा। वहाँ एक पुस्तक 'मेमोयर्स ऑफ ए रिवोल्यूशनिस्ट' (एक क्रान्तिकारी के सस्मरण) देखकर मैंने उसे निकाल लिया। वह प्रिंस क्रोपाटकिन का आत्म-चरित था। चूंकि क्राति शब्द के प्रति मेरे हृदय मे एक आकर्षण था, इसलिए मैं उसे अपने नाम लिखवाकर घर ले आया। यह बात तरेसठ वर्ष पहले की है। मैंने उस दिन स्वप्न मे भी इस बात की कल्पना नही की थी कि यह ग्रन्थ मेरी आत्मा को जकड लेगा और मुझे क्रोपाटकिन के विचारो का हिन्दी मे प्रचार करने का सौभाग्य आगे चलकर मिलेगा। वह आत्म-चरित उन्नीसवी शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ आत्म-चरित माना जाता है। उसका हिन्दी अनुवाद मेरे नाम से ही छपा है यद्यपि यह मेरे पुत्र चिरजीव बुद्धिप्रकाश द्वारा किया गया है। क्रोपाटकिन के विभिन्न निबन्धो का अनुवाद भी मैंने सस्ता साहित्य मडल द्वारा प्रकाशित कराया था। आगे चलकर मडल ने ही क्रोपाटकिन की दोनो किताबें—'सघर्ष या सहयोग' तथा 'रोटी का सवाल'—छापी थी। यह बतलाने की आवश्यकता नही कि क्रोपाटकिन अराजकवादी थे, यानी शासनमात्र के विरोधी।

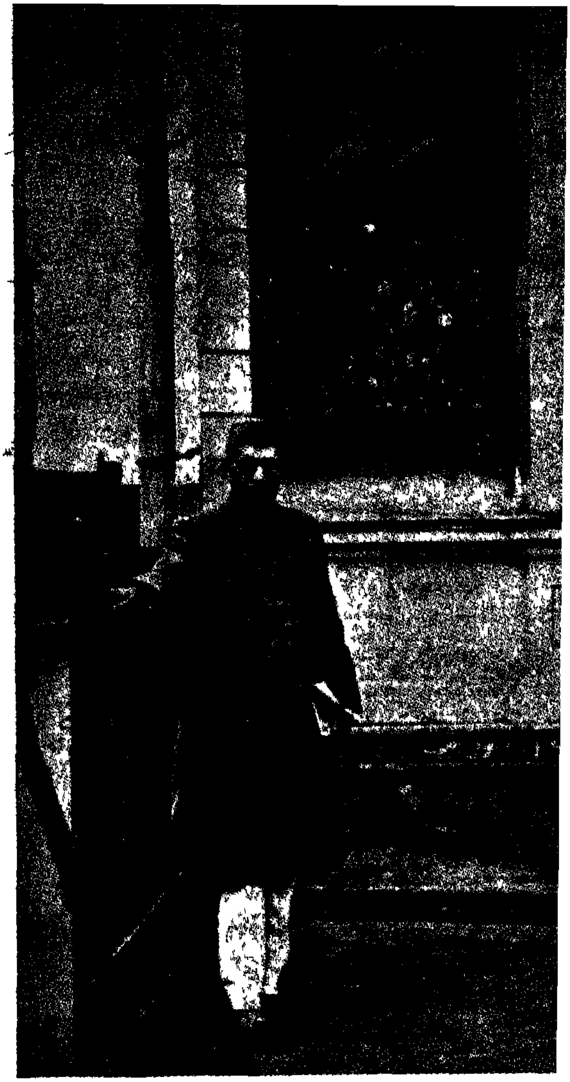
प्रिंस क्रोपाटकिन



यद्यपि मैं मनसा, वाचा अराजकवाद का अनुयायी था, परन्तु श्राईकोव नामक एक रूसी लेखक

ने मास्को मे मजाक करते हुए कहा, "जनाब, आप अराजकवादी हो ही नहीं सकते।" मैंने पूछा, "क्यों ?" उन्होंने तपाक से जवाब दिया, "कहाँ अराजकवाद और कहाँ राज्यसभा जिसके कि आप सदस्य हैं ?" मैं लज्जित होकर चुप रह गया था।

सन् 1959 में रूस मे अखिल रूसी लेखक सम्मेलन होने वाला था और उन लोगों ने भारत से दो व्यक्ति निमन्त्रित किये थे—उत्तर भारत से मैं और दक्षिण भारत से केरल के मलयाली भाषा के एक यशस्वी लेखक। जब रूसी राजदूतावास के सास्कृतिक कार्यकर्ता मिस्टर ऐफ़ीमोव ने यह प्रस्ताव मेरे सामने रखा तो मैंने कहा, "आप मुझे क्यो निमन्त्रित कर रहे हैं ? मैं तो साम्यवादी नही हूँ बल्कि साम्यवाद का विरोधी अराजकवादी हूँ।" ऐफीमोव साहब बड़े चतुर राजनीतिज्ञ थे। वह बोले, "आप भले ही अराजकवादी बने रहें, कौन आपसे कहता है कि आप अराजकवाद छोड दें। हम लोग अपने देश के लेखको की एक मीटिंग कर रहे हैं। आप उसमे दर्शक के रूप मे सम्मिलित हो जाइये।" मैं उनके तर्क का उत्तर न दे सका और रूस यात्रा के लिए उद्यत हो गया। आज जब मैं अपनी तत्कालीन मनोवृत्ति की याद करता हूँ तो अपनी हिमाकत पर मुझे हँसी आती है। यदि ऐफीमोव साहब होशियारी से काम न लेते तो रूस यात्रा का अवसर मेरे हाथ से निकल जाता। तत्पश्चात् मुझे रूस की यात्रा सन् 1966 मे दूसरी बार भी करनी पडी। बड़े खेदपूर्वक और पछतावे के साथ मैं यह स्वीकार करता हूँ कि अपने दम्भ और नासमझी के कारण मैंने विदेश यात्रा के कितने ही अवसर खो दिये। सन् 52 या 53 मे डाक्टर किचलू साम्यवादियो की किसी परिषद मे वीयना(आस्ट्रिया) जाने वाले थे और प० सुन्दरलाल जी ने यह तय किया था कि मैं उनका सहायक बनकर जाऊँ। उसके लिए उन्होने मुझे तार भी दिया था और मार्ग-व्यय का प्रबन्ध भी कर दिया था, पर मैंने जाना अस्वीकार कर दिया। इसके बाद जब प० सुन्दरलालजी एक यात्री दल के साथ चीन गये थे तब भी वह मुझे साथ ले जाना चाहते थे। उसके बाद पीकिंग से चीनी युवक मडल का मेरे लिए निमन्त्रण आया था पर उसे भी मैंने स्वीकर नही किया था।



लेखक प्रिंस क्रोपाटकिन के मास्को स्थित जन्म स्थान पर

क्यूबा-इंडिया फ्रैंडशिप एसोसिएशन का मैं प्रेसीडेण्ट था। दो बार क्यूबा जाने का निमन्त्रण मुझे मिला। पर उसे भी मैंने अस्वीकार कर दिया। मौलवी अब्दुल हक साहब ने अंजुमन तरक्किये उर्दू के वार्षिक उत्सव पर मुझे कराची बुलाया था पर मै वहाँ भी नही गया, जबकि जैदी साहब, एक साम्यवादी मित्र, किराये का प्रबन्ध करने को तैयार थे। ताशकन्द की एक कान्फ्रेंस मे जाना भी मैंने अस्वीकार कर दिया था। यहाँ यह भी निवेदन कर दूँ कि फर्स्ट क्लास रेलवे पास होने पर भी ससद सदस्यता के दिनो मे मैंने बहुत कम यात्राएँ की थी।

रूस की प्रथम यात्रा से मुझे बहुत अनुभव प्राप्त हुए। जब रूसी लेखको की मीटिंग मे बोलने का मौका मुझे मिला तो मैंने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया, "आप लोग केवल मार्क्स और लेनिन के ही सिद्धान्तो से सन्तुष्ट न रहें, क्रोपाटकिन और गाधी जी को भी साथ-साथ ले ले।" यहाँ यह भी बतला दूँ कि मैं क्रोपाटकिन के जन्म स्थान पर भी गया था और उनकी समाधि पर पुष्प चढाने वाला मै प्रथम भारतीय था। मास्को के निकट वहाँ बडा लम्बा-चौडा समाधि-स्थल है और एक वृद्धा रूसी महिला उसकी सरक्षिका हैं। उस महिला से मैंने जब पूछा, "क्या कोई अन्य भारतीय भी फूल चढाने आया था?" तो उन्होने उत्तर दिया, "क्रोपाटकिन की समाधि पर फूल चढाने वाले प्रथम भारतीय आप ही हैं।" जैसा कि मै लिख चुका हूँ कि मैं सन् 1918 से ही क्रोपाटकिन का भक्त बन चुका था और पूरे इकतालीस वर्ष बाद मुझे उनकी समाधि पर पुष्प चढाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

रूस से हम क्या सीख सकते हैं

यद्यपि मै रूस का अनन्य भक्त रहा हूँ तथापि यह मानने को तैयार नही कि सम्पूर्ण सत्य का ठेका रूस ने ही ले लिया है। मै समन्वयवादी हूँ। इग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रास और चीन, जापान इत्यादि मे जो कुछ अच्छे कार्य हुए हो उन सबकी हमे कद्र करनी चाहिए और उनके सर्वोत्तम गुणो का अनुकरण अपनी परिस्थितियो के अनुसार कर लेना चाहिए। जैन बन्धुओ के यहाँ अनेकान्त दर्शन है जिसका अर्थ यह है कि सत्य के अनेक पहलू होते हैं। पचशील का आधुनिक सिद्धान्त अनेकान्त का अनुवाद ही है।

इसमे कोई सन्देह नही कि मानव-जाति के उद्धार के लिए रूसी लोगो ने महान् कार्य किय है। उनकी उपलब्धियाँ विश्व के इतिहास मे सुप्रसिद्ध है। यदि रूसी लोगो ने हिटलर की नाजी सेनाओ का डटकर विरोध न किया होता तो ससार का एक बडा भाग अत्याचारियो द्वारा पददलित हो जाता। यह सौदा रूसी लोगो को बहुत महँगा पडा। स्वाधीनता की बलिवेदी पर लाखो ही युवक बलिदान हो गये।

लेनिनग्राद से 20-25 मील की दूरी पर लाखो बलिदानियो का एक स्मारक है जहाँ एक कुड मे निरन्तर आग प्रज्वलित रहती है। वहाँ कितने ही खेत है जिन पर लिखा हुआ है—सन् 42 के शहीद, सन् 43 के शहीद इत्यादि। पत्थरो की बडी-बडी दीवारो पर ये शब्द अकित है "आप लोगो के बलिदान भुलाये नही गये है और कभी भुलाये नही जायेगे।" रूस की अपनी दोनो यात्राओ मे मैंने उस समाधि स्थल की तीर्थ-यात्रा की थी। मेरे साथ जो रूसी दुभाषिया थे उन्होने एक लेख मे मेरी इस श्रद्धा का उल्लेख भी किया था। अपनी तथा विश्व की स्वाधीनता की रक्षा के लिए रूस के एक करोड से अधिक युवक बलिदान हो गये और लाखो ही रूसी युवतियाँ विधवा हो गयीं। उन विधवाओ को काम मे लगाने का प्रश्न अत्यन्त कठिन था, पर रूस सरकार ने उसे बडी सफलतापूर्वक हल कर लिया है। उन्होंने हर महकमे मे और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उनको स्थान दिया है।

रेलवे मे गार्ड का काम करते हुए मैंने उन्हे देखा और उषाकाल मे बडे-बडे रबड के पाइपो द्वारा सडको को धोते हुए भी देखा। होटलो मे टेलीफोन पर काम करते हुए वे दीख पडी। साइकिल बनाने की फैक्टरी मे बहुत-सी औरतें काम करती हुई दिखायी दी। घर पर उनके बच्चो की देखभाल करने क लिए धायें मुकर्रर थी। पुरुषो की अपेक्षा उन्हे कुछ सुविधाये अधिक दी जाती हैं—जैसे गर्भवती होने की छुट्टी और स्वास्थ्य की सुरक्षा का प्रबन्ध। रूस मे बहुत स्वास्थ्यागार—सेनीटोरियम—विद्यमान है जिनका उपयोग समय-समय पर मजदूर लोग करते हैं। जहाँ तक बच्चो की देखभाल का सम्बन्ध है, रूस दुनिया मे सबसे आगे है। विलायत की सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्री मिस म्यूरियल लीस्टर ने एक बार रूस की यात्रा की थी और लिखा था "यदि मेरा पुनर्जन्म हा तो मैं रूस मे पैदा होना पसन्द करूँगी, जहाँ बच्चो की इतनी अधिक परवाह की जाती है।" स्वय रूसी लोग बडे गौरव के साथ कहा करते है, "यदि हमारे देश मे किसी को विशेषाधिकार प्राप्त है तो वह बालक ही है।" रूस मे कोई प्रिविलेज्ड (सुविधाभोगी) क्लास नही है। सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी विजय-कुमार सिन्हा ने रूस की यात्रा के बाद एक किताब लिखी है, 'नया इन्सान'। इसमे सन्देह नही कि रूस ने नवीन मानव समाज के निर्माण के लिए महान् कार्य किये हैं और अपने इन प्रयोगो मे उसे लाखो ही आदमियो का बलिदान करना पडा है। विश्व के महान् लेखक रोमा रोला ने एक जगह लिखा है "मुख्य सवाल यह नही है कि भवन-निर्माण के कार्य मे मजदूरो के हाथ गारा और सीमेण्ट से कितने मैले हो गये है, बल्कि प्रश्न यह है कि जिस भवन का निर्माण उन्होने किया है वह कितना मजबूत है।" स्वय महात्मा जी ने रूसी लोगो के बलि-दान की मुक्त कठ से प्रशसा की थी।

इसमे कोई सदेह नही कि वाणी की जैसी स्वाधीनता हमे भारत मे प्राप्त है, वैसी रूसी लोगो को अपने देश म नही है। हम अपने प्रधानमत्री को रोज गालियाँ सुना सकते है। अपनी प्रथम रूस यात्रा मे मैने एक रूसी सम्पादक महोदय से पूछा, "हमने सुना है कि आपके देश मे वाणी की स्वाधीनता नही है। यह बात कहाँ तक ठीक है?" उन्होने बडे तपाक से जवाब दिया, "देखिये जनाब, यदि आप उस समाज-व्यवस्था को ही नष्ट-भ्रष्ट करना चाहे जो लाखो आदमियो के बलिदान के बाद हमने प्राप्त की है तो वैसा हम आपको नही करने देंगे और यदि आप गन्दे साहित्य की रचना करना चाहे तो हम आपको दबोच देगे।" हमारे देश मे तो अश्लील साहित्य की रचना की पूरी-पूरी स्वाधीनता है।

अभी दो-तीन साल पहले रूस के महान् लेखक अध्यापक वारान्निकोव जी मेरे घर पर पधारे थे। उन्होने बातचीत के सिलसिले मे कहा था, "मुझे अध्यापक के रूप मे उतना ही वेतन मिलता है जितना हमारे यहाँ किसी मोटर ड्राइवर को मिलता है।" उनकी इस बात से मुझे आश्चर्य हुआ था। रूस मे शिक्षा, चिकित्सा नि शुल्क है। उसमे किसी प्रकार का भेदभाव नही है।

अपने साहित्य-सेवियो की कीर्ति-रक्षा के लिए रूसी लागो ने जो महान् कार्य किये है उनकी प्रशसा विश्व-भर के पर्यटको ने की है। अकेले मास्को नगर मे चालीस सग्रहालय है। रूस मे चेखव (कहानी लेखक) के चार सग्रहालय है। अपनी दोनो यात्राओ मे मैंने टाल्स्टाय के महान् आश्रम की तीर्थ यात्राएँ की थी। वहाँ एक निर्देशक है जिसके अधीन एक सौ रूसी काम कर रहे है। टाल्स्टाय के जीवन मे जो चीज जैसी थी यथा-शक्ति वैसी ही बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है। गज-डेढ़ गज ऊँचे एक पौधे को देखकर मैने उसके बारे मे पूछा तो हमारे निर्देशक ने कहा, "यह पौधा हमने इसलिए लगा दिया है कि पाँच-सात वर्ष बाद पास का वृक्ष जीर्ण हो जायेगा और तब यह उसका स्थान ले लेगा।" टाल्स्टाय की समाधि जैसी कच्ची बनी हुई थी वैसी ही बनी हुई है और उस पर फूल उग रहे हैं।

9

मेरे जीवन के मिशन

मैंने जान-बूझकर जीवन के मिशन निर्धारित किये हो ऐसा मैं नही मानता। मेरे पूर्वजन्मो के पुण्य के कारण अथवा माता-पिता के आशीर्वादो से वे मिशन आकस्मिक ढग पर ही मेरे हाथ लग गये।

15 जून, 1914 को मैंने यह स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी कि प्रवासी भारतवासियो की सेवा का यज्ञ मेरे द्वारा प्रारम्भ होगा और उसमे मेरे जीवन के पूरे 22 वर्षों का सर्वोत्तम समय लग जायेगा। 16 अप्रैल, 1918 को मैंने कविरत्न सत्यनारायण जी के देहावसान पर उनकी कीर्ति-रक्षा के लिए जो सकल्प किया था उसके पूरे होने मे 63 वर्ष लग जायेंगे, यह भी मैं नही सोच पाया था। शहीदो के श्राद्ध में मेरे 30-35 वर्षों का समय बीत चुका है। यद्यपि इतने लम्बे अर्से मे मेरे द्वारा कुछ छुटमुट कार्य भी हुए, जैसे—जनपद-आदोलन, घासलेटी साहित्य-विरोधी आदोलन, प्रात-निर्माण आदोलन, इत्यादि, पर मुख्य मिशन तीन ही रहे।

प्रवासी भारतीयो की सख्या इस समय लगभग एक करोड है और वे ससार के भिन्न-भिन्न भागो मे बसे हुए हैं। सन् 1914-15 मे मैंने 'फीजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष' पण्डित तोताराम के नाम से लिखी थी और पूरे चार वर्ष लगाकर 728 पृष्ठ का ग्रन्थ 'प्रवासी भारतवासी' लिखा, जिसकी भूमिका दीनबन्धु ऐण्ड्रूज ने लिखी थी। उन दिनो की एक घटना मुझे खासतौर पर याद आ रही है। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तैयार हो गयी थी और वह छपने जा ही रहा था कि फीरोजाबाद से मुझे इन्दौर मे एक पत्र मिला जिसमे लिखा गया था कि पुलिस 'फीजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष' के असली लेखक को तलाश कर रही है और शायद इन्दौर मे तलाशी हो। मैं उन दिनो राजकुमार कॉलेज मे अध्यापक था और तलाशी होने पर नौकरी छूटने की पूरी-पूरी आशका थी। मैंने पुस्तक की पाण्डुलिपि को अनाज के एक व्यापारी के यहाँ रखवा दिया और उन्होंने भी डर के मारे उसे एक पिसनहारी के यहाँ सुरक्षित कर दिया। तत्पश्चात् मैं पुलिस द्वारा तलाशी की प्रतीक्षा करने लगा। उस समय मैं इतना चिंतित था कि रात को भोजन भी नही किया और रोटी-साग एक मोरी मे डाल दिया। वह ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का जमाना था और राजकुमार कॉलेज के किसी अध्यापक का सरकार-विरोधी आदोलन मे मुब्तला (सम्मिलित) होना खतरनाक समझा जाता था। सौभाग्य से तलाशी की खबर निराधार निकली और मैं साफ बच गया। 'प्रवासी भारतवासी' पुस्तक सकुशल बम्बई मे छप गयी और उसकी लिखाई के पारिश्रमिक के रूप मे मुझे 100 प्रतियाँ मिली, उन्हें मैंने रजिस्ट्री द्वारा अपने खर्च से देश

के भिन्न-भिन्न लेखको और नेताओं को भेज दिया। पुस्तक पर लेखक की जगह 'एक भारतीय हृदय' छपा और बहुत वर्षों तक इसी उपनाम से मेरे लेख छपते भी रहे। समाचार पत्रो मे पुस्तक की भूरि-भूरि प्रशसा भी हुई। पर महात्मा गांधी को उस पुस्तक मे बहुत-सी भूलें प्रतीत हुई और महादेवभाई की डायरी मे बापू का दीनबन्धु एण्ड्रूज के नाम एक पत्र भी छपा है। यद्यपि महादेवभाई ने मेरा नाम छोड दिया था तथापि उस पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह मेरी पुस्तक के विषय में ही था। बहुत वर्षों बाद वह पत्र मुझे महादेव भाई की डायरी मे पढने को मिला। निस्संदेह मेरी पुस्तक मे बहुत-सी भूलें रह गयी पर एक साधनहीन लेखक के लिए ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर ग्रन्थ लिखना एक दुस्साहस ही था। न तो मुझे यात्रा की सुविधा थी और न पुस्तको के खरीदने के लिए पैसा। समय का अधिकाश भाग जीविका के लिए कार्य करने मे बीतता था, बाक़ी का वक्त ही पुस्तक को अर्पित किया जा सका। उसके पूर्व प्रवासी भारतीयो का कोई इतिहास अग्रेजी तक मे नहीं लिखा गया था। इस अवसर पर मैं भाई द्वारिका प्रसाद सेवक को कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कर रहा हूँ क्योकि उन्होने कई सहस्र रुपये इस ग्रन्थ के प्रकाशन पर लगा दिये थे।

स्वर्गीय माधवराव विनायक किबे साहब उन दिनो इन्दौर राज्य मे उपमत्री थे और राष्ट्रभाषा हिन्दी के बडे हिमायती थे। उन्होंने 'प्रवासी भारतवासी' को इतना पसन्द किया कि मराठी की एक केन्द्रीय सस्था से उस पर मुझे चार सौ रुपये का पुरस्कार दिलवा दिया।

दीनबन्धु एण्ड्रूज की फ़ीजी विषयक रिपोर्ट का मैंने हिन्दी मे अनुवाद भी किया था और उसे 'फीजी मे भारतीय' के नाम से प्रताप कार्यालय मे छापा था। उसके बाद साबरमती आश्रम मे मैंने 'फीजी की समस्या नामक पुस्तक लिखी। उसके भी पूर्व मैंने दीनबन्धु एण्ड्रूज और मिस्टर पियर्सन द्वारा लिखित 'फीजी की रिपोर्ट' का हिन्दी अनुवाद 'प्रताप' द्वारा छपवा दिया था। इसके अतिरिक्त 'विशाल भारत', 'चाँद', 'मर्यादा', तथा गुजराती 'नवजीवन' के प्रवासी अक भी प्रकाशित कराये थे। ये चारो अक राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित है।

मैं एक मिशनरी पत्रकार रहा। कोई न कोई मिशन हाथ मे लेता रहा। इस कारण स्वाध्याय के लिए मेरे पास वक्त ही नही रहा। इसमे आश्चर्य ही क्या हो सकता है, कि मैं स्थायी साहित्य की रचना न कर सका, प्रचारक मात्र ही बनकर रह गया। अपनी एक भूल को मैं यहाँ स्वीकार कर लूँ। स्वय सत्यनारायण कविरत्न के जीवन-चरित मे मेरे द्वारा उनकी पत्नी श्रीमती सावित्री देवी के प्रति अन्याय हो गया है। दरअसल मौलिक भूल सत्यनारायण जी की ही थी, उन्होने अस्वस्थता और शारीरिक निर्बलता की दशा मे विवाह किया। आगे चलकर वही गलती बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने की।

शहीदों का श्राद्ध

शहीदो और क्रान्तिकारियो के विषय मे मेरी रुचि बहुत वर्षों से रही है और सन् 1918 मे मैंने अपनी पुस्तक *'प्रवासी भारतवासी', जो चार वर्ष के परिश्रम के बाद लिखी गयी थी और जिसकी भूमिका* दीनबन्धु एण्ड्रूज ने लिखी थी, दक्षिण अफ्रीका के आन्दोलन मे शहीद हुई कुमारी वली अम्मा को समर्पित की गयी थी। वह तमिल भाषा-भाषी एक भारतीय लडकी थी जो महात्मा गाधी जी के सत्याग्रह सग्राम मे जेल गयी थी। पिछले पचास वर्षों मे मेरे समय का एक अच्छा भाग शहीदो का श्राद्ध और क्रान्तिकारियो की सेवा करते ही बीता। अमर शहीद गणेशशकर विद्यार्थी से मेरा साक्षात् परिचय सन् 1915 मे हुआ और जीवन-

पर्यन्त मैं उनका कृपापात्र भी रहा। गणेश जी की शहादत के बाद उनके विषय मे जितने लेख 'विशाल भारत' मे छपे उतने प्रताप मे भी नही छपे। गणेशशकर स्मृति-ग्रन्थ श्रद्धेय पण्डित झाबरमल शर्मा तथा मेरे द्वारा सम्पादित होकर कालपी के हिन्दी भवन द्वारा प्रकाशित हुआ था। शहीदो के श्राद्ध के बारे मे काफी सहायता मुझे बन्धुवर शम्भुनाथ जी सक्सेना से मिली। नर्मदा का शहीद अक, चन्द्रशेखर आज़ाद अक तथा गणेशशकर विद्यार्थी अक ये तीनो विशेषाक भाई सक्सेना जी ने छापे थे। स्वर्गीय श्री रामलाल पुरी ने तो अपने प्रकाशन गृह (आत्मा राम एण्ड सस) द्वारा शहीद ग्रन्थमाला ही निकाल दी थी। उसमे छ पुस्तकें छपी थी—(1) रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा, (2) यश की धरोहर, (3) गणेशशकर विद्यार्थी, (4) भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, (5) बन्दी जीवन और (6) गदर पार्टी का इतिहास।



शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद बाल्यावस्था मे, जब उन पर कोड़े बरसाये गये थे एक दुलभ चित्र

स्वर्गीय स्वामी केशवानन्द जी को जो अभिनन्दन ग्रन्थ भेट किया गया था उसका दो-तिहाई भाग शहीदो तथा क्रान्तिकारियो को ही अर्पित था। शहीद अशफाकुल्ला की उर्दू और हिन्दी जीवनियाँ मेरे द्वारा ही लिखी गयी थी। पण्डित परमानन्द (झाँसी) अभिनन्दन ग्रन्थ मेरे द्वारा ही सम्पादित हुआ था। 'विशाल भारत' का शहीद अक उससे बहुत पहले निकल चुका था। मेरी प्रार्थना पर बम्बई के सुप्रसिद्ध अग्रेजी साप्ताहिक 'इलस्ट्रेटेड वीकली' ने अपने तीन अक इस विषय को अर्पित कर दिये थे। डॉ० मलखान सिंह सिसोदिया, प्रिंसिपल आर्य इण्टर कॉलेज ने शहीद महावीर सिह अक तथा अडमान अक निकाले थे। इसी उद्देश्य से मैंने 'विद्यावाणी', 'मानवधर्म' तथा 'ज्ञान भारती' के शहीद अक निकलवाये थे। हमारी प्रार्थना पर अमर शहीद फुलैना प्रसाद श्रीवास्तव की धर्मपत्नी श्रीमती तारारानी श्रीवास्तव ने अपने पति की स्मृति मे 'उनकी याद' नामक पुस्तिका लिखी थी, जिसकी भूमिका लिखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। कुछ दिन पहले जयपुर के 'लोक शिक्षक' ने भी इस विषय पर एक विशेषाक निकाला था।

इसके अतिरिक्त इस विषय पर बीसियो लेख मैंने निरन्तर हिन्दी पत्रो मे लिखे हैं। इस श्राद्ध-

कार्य मे मेरे समय, शक्ति और साधनों का भी पूरा-पूरा उपयोग हुआ है। इस मिशन ने मेरे व्यक्तित्व के विकास मे बडी भारी सहायता दी है। 13-14 व्यक्तियो को पेंशन दिलाने का पुण्य भी मुझे प्राप्त हुआ था। शहीद आजाद की माँ, शहीद बिस्मिल की बहिन, शहीद अशफाकुल्ला के बडे भाई रियासतुल्लाखाँ और भतीजे इश्तियाकुल्लाखाँ, बाबा तीरथराम, श्रीमती कृष्णादेवी गोसेविका इत्यादि को पेंशन दिलाने का कार्य भी मेरे द्वारा सम्पन्न हुआ था। श्री लद्धाराम को पेंशन मैंने ही दिलाई थी और राजस्थान के एक सज्जन को भी, जिसका नाम मैं भूल चुका हूँ।

मेरा विश्वास है कि मुझे अपने जीवन मे जो थोडी-बहुत सफलता मिली है वह शहीदों की आत्माओ और उनके कुटुम्बियो के आशीर्वाद से प्राप्त हुई है। मुझे एक घटना खास तौर पर याद आ रही है—मैंने पार्लियामेंट मे जाने की कल्पना स्वप्न मे भी नही की थी। बिना मुझे सूचना दिये एक सज्जन ने दिल्ली मे पार्लियामेटरी बोर्ड के सामने मेरा नाम पेश कर दिया था। उस समय पण्डित जवाहरलाल जी ने पूछा था, "क्या वही बनारसीदास जी जो श्रीमती नायडू के साथ अफ्रीका गये थे? इज ही स्टिल इन दी लैंड ऑफ़ लिविंग" (क्या वह अब भी जीवितो के लोक मे हैं) ?" इस पर श्रद्धेय श्रीप्रकाश जी ने कहा था, "हाँ, वह जीवित है और टीकमगढ के शहीदो के लिए प्रशसनीय कार्य कर रहे है।" बात यह हुई थी कि शहीद आजाद की माँ के विषय मे मेरा पत्र-व्यवहार श्रीप्रकाश जी से चल रहा था। इस प्रकार बिना पैसा खर्च किये मैं पार्लियामेट का मेम्बर बन गया था और इस प्रकार मैं बारह वर्ष तक दिल्ली मे रहा।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मैंने भारत के स्वाधीनता सग्राम मे कोई भाग नही लिया और जिन दिनो वह सग्राम चल रहा था, मैं प्रवासी भारतीयो के कार्य मे व्यस्त था।

शहीदो और क्रान्तिकारियो की राजनीतिक विचारधाराओ के बारे मे मेरी श्रद्धा भेदभाव से सदा दूर रही है। सशस्त्र शहीद और अहिंसावादी शहीदो मे मैंने कोई भेदभाव नही किया। चार व्यक्तियो से, जो आगे चलकर शहीद हुए—महात्मा गाधी, गणेशशकर विद्यार्थी, देवशरण सिंह और नारायणदास खरे से—मेरा सम्पर्क बहुत पहले से ही था। इनमे खरे जी साम्यवादी थे।

एक बात मेरे लिए बडी खेदजनक है, वह यह कि जहाँ सशस्त्र शहीदो को काफी याद किया गया है, वहाँ अहिंसावादियो को प्राय भुला ही दिया गया है। स्वय मेरी पच्चीस रचनाओ मे केवल चार अहिंसा-वादियो के विषय मे है।

साहित्य-सेवियो की कीर्ति-रक्षा

साहित्य-सेवियो की चर्चा मैं अपने घर मे बहुत वर्षों से सुनता आ रहा हूँ। मेरे पूज्य पिता जी, पण्डित गणेशीलाल जी स्वर्गीय श्रीधर पाठक का नाम अक्सर लिया करते थे। उन्ही से मुझे ज्ञात हुआ था कि पाठक जी का जन्म यहाँ से नौ-दस मील दूर जोधरी ग्राम मे हुआ था और तत्पश्चात् वह फीरोजाबाद के मिडिल स्कूल मे पढ़ने आये थे। स्वर्गीय प० जयराम जी प्रधान अध्यापक की प्रेरणा से वह फीरोजाबाद के मिडिल स्कूल मे दाखिल हुए और यही से उन्होने सम्मान सहित मिडिल परीक्षा पास की। सन् 1944 मे मैंने जोधरी ग्राम की जो पैदल यात्रा की थी उसका मुझे अभी तक स्मरण है। वहाँ श्रद्धाजलि अर्पित करके मैं पैदल ही लौटा भी था। जाते समय जब मैने पिता जी से अनुमति माँगी तो उन्होने कहा, "जोधरी बहुत दूर है, थक जाओगे।" मैंने कहा, "कक्का, हम तुम्हारा नाम लेकर चले

जायेंगे।" इसके 24 वर्ष पूर्व सन् 1920 मे मैंने पदमकोट (लूकरगज), इलाहाबाद की तीर्थ यात्रा की थी और वहाँ सोलह दिन रहकर पाठक जी के जीवन की महत्त्वपूर्ण सामग्री की नक़ल की थी। पाठक जी उन दिनो जीवित थे और उनसे बहुत से तथ्य भी प्राप्त हुए थे। मैं पाठक जी का जीवन-चरित लिखना चाहता था, यद्यपि उनके विषय मे एक लेख मैंने 'विशाल भारत' मे लिखा था—जो 'मेरे सस्मरण' नामक ग्रन्थ मे उद्धृत भी हुआ है, और पाठक जी विषयक एक शोध ग्रन्थ की भूमिका भी मैंने लिखी थी, तथापि उस सम्पूर्ण सामग्री का उपयोग पिछले 61 वर्षों मे मैं नही कर सका हूँ। यह मेरे प्रमाद का निकृष्ट उदाहरण है। अब मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं उस कार्य को शीघ्र ही हाथ मे लेकर पूरा कर लूँगा। स्वर्गीय पाठक जी ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनो के आचार्य थे और यह बड़े खेद की बात है कि हम फीरोजाबाद वालो ने उनकी कीर्ति-रक्षा के लिए कुछ नही किया।

पाठक जी के अतिरिक्त दूसरा नाम जो मेरे सामने आया था वह था सत्यनारायण कविरत्न का। उनसे परिचय अकस्मात् ही हुआ। शायद 1911-12 की बात है कि मै बाज़ार गया हुआ था। वहाँ मिर्जई पहने और दुपल्ली टोपी लगाये एक युवक ने मधुर ब्रजभाषा मे पूछा, "क्यो भैया ! भारती भवन कहाँ है ?" मैंने कहा, "मैं उँवई जाइरयो हो, चलो।" वह मेरे साथ हो लिये। उन्हे अशिक्षित और गँवार समझकर मैंने उनसे मार्ग मे कोई बात भी नही की। भारती भवन मे उस समय ठाकुर प्रसाद शर्मा मौजूद थे। वह सत्यनारायण जी से भली-भाँति परिचित थे और उन्होने मुझसे आश्चर्य की मुद्रा मे कहा, "तुम इन्हे नांइ जानत, ये सत्यनारायण जी कविरत्न है।" इस प्रकार मेरा उनसे प्रथम परिचय हुआ। इस आकस्मिक घटना ने मेरे क्षुद्र जीवन मे एक महत्त्वपूर्ण मोड ला दिया। इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे मैंने ही सत्यनारायण जी को निमत्रित किया था। वह वहाँ पहुँचे भी थे। उन्होने अपने मधुर कठ से जो कविताएँ सुनायी उनसे श्रोता मत्रमुग्ध हो गये। तभी मैंने उनकी कविताओं का सग्रह करने का निश्चय कर लिया था। दुर्भाग्यवश इन्दौर सम्मेलन के कुछ दिनो बाद ही, 15 अप्रैल, 1918 को कविरत्न का स्वर्गवास हो गया। इस दुर्घटना मे मैं अपने जीवन मे पहली बार फूट-फूटकर रोया था। उस समय मै स्व० भाई द्वारिका प्रसाद सेवक के सरस्वती सदन (इन्दौर) मे बैठा हुआ था। वह भी फीरोजाबादी ही थे और इस घटना से बड़े दुखित हुए थे।

महापण्डित राहुल साकृत्यायन



कविरत्न का साहित्यिक श्राद्ध

मैंने कविरत्न जी की स्मृति-रक्षा के लिए पाँच काम सोचे थे (1) उनकी कविताओ का सग्रह प्रकाशित करना, (2) भारती भवन मे उनके तैल चित्र का उद्घाटन, (3) उनका जीवन-चरित लिखना,

(4) उनकी स्मृति मे सम्मेलन में सत्यनारायण कुटीर का निर्माण तथा (5) उनके सम्पूर्ण ग्रन्थों का एक जिल्द मे प्रकाशन ।

सौभाग्य से ये पाँचो श्राद्ध-कार्य विधिवत् सम्पन्न हो गये । कविरत्न जी की कविताओ का सग्रह 'हृदय तरग' नाम से प्रकाशित हो गया और उसके दो सस्करण भी निकल गये । द्वितीय सस्करण का सम्पादन प० अयोध्या प्रसाद जी पाठक ने किया जो कविरत्न जी के प्रशसक भी थे । भारती-भवन मे सत्यनारायण जी के तैलचित्र का अनावरण दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के करकमलो द्वारा 1920 मे हुआ था । उनका जीवन-चरित मैंने सन् 1926 मे लिख दिया था, जिसकी भूमिका प० पद्मसिह जी शर्मा ने लिखी थी और प्रकाशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने किया था । उसके भी दो सस्करण हो चुके हैं । सत्यनारायण कुटीर का निर्माण सम्मेलन मे हुआ और उसका उद्घाटन महात्मा गाधी द्वारा हुआ था । यह साहित्यिक अतिथियो के लिए प्रयाग मे ठहरने का स्थान बन चुका है । महापण्डित राहुल जी वहाँ बहुत दिनो तक रहे थे और प० रामनरेश त्रिपाठी का स्वर्गवास वही हुआ था । मैं भी दो बार वहाँ ठहर चुका हूँ । सत्यनारायण जी के समस्त ग्रन्थो का सग्रह नेशनल पब्लिशिग हाउस, देहली ने प्रकाशित किया है । लगभग 5000 पृष्ठो का यह ग्रन्थ नब्बे रुपये मे वही से प्राप्य है । मुख्य सम्पादक डॉ० विद्यानिवास मिश्र तथा सम्पादक डॉ० गोविन्द रजनीश (के० एम० मुशी विद्यापीठ, आगरा) है। यह सग्रह सन् 1981 मे प्रकाशित हुआ है । इस प्रकार सत्यनारायण जी विषयक श्राद्ध को पूरा करने मे 63 वर्ष लग गये ।

कविरत्न जी की कीर्ति-रक्षा के कार्यक्रम मे मुझे अनेक व्यक्तियो और सस्थाओ से सहायता मिली थी। स्व० महेन्द्र जी ने नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा द्वारा 'हृदय तरग' प्रकाशित कर दी थी और हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सत्यनारायण जी कविरत्न की जीवनी। स्व० द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी ने उस पुस्तक को बहुत पसन्द किया था और उनका आशीर्वाद मुझे मिला था। सत्यनारायण कुटीर के लिए राजकुमार रघुवीरसिह सीतामऊ की धर्मपत्नी तथा वीरसिह जूदेव ने सहायता दी थी। जैसा कि मैं लिख चुका हूँ समस्त ग्रन्थ-सग्रह भाई डॉ० विद्यानिवास जी के सहयोग से छप सका। दीनबन्धु एण्ड्रूज ने सम्मेलन मे कुटीर की स्थापना करवा दी थी ।

कविरत्न सत्यनारायण जी



राजा लक्ष्मणसिह जन्मशताब्दी

सन् 1926 मे मेरी प्रार्थना पर आगरा की नागरी प्रचारिणी सभा ने राजा लक्ष्मणसिह की जन्म-शताब्दी मनाई थी। उस अवसर पर आचार्य प० पद्मसिह शर्मा, दीनबन्धु एण्ड्रूज तथा भरतपुर नरेश सैयद अमीरअली मीर इत्यादि के सन्देश प्राप्त

हुए थे। सभा ने मेघदूत का नवीन सस्करण भी छपवाया था। उस उत्सव के कागजात राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित हैं।

स्व० हरिशकर शर्मा कीर्ति-रक्षा

यह बड़े खेद की बात है कि आर्य समाज के द्वारा स्व० हरिशकर शर्मा की कीर्ति-रक्षा के लिए कोई विशेष प्रयत्न नही किया गया था। हाँ, आर्य प्रतिनिधि सभा लखनऊ ने उनके पत्रो को टाइप कराने के लिए 114 रुपये मेरे पास भेज दिये थे। मैंने उनके 300 से ऊपर पत्र टाइप कराकर यथास्थान भेज दिये थे। डी० ए० बी० कालेज फीरोजाबाद ने अपनी पत्रिका का एक विशेषाक पण्डित हरिशकर शर्मा पर निकाल दिया था जिसकी समस्त तैयारी भाई मानव जी ने स्व० शर्मा जी के घर पर कई दिन रहकर भाई विद्याशकर शर्मा के सहयोग से की थी।

स्व० बशीधर जी विद्यालकार अच्छे कवि तथा उच्चकोटि के साहित्यकार थे। उनके भी 300 पत्रो की प्रतियाँ टाइप कराकर कई जगह भेज दी गयी थी।

मैंने नर्मदा से बालकृष्ण शर्मा नवीन पर एक विशेषाक निकलवाया था जिसमे उनके अनेक महत्त्व-पूर्ण पत्र उद्धृत किये गये थे। स्व० वासुदेवशरण जी अग्रवाल ने मुझे 70-75 महत्त्वपूर्ण पत्र भेजे थे। उनके उन पत्रो का सग्रह मेरे अनुरोध पर भाई वृन्दावन दास जी ने छपवा दिया था।

प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ

यह ग्रन्थ स्व० नाथूराम जी प्रेमी को भेट किया गया था। बन्धुवर श्री यशपाल जी जैन ने इसके लिए बडा प्रयत्न किया था। स्व० गणेश प्रसाद वर्णी को भी एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेट किया गया था, जिसके बुन्देलखण्ड विभाग का सम्पादन मैंने किया था। एक पुस्तक स्व० प्रेमी जी के सुपुत्र हेमचद्र मोदी पर भी छपवाई थी।

एक पुस्तिका स्व० देवीदयाल गुप्त पर भी छपवा दी गयी थी। महाराज वीरसिंह जूदेव कवियो तथा साहित्य-सेवियो के सरक्षक थे। उन पर भी मैंने एक स्मृति-ग्रन्थ निकाल दिया था।

पत्रों का संग्रह

हिन्दी मे लेखन कला पर मेरे द्वारा कुछ कार्य हुआ है। साहित्याचार्य प० पद्मसिंह शर्मा के पत्र पुस्तकाकार मे छपवा दिये गये है, जिनका सग्रह मैंने तथा सम्पादन प० हरिशकर शर्मा ने किया था। 'विशाल भारत' तथा 'सैनिक' के पद्मसिंह अक मैंने छपवाये थे। स्व० ब्रजमोहन वर्मा पर एक स्मृति-ग्रन्थ मैंने ज्ञान-मडल काशी से 'साहित्य सौरभ' नाम से निकलवा दिया था।

हिन्दी लेखको और कवियो के सैकडो ही पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार, जनपथ, नयी दिल्ली मे मेरे सग्रह मे सुरक्षित हैं, जिनमे 70-75 पत्र आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के, 150 हजारीप्रसाद जी के कई सौ प० पद्मसिंह जी के, 20-25 प्रेमचन्द जी के, 30-35 माननीय श्रीनिवास शास्त्री जी के और 50 से ऊपर महाकवि दिनकर जी के पत्र हैं। उर्दू साहित्य के पिता मौलवी अब्दुल हक साहब के भी 30-35 पत्र है। 290 पत्र दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज और 100 से ऊपर महात्मा गाधी के भी हैं। इसी प्रकार आगरा विश्वविद्यालय के चतुर्वेदी ब्रजकक्ष के भी सैकडो पत्र सुरक्षित हैं। हर्ष की बात है कि जामनगर काठियावाड

के डॉ० कमल पुंजाणी ने हिन्दी पत्रलेखन पर एक शोध-ग्रन्थ तैयार कर दिया है। इस प्रकार आज पत्र-लेखन विधा हिन्दी जगत मे अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही है।

विकासशील साहित्यकारो की सेवा

तथाकथित छुटभइयो की सेवा मेरे जीवन का एक मिशन ही रहा है और उनके व्यक्तित्व के विकास मे मेरी सदैव रुचि रही है। पर यह कार्य मैंने किसी परोपकार की भावना से नही किया है। मेरे पास समय और साधनो का बाहुल्य रहा है और उनका सदुपयोग करने की मेरी इच्छा ही उसके मूल मे है। स्व० वासुदेव शरणजी अग्रवाल तथा स्व० हजारीप्रसाद द्विवेदी और महाकवि दिनकर जैसे प्रतिष्ठित लेखको और स्व० कमला चौधरी तथा बहिन सत्यवती मलिक की भी यत्किंचित् सेवा मुझसे बन पडी है। अपने नगर के कवियो और लेखको तथा ब्रजभूमि के साहित्यकारो की कुछ सेवा करने मे मैंने अपना सौभाग्य समझा है। मैं स्व० भागीरथ जी भास्कर (इटावा) को श्रद्धाजलि अर्पित कर चुका हूँ। भाई रतनलाल जी बसल, भाई मानव जी तथा कुसुमाकर जी पर भी मैने लेख प्रकाशित कराये थे। यह सूची मैंने आत्म-विज्ञापन की भावना से नही दी है। सच पूछो तो इन्ही छुटभइयो की सेवा ने मुझे गौरवान्वित किया है। मेरे लिए परम हर्ष का विषय है कि भाई यशपाल जैन तथा बन्धुवर जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने साहित्य जगत मे उच्च स्थान बना लिया है।



पण्डित हरिशकर शर्मा

10

हिन्दी भवन

शान्ति-निकेतन मे हिन्दी भवन

वर्षा ऋतु के बाद सन्ध्या समय शान्ति-निकेतन मे रग-बिरगे बादलो की छटा देखते ही बनती है। शान्ति-निकेतन (बोलपुर) कलकत्ते से 99 मील दूर है। अपने 'विशाल भारत' के दिनो मे मैंने अनेक बार शान्ति-निकेतन की यात्रा की थी। वह मेरे लिए एक तीर्थ स्थान था और वहाँ की यात्रा का कोई भी मौका मैं नही छोडता था। एक बार बडी दिल्लगी हुई। बन्धुवर हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने एक दिन 'विशाल भारत' मे आकर कहा, "आप शान्ति-निकेतन कब पधारेंगे ?" मैने उत्तर दिया, "जिस दिन आप प्रात काल पौने चार बजे चार प्याले चाय और कुछ मिष्ठान्न का प्रबन्ध कर देगे उसी दिन मै आपकी सेवा मे पहुँच जाऊँगा।" मैने यह बात मजाक मे ही कही थी। द्विवेदी जी ने इस मजाक को घर तक पहुँचाने का निश्चय किया। एक बार जब मै शाम को शान्ति-निकेतन पहुँचा तो दूसरे दिन प्रात काल साढे तीन बजे ही वह पाँच प्याले चाय की केतली और मिष्ठान्न लिये मेरे स्थान पर हाजिर हो गये। मैंने आश्चर्य से उनसे पूछा, "यह आपने क्या किया ? घर वालो को इस समय इतना कष्ट क्यो दिया ?" द्विवेदी जी हँसते हुए बोले, "कुछ भी कष्ट नही हुआ और बच्चे तो खास तौर से खुश है क्योकि उन्हे इतनी जल्दी चाय मिल गयी और साथ मे कुछ मीठा भी।" मै यद्यपि अपने मजाक पर लज्जित हो गया, फिर भी मैने बडे स्वाद के साथ चाय पी और रसगुल्ले तथा सन्देश खाये। तत्पश्चात् हँसी और मजाक के फुव्वारे छूटते रहे। शान्ति-निकेतन मे बडे दादा (कवीन्द्र जी के ज्येष्ठ बन्धु) द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर का अट्टहास प्रसिद्ध था। वह दूर से सुनाई पडता था, उसी प्रकार हजारी-प्रसाद जी द्विवेदी का हास्य भी बहुत प्रसिद्ध था।

शाम के समय हम लोग टहलने के लिए निकले। दो-तीन मील का चक्कर लगाकर खूब हसते-हँसाते पाथ निवास (अतिथि गृह) पर पहुँचे। उस समय मैने मजाक मे कहा, "देखिए द्विवेदी जी ! इसी स्थान के निकट हमारा हिन्दी भवन बनेगा। आप मुझ पर विश्वास तो कीजिए।" द्विवेदी जी ने हँसकर कहा, "मै विश्वास करता हूँ, अवश्य बनेगा।" आश्चर्य की बात यह हुई कि उस बातचीत के तीन वर्ष के भीतर ही शान्ति-निकेतन मे हिन्दी भवन बन गया। उसकी नीव दीनबन्धु ऐण्ड्रूज ने रखी और उद्घाटन प० जवाहर-लाल नेहरू ने किया था। अपने उस सकल्प को पूरा करने मे मुझे पद्रह बार कलकत्ते से शान्ति-निकेतन की

यात्रा करनी पड़ी।

एक दिन कलकत्ते मे भाई सीताराम जी सेकसरिया ने मेरे निवास स्थान पर पधारकर कहा, "आप मारवाडी बालिका विद्यालय मे एक हिन्दी पुस्तकालय का उद्घाटन कर दीजिए।" मैं सहर्ष राजी हो गया और दूसरे दिन उस स्कूल मे पहुँचा। अपने भाषण मे मैंने छात्राओ को सम्बोधित करते हुए कहा, "यह कैसे दुर्भाग्य की बात है कि कलकत्ते से कुल जमा 99 मील की दूरी पर विश्व का एक महान् कवि रहता है—कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, और आपमे से शायद ही किसी ने उनके दर्शन किये हो।" मैं अपना भाषण देकर घर लौट आया। दूसरे ही दिन भाई सेकसरिया जी मेरे घर पर पधारे और कहा, "आप लडकियो को बहका आये है। अब वे जिद कर रही हैं कि हमे कवीन्द्र के दर्शन करा दें। उनके आग्रह को हम टाल नही सकते। क्या पथ-प्रदर्शक के रूप मे आप साथ चल सकेंगे?" मैंने उत्तर दिया, "समय तो मेरे पास कम ही है फिर भी आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।" जैसे कोई ज्योतिषी किसी श्रद्धालु व्यक्ति को बहकाते हुए कहता है तुम्हे ग्रह लगे हुए हैं, किसी ब्राह्मण को दान करो तो उपद्रव दूर हो सकता है। वह बिचारा घबडाकर उन्ही ज्योतिषी का महत्त्व का दान देता है, वैसी ही चालाकी मैंने भी की थी। बालिका विद्यालय की दस-बारह छात्राओ, एक अध्यापिका तथा सेकसरियाजी को लेकर मैं शान्ति-निकेतन पहुँच गया और गुरुदेव के पास आधा घण्टा समय देने की प्रार्थना भी भिजवा दी। गुरुदेव ने स्वीकृति दे दी। उन्होने शाम को चार बजे का वक्त दिया था। दोपहरी को मैं नियमानुसार विश्राम कर ही रहा था कि गुरुदेव का एक आदमी पहुँचा और उसने कहा, "गुरुदेव आपसे कुछ बात करना चाहते हैं, चलिए।" मैं तुरन्त साथ हो लिया। गुरुदेव ने मिलते ही कहा, "आज जिन मारवाडी मित्र को साथ लाए है, उनसे मैं बालिकाओ के छात्रावास मे दो-तीन कमरे बनवाने का अनुरोध करना चाहता हूँ। क्या यह उचित होगा?" मैंने तुरन्त ही उत्तर दिया, "गुरुदेव, आप आश्रम मे हिन्दी भवन की स्थापना के लिए अनुरोध करें। मैं उसी के लिए प्रयत्नशील हूँ।" उस सन्ध्या का दृश्य अब भी मेरी आँखो के सामने हे। उत्तरायण मे गुरुदेव विराजमान थे। हम सब उनके चरणो के निकट जमीन पर बैठे थे। उस समय गुरुदेव ने पहला प्रश्न यह किया, "क्या आप सब सरल बगला समझ सकेंगे? मैं शुद्ध हिन्दी मे बोल नही सकता और विदेशी भाषा मे बोलना नही चाहता।" भाई सेकसरिया ने कहा, "आप सरल बगला मे ही बोलिए, हम सब समझ जायेगे।" उस समय गुरुदेव ने जो भावपूर्ण प्रवचन दिया, उसकी याद मुझे कुछ-कुछ अब भी है। भाई सेकसरिया जी ने अपनी डायरी मे उसका साराश खूबी से लिखा था। वह डायरी तो आगरा सग्रह मे चली गयी इसलिए अपनी स्मरण शक्ति स कुछ बाते लिख रहा हूँ।

गुरुदेव ने कहा, "दो वर्गों और जातियो को मिलाने का कार्य जिस उत्तमता से बहने, मातायें तथा बेटियाँ कर सकती है, पुरुष कदापि नही कर सकते। आपसे मेरा विनम्र अनुरोध है कि आप, बगालियो तथा हिन्दी भाषा-भाषियो मे एकता तथा मेलजोल स्थापित करे। पारस्परिक एकता के लिए ही मैंने शान्ति-निकेतन की स्थापना की थी। जो कुछ बन सका मैने अपने पास से व्यय कर दिया पर अब हमारी सस्था ऋणी बन गयी है। मालवीय जी ने सहायता देने का वचन दिया था पर वह नही कर सके।" हम सब बडे ध्यानपूर्वक गुरुदेव की अपील को सुन रहे थे और उन जैसे विश्व कवि की अन्तर्वेदना का अनुभव भी कर रहे थे। उसी समय सेकसरिया जी ने मेरे कान मे धीमे से पूछा, "मैं अभी 500 रुपये देना चाहता हूँ, क्या गुरुदेव से कह दूँ!" मैंने कहा, "अवश्य," भाई सेकसरिया जी ने गुरुदेव को यह सूचना दे दी और उन्होने सहर्ष उसे स्वीकार भी कर

लिया। इस प्रकार शान्ति-निकेतन मे हिन्दी भवन की नीव पडी। फिर तो भाई भागीरथ जी कनोडिया के प्रयत्न से 35 हजार रुपये की लागत से वहाँ हिन्दी भवन बन भी गया। वह पैसा हलवासिया ट्रस्ट से मिला था। मेरा अनुमान है कि अब तक मारवाडी मित्रो द्वारा हिन्दी भवन को कई लाख की सहायता मिल चुकी होगी। अब तो हिन्दी भवन विश्वभारती विश्वविद्यालय के अधीन है और सरकारी नियत्रण मे है। इसलिए उसका क्षेत्र भी काफ़ी व्यापक बन गया है।

शान्ति-निकेतन मे जब प० जवाहरलाल नेहरू ने उद्घाटन किया था उस समय मे कलकत्ते मैं था। तब मैं शान्ति-निकेतन नही गया। कारण यह था कि प० जवाहरलाल जी नेहरू ने काँग्रेस से जो सहायता मुझे प्रवासी भारतीयो के कार्य के लिए मिलती थी, वह बन्द कर दी थी। इस प्रकार घोर निराशा से मैंने अपने 22 वर्ष पुराने मिशन को तिलाञ्जलि दे दी थी। उस दिन जो व्यक्ति कलकत्ते से शान्ति-निकेतन जा रहे थे उन्हें स्टेशन तक पहुँचाने मैं गया था। श्री भागीरथ कनोडिया जी भी उसी ट्रेन से जा रहे थे। मुझे इस बात का बराबर खेद रहा कि मैं उस अवसर पर उपस्थित न हो सका। भाई भागीरथ कनोडिया जी ने कहा कि "बिना दूल्हे के बारात कैसी? यह तो आपका स्वप्न था।" जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुझे तीन वर्ष देने पड़े और पद्रह बार शान्ति-निकेतन की यात्रा करनी पडी उसे साकार रूप मे सफल देखने के लिए मै शान्ति-निकेतन नही जा सका। साधनहीन कार्यकर्ताओ के जीवन मे ऐसे क्षण प्राय आते रहते है जबकि वे निराशा से अभिभूत हो जाते है। अब अपनी उस भूल का अनुभव करता हूँ। पण्डित जी की चिट्ठी से निराश होकर मुझे अपना मिशनरी कार्य नही छोडना चाहिए था। सम्भवत आर्थिक कठिनाइयो के कारण ही काँग्रेस ने उक्त निर्णय लिया होगा।

दिल्ली मे हिन्दी भवन

शायद 1945-46 की बात है। मैं दिल्ली गया हुआ था और बहिन सत्यवती मलिक के निवास स्थान पर ठहरा था। सन् 1935 से ही, जबकि मैं कलकत्ते मे 'विशाल भारत' का सम्पादन कर रहा था, मलिक परिवार की मुझ पर कृपा थी। बहिन सत्यवती जी के साहित्यिक विकास मे मेरे द्वारा कुछ सेवा भी बन पडी थी। एक दिन दिल्ली मे भाई विष्णुदत्त मिश्र तरगी पधारे और बोले कि हम लाग आपका सार्वजनिक स्वागत करना चाहते हैं। उनके प्रेमपूर्ण आग्रह को मैं टाल नही सका। मिंटो रोड पर एक क्लब मे मेरा स्वागत हुआ। उत्तर देते हुए मैंने यह सुझाव उपस्थित जनता के सम्मुख रखा कि दिल्ली मे हिन्दी भवन की स्थापना होनी चाहिए। उस समय मैंने यह स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी कि छह वर्ष बाद सन् 1952 मे मुझे ससद सदस्य बनकर दिल्ली आना होगा और सन् 1953 मे मेरे द्वारा ही हिन्दी भवन की स्थापना होगी।

उस दिन की मुझे अब भी याद है जबकि राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू की कृपा से थियेटर कम्यूनिकेशन बिल्डिग मे दो कमरे 160 रु० महीना किराये पर मिल गये। अपने पास एक पैसा भी नही था और पहले महीने का किराया जमा करना था। उस समय मुझे विशाल भारत के पुराने लेखक और राज्यसभा के सदस्य राजेश्वर प्रसाद सिह की याद आई और मैंने तुरन्त उन्हे फोन किया, "एक बहुत जरूरी काम है। 100 रुपये लेकर पधारिए।" वह शीघ्र ही पधारे। तब मैंने उन्हे बतलाया कि हिन्दी भवन की स्थापना करनी है। वह बहुत खुश हुए और उन्होने भरपूर सहायता करने का वचन भी दिया। आगे चलकर 100 रुपये

उन्होंने अपने अग्रज श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिंह से भी दिलवाए। मेरे भूतपूर्व सहायक यशपाल जैन और जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी पहले से ही दिल्ली मे विद्यमान थे। उनकी भी सहायता निरन्तर मिली। भाई किशनलाल चतुर्वेदी ने भी मदद की। पूरे ग्यारह वर्ष तक हिन्दी भवन की ज़िम्मेदारी मुझ पर और मंत्री सत्यवती मलिक पर रही। उन ग्यारह वर्षों के मीठे और कडवे अनुभवो की अब भी याद आ जाती है। मौलाना आज़ाद की कृपा से हिन्दी भवन का किराया आधा हो गया, पर एकाध वर्ष बाद वह रकम तिगुनी कर दी गयी। खर्च चलाने के लिए भीख माँगते मैं तग आ गया। उन दिनो जिन लोगो ने आर्थिक सहायता की थी, उनके शुभ-नाम मैं कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कर लेता हूँ। सबसे बडी रकम 1000 रुपये (स्व०) श्री घनश्यामदास जी बिडला ने दिये थे और 600 रुपये धार्मिक ग्रन्थ खरीदने के लिए उनके अग्रज श्री जुगलकिशोर बिडला ने दिये थे। अमेरिका के विलियम लाइड गैरीसन के वशजो ने 1200 रुपये गैरीसन लाइब्रेरी के लिए दिये थे। 500 रुपये 'स्वदेश' के सम्पादक श्री दशरथ प्रसाद द्विवेदी ने दिये थे। कलकत्ते से भाई सीताराम जी सेकसरिया, श्री भागीरथ कनौडिया तथा श्री मूलचन्द्र अग्रवाल से भी आर्थिक सहायता मिली थी। सस्ता साहित्य मडल, राजपाल एण्ड सन्स तथा आत्मा राम एण्ड सन्स के श्री रामलाल पुरी ने भी मदद दी थी। एक मारवाडी सज्जन श्री रामेश्वर टाटिया, जो आगे चलकर कानपुर कारपोरेशन के मेयर व ससद सदस्य हुए, ने भी 200 रुपये दिये थे। 'सरिता' सम्पादक श्री विश्वनाथ से भी 100 रुपये मिले थे। चूँकि बहन सत्यवती जी का निवास स्थान हिन्दी भवन के निकट ही था, इसलिए साहित्यिको के आतिथ्य का सम्पूर्ण भार उन्ही पर पडा था। बाहर से आने वाले साहित्यिक उन्ही के यहाँ ठहरते थे। बहिन जी ने अपनी 'विशाल भारत' की पुरानी फाइले भी हिन्दी भवन को प्रदान कर दी थी।

खेदपूर्वक मुझे यह बात लिखनी पडती है कि भारत सरकार द्वारा भवन की बिलकुल उपेक्षा ही हुई। श्रद्धेय प० जवाहरलाल जी ने एक भाषण मे कहा था, "दिल्ली हैज नो सोल" पर उस आत्मा के विकास के लिए भारत सरकार ने क्या किया? एक बार मैंने पण्डित जी से हिन्दी भवन के लिए भूमि-खण्ड देने की प्रार्थना की थी, तब पण्डित जी ने कहा था, "ज़मीन क्या मेरी जेब मे रखी है कि दे दूँ। सभी लोग केन्द्रीय स्थल पर ज़मीन चाहते है।" उस समय हिन्दी के एक प्रतिष्ठित लेखक ने पण्डित जी की हाँ-मे-हाँ मिलाते हुए कहा था, "पण्डित जी ठीक तो कहते है।" मैं किसी की शिकायत नही करना चाहता, पर फिर भी यह लिख देना चाहता हूँ कि दिल्ली मे स्थित तत्कालीन कवियो और लेखको से मुझे एक पैसे की भी सहायता नही मिली। हिन्दी भवन का वार्षिक चन्दा दस रुपये था और हिन्दी लेखक साढे तेरह आने महीना उसके लिए खर्च करने को तैयार न थे। एक प्रतिष्ठित कवि ने कहा, "मैंने तो नियम बना लिया है कि किसी सस्था का सदस्य नही बनूँगा।" एक अन्य कवि ने कहा, "मैं तो प्रत्येक पैसे को दाँत से पकडता हूँ।" एक तीसरे सज्जन ने कहा, "मेरे पास पैसा कहाँ रखा है?" परिणाम यह हुआ कि ग्यारह वर्ष मे, 1953 से 1961 तक, मुझे हिन्दी भवन के लिए अपने पास से लगभग 3500 रुपये खर्च करने पडे। यह बात मैंने आत्म विज्ञापन के लिए नही लिखी, बल्कि उन समानशील युवको को सावधान रकने के लिए लिखी है जो सस्थाओ द्वारा काम करने के इच्छुक हैं।

सन् 1964 मे ससद सदस्यता से मुक्त होकर मैं दिल्ली छोडकर घर चला आया और उसके पूर्व मैंने हिन्दी भवन भाई बाँके बिहारी भटनागर को सौप दिया था। उनको भी बहुत-सी कठिनाइयो का सामना करना पडा जिसका वृत्तान्त वह स्वय ही बतला सकते है। जिस स्थान पर हिन्दी भवन की पुस्तके रखी थी जब उसे खाली करना पडा तो बन्धुवर जगदीश प्रसाद जी चतुर्वेदी के तथा श्री बाँके बिहारी भटनागर के

सहयोग से तत्कालीन शिक्षा सचिव श्री त्रैलोक्य नाथ चतुर्वेदी ने इस पुस्तकालय को भारत सरकार के भारतीय भाषा पुस्तकालय (तुलसी सदन) मे स्थान देने का निर्णय किया। शिक्षा मत्रालय मे अतिरिक्त सचिव तथा श्रीमती सत्यवती मलिक की पुत्री डा० कपिला वात्स्यायन ने हिन्दी भवन खण्ड के नाम से उन ग्रन्थो को अलग से रखवा दिया है तथा उनकी एक प्रदर्शनी भी करा दी और ये पुस्तकें पुन हिन्दी पाठको को पढ़ने के लिए उपलब्ध हो गयी।

मेरे द्वारा स्थापित शान्ति-निकेतन का हिन्दी भवन विश्व भारती विश्वविद्यालय का अग बन गया और कुण्डेश्वर (टीकमगढ) का गाधी भवन भी मध्य प्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग को समर्पित हो गया। दिल्ली का हिन्दी भवन सरकार के सरक्षण मे जा रहा है। इस देश मे स्वतन्त्र रूप से किसी साहित्यिक तथा सास्कृतिक सस्था का सचालन कठिन मे कठिनतर होता जा रहा है।

11

कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) में गांधी भवन

ओरछा नरेश स्वर्गीय महाराज वीरसिंह जू देव के विशेष आग्रह पर मैं 'विशाल भारत' छोड़कर 13 अक्तूबर, 1937 को टीकमगढ पहुँचा और 18 अक्तूबर को कुण्डेश्वर पर स्थित विशाल भवन मे मुझे स्थान मिला था। कुण्डेश्वर से ही मैने 'मधुकर' नामक पत्र निकाला था जिसके सम्पादन कार्य मे महाराज साहब ने कभी कोई दखल नही दिया। चार वर्ष डेली कॉलेज इन्दौर मे वह मेरे शिष्य रह चुके थे और उनके हृदय म मेरे प्रति श्रद्धा और सम्मान था। चूँकि मेरा सम्बन्ध किसी राजनैतिक दल विशेष से नही था, अत कुण्डेश्वर मे मेरी कोठी पर सभी दलो के व्यक्ति और राज्य के मत्री तथा स्वय महाराज साहब प्राय पधारा करते थे। आगे चलकर इसके प्रति गलतफहमी भी हुई थी और स्व० बालकृष्ण राव ने, जो उस समय विंध्य प्रदेश सरकार के चीफ सेक्रेटरी थे, मुख्यमत्री कैप्टेन अवधेश प्रतापसिंह को लिख दिया, "हिज प्लेस इज ए रेडजेवज फॉर सोशलिस्ट्स एण्ड कम्यूनिस्ट्स"। (यानी चतुर्वेदी जी का निवास स्थान समाजवादियो और कम्यूनिस्टो का प्रेम-मिलन-स्थल है)। श्री बालकृष्ण राव की यह उक्ति शाब्दिक अर्थों मे तो ठीक थी पर उसके पीछे जो भावना थी वह सर्वथा काल्पनिक थी। उन दिनो मैं सरकारी सस्था, गाधी भवन का सचालक था और किसी सरकारी पदाधिकारी का सरकार विरोधी पार्टियो से गठबन्धन नियमो के सर्वथा विपरीत था। गाधी भवन की स्थापना का वृत्तान्त इस प्रकार है

जब 30 जनवरी, सन् 1948 को महात्मा जी का स्वर्गवास हुआ उस समय मेरे मन मे यह विचार आया कि उनकी स्मृति-रक्षा के लिए टीकमगढ मे कोई स्मारक होना चाहिए। विंध्य प्रदेश, बुन्देलखण्ड के प्रथम मुख्यमत्री श्री कामताप्रसाद सक्सेना नागोद मे मुख्यमत्री चुने जाने के बाद श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी के साथ टीकमगढ आये। जब उन्होने मुझसे आग्रह किया कि मैं टीकमगढ़ ही रहूँ तो मैने प्रस्ताव किया कि यहाँ गाधी भवन बनना चाहिए। उन्होने मेरे प्रस्ताव का सहर्ष अनुमोदन कर दिया और दिल्ली मे इस बात की घोषणा भी कर दी कि टीकमगढ मे गाधी भवन की स्थापना होगी। जमडार नदी के किनारे चालीस फुट ऊँची चट्टान पर स्थित उस आलीशान राजमहल को गाधी भवन के रूप मे परिवर्तित करने का प्रस्ताव मेरा ही था। महाराजा साहब से बिना अनुमति लिए वह प्रस्ताव मैंने उपस्थित कर दिया। वह ओरछा राज्य की सर्वोत्तम कोठियो मे से थी। जब महाराजा साहब से किसी ने मेरी धृष्टता की शिकायत की और उस महल को हस्तातरित होने से रोकने को कहा तो उन्होने बडी नम्रतापूर्वक केवल इतना ही कहा,

"चौबे जी मेरे गुरु हैं। उनकी घोषणा का खण्डन मैं नही कर सकता। जो उन्होने किया, वह मुझे स्वीकार है।" भारत सरकार से महाराज के सम्बन्ध बहुत अच्छे थे। यदि वह चाहते तो उस विशाल महल को अपने वशजो के लिए सुरक्षित कर सकते थे, पर वह बडे उदार और दूरदर्शी थे।

कुण्डेश्वर मे गाधी भवन की स्थापना हो गयी और उसका लम्बा-चौडा बजट भी बनाया गया। चार सौ रुपया महीने पर मैं उसका सचालक नियुक्त किया गया। मैंने अपने कई वैतनिक सहायक भी रख लिए और कार्य प्रारम्भ कर दिया। यह बात यहाँ मुझे ईमानदारी के साथ स्वीकारनी पडेगी कि रचनात्मक कार्य करने का अनुभव उस समय मुझे बिल्कुल नही था। मुझमे उत्साह तो अधिक था पर विवेक कम। स्वाधीनता सग्राम के कुछ सेनानियो को उस समय कुछ आर्थिक सहायता तो मिल गयी पर रचनात्मक दृष्टि से मेरा प्रयोग असफल ही माना जायेगा। उस समय विध्य प्रदेश सरकार के एक आई० सी० एस० सज्जन निरीक्षण के लिए पधारे थे और उन्होने सरकार को गाधी भवन के खिलाफ रिपोर्ट भी दी थी। हमारे सौभाग्य से फीरोजाबाद के श्री ब्रजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी उच्च पद पर विराजमान थे और उन्होने उन आई० सी० एस० महोदय को यह कह दिया कि "पत्रकार जगत मे चतुर्वेदी जी की लाठी मजबूत है इसलिए आप गाधी भवन के बन्द करने का प्रस्ताव न करे।" इस प्रकार गाधी भवन बच तो गया पर बहुत दिनो तक उसका भाग्य अधर मे लटकता रहा। श्री बालकृष्ण राव के पत्र से मेरे और गाधी भवन के विरुद्ध सन्देह का जो एक वातावरण तैयार हो गया था उसे दूर करने के लिए मुझे रीवा भी जाना पडा था। उस समय चुरहट के राजा साहब श्री शिव बहादुर सिंह (जो मध्य प्रदेश के वर्तमान मुख्यमत्री अर्जुनसिंह के पिता है) विध्य प्रदेश सरकार के एक मत्री थे। उन्होने मेरे मामले की सुनवायी की थी। मैंने उस समय उनसे यही निवेदन किया था कि मेरा सम्बन्ध किसी दल विशेष से नही है। यहाँ सभी पार्टियो के आदमी आते है—राज्य के मत्री तथा महाराजा साहब भी। यहाँ किसी प्रकार का राजनैतिक षड्यन्त्र नही होता बल्कि पारस्परिक गलतफहमियो को दूर करने मे कुछ सहायता ही मिलती है। टीकमगढ के प्रसिद्ध कार्यकर्ता श्री प्रेमनारायण खरे ने राजा साहब के सामने मेरा जोरदार समर्थन किया। राजा साहब ने बडी बुद्धिमानी मे मामले को रफा-दफा कर दिया था। यदि वह कठमुल्लेपन से काम लेते तो मेरी सरकारी नौकरी छूट जाती। आगे चलकर जब हम लोगो के प्रयत्न से कुण्डेश्वर मे बेसिक ट्रेनिग कालेज की स्थापना हुई तब मैंने गाधी भवन के सचालक पद से स्वय ही त्यागपत्र दे दिया। निस्सदेह मेरे जैसे भार-ग्रस्त गृहस्थ के लिए चार सौ रुपया मासिक की नौकरी छोडना एक खतरनाक कदम था। डेढ-दो साल तक मुझे बडे आर्थिक सकट का सामना करना पडा। उस समय भाई सोहनलाल जी पचीसिया ने पचास रुपया महीने मुझे साल-भर तक भेजे थे और महाराजा साहब ओरछा की सहायता भी मिलती ही रही थी। यदि मैंने सरकारी नौकरी न छोडी होती तो मार्च 1952 मे मेरा नाम राज्यसभा के सदस्य के रूप मे आ ही नही सकता था। राज्यसभा का सदस्य बनने की कल्पना मैंने स्वप्न मे भी नही की थी, उसके लिए प्रार्थना पत्र भेजना तो दूर रहा।

'अन्त भला सो सब भला—आल इज वेल दैट एण्ड्स वेल' की उक्ति के अनुसार सरकारी पद से इस्तीफा मेरे लिए कल्याणकारी सिद्ध हुआ।

गाधी भवन तथा बेसिक ट्रेनिग कॉलिज को सुरक्षित दशा मे छोडकर मैं दिल्ली चला आया।

12

पत्रकार आन्दोलन से सम्बन्ध

पत्रकारिता मेरा प्रिय विषय रहा है और उस पर मैंने बहुत-से लेख भी लिखे है। पत्रकारो का मिशन क्या होना चाहिए और उनके सगठन का रूप क्या हो इस विषय पर मैंने बहुत-से लेख लिखे हैं। पत्रकार आन्दोलन से मेरा सम्बन्ध उस समय से गिना जा सकता है, जब वृन्दावन मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ और उस अवसर पर ही एक पत्रकार सम्मेलन भी हुआ जिसकी अध्यक्षता श्री बाबूराव विष्णु पराडकर जी ने की थी। तब तक इसका कोई सगठन नही था, साहित्य सम्मेलन के अवसर पर एक आयोजन मे कुछ विचार प्रकट किये गये और कुछ प्रस्ताव भी पारित किये गये। पत्रकार आन्दोलन से विधिवत् सम्बन्ध तब हुआ, जब सन् 1942 मे कानपुर मे मै सयुक्त प्रान्त के हिन्दी पत्रकार सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया। एक वर्ष पूर्व यानी 1941 मे दिल्ली मे श्री मूलचन्द अग्रवाल की अध्यक्षता मे अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सघ की स्थापना हो चुकी थी, परन्तु उस सगठन मे मालिको का प्राधान्य था और पत्रकारो के किसी प्रश्न को नही उठाया गया था। कानपुर के पत्रकार बन्धुओ ने जो हिन्दी पत्रकार सम्मेलन बनाया, वह श्रमजीवी पत्रकारो तक ही सीमित रहा। उसका नाम था 'उत्तर प्रदेश हिन्दी पत्रकार सम्मेलन' जिसके मत्री श्री जयदेव गुप्त चुने गये थे। इस सम्मेलन मे यह भी निर्णय हुआ कि पत्रकारो की आर्थिक स्थिति की जाँच के लिए जाँच समिति नियुक्त की जाए। इस जाँच कमेटी मे श्री बाबूराव विष्णु पराडकर, श्री जयदेव गुप्त और श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी रखे गये। कुछ समय बाद श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी टीकमगढ के 'मधुकर' कार्यालय मे आ गये। जब 1943 मे कलकत्ते मे अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सघ का तीसरा अधिवेशन हो रहा था, तो मैंने और 'मधुकर' कार्यालय मे कार्य करने वाले साथियो ने कलकत्ते के समाचार-पत्रो तथा अन्य पत्रो मे यह विचार प्रकट किया कि श्रमजीवी पत्रकारो की स्थिति की जाँच होनी चाहिए। उस अधिवेशन मे यह प्रस्ताव पारित किया गया कि पत्रकारो की स्थिति की जाँच हो और श्री राजेन्द्र शकर भट्ट के सयोजकत्व मे एक कमेटी बना दी गयी, जिसमे कुछ सचालक और कुछ पत्रकार सदस्य थे। इसी बीच अखिल भारतीय समाचारपत्र सम्पादक सम्मेलन ने 'ट्रिब्यून' के सम्पादक श्री ए० सुब्रह्मण्यम के सयोजकत्व मे पत्रकारो का न्यूनतम वेतन निश्चित करने के लिए एक समिति बनायी जिसका मुझे भी एक सदस्य मनोनीत किया गया। अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सघ ने जो जाँच समिति नियुक्त की थी उसमे श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी को सदस्य मनोनीत किया गया। उनको जाँच का काम पूरा करने के लिए 'मधुकर' कार्यालय से छुट्टी दी गयी। उन्होने लाहौर, दिल्ली

और बम्बई मे हिन्दी पत्रकारो तथा अन्य भाषायी पत्रकारो की स्थिति के बारे मे तुलनात्मक अध्ययन किया और झाँसी, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, गोरखपुर और पटना के समाचार-केन्द्रो मे जाकर वहाँ के पत्रकारो से प्रश्नावलियो के उत्तर लिये और उनकी स्थिति का पता लगाया। उस रिपोर्ट के परिणाम-स्वरूप सन् 1944 के दिसम्बर मास मे श्री अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी की अध्यक्षता मे कानपुर मे जो अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सघ का अधिवेशन हुआ उसमे पत्रकारो की न्यून-तम माँगें स्वीकार की गयी। उसी अवसर पर कानपुर मे ही उ० प्र० हिन्दी पत्रकार सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन ठाकुर श्रीनाथ सिह की अध्यक्षता मे हुआ। इसमे श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी को सम्मेलन का प्रधानमत्री बना दिया गया, और 'मधुकर' कार्यालय, जो अभी तक सम्मेलन के अध्यक्ष का कार्यालय था, अब प्रधानमत्री का कार्यालय हो गया। कानपुर के दोनो सम्मेलनो मे एक सौ रुपया न्यूनतम वेतन, छ घटे काम, भविष्य निधि, एक महीने की छुट्टी आदि की माँग की गयी।

इसके बाद सन 1945 मे मथुरा मे होने वाले अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सघ का अध्यक्ष मुझे चुना गया और मथुरा मे अधिवेशन भी हुआ, परन्तु इस अधिवेशन मे पत्र-सचालको ने हाथ खीच लिया। सन् 1942 से लेकर 1946 तक पत्रकारो के आन्दोलन के सिलसिले मे दो प्रकार के कार्य मुख्य रूप से करने पडे। हमारे सामने ऐसे मामले आये जिनमे पत्रकारो को पदो से निकाल दिया था और इस सिल-सिले मे झाँसी क श्री कृष्णचन्द्र शर्मा और इलाहाबाद के श्री नरोत्तम प्रसाद नागर को नौकरी से पृथक किये जाने के बारे मे उनके सचालको से पत्र-व्यवहार करना पडा। कुछ रचनात्मक कार्य भी सभव हो सका। स्वर्गीय भाई साहू शान्ति प्रसाद जी की धर्मपत्नी स्वर्गीय श्रीमती रमा जैन न पत्रकारो के प्रशिक्षण के लिए मुझे एक हजार रुपये दिये जो मैने काशी विद्यापीठ को एक पत्रकार शिक्षण पाठ्यक्रम चलाने के लिए दे दिये। मुझे प्रसन्नता है कि उसमे से कुछ लोग बहुत प्रमुख हुए जैसे डॉ० राममुभग सिह जिन्होने बाद मे अमेरिका मे जाकर पत्रकारिता मे डॉक्टरेट प्राप्त की और भारतीय राजनीति मे ससद-सदस्य, मत्री और विरोध पक्ष के नेता के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। इसी प्रकार जब ग्वालियर सरकार ने जगन्नाथ प्रसाद मिलिद क पत्र 'जीवन' पर प्रतिबन्ध लगा दिया या श्री सूर्यनारायण व्यास को दण्डित किया तो पत्रकार सघ की ओर से उसका विरोध किया गया। जब उत्तर प्रदेश सरकार ने 'लोक युद्ध', जो बाद मे 'जनयुग' हो गया, का प्रदेश मे प्रवेश रोक दिया तो मैंने उसके विरुद्ध वक्तव्य दिया और एक प्रार्थना के साथ श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी को कॉंग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद के पास बम्बई मे, जहाँ राष्ट्रीय महासमिति की 1942 के बाद पहली बैठक हो रही थी, भेजा जिससे कि कॉंग्रेस अध्यक्ष इस मामले मे हस्तक्षेप करे। कानपुर के पत्रकार अधिवेशन के अवसर पर मैने श्री हरिशकर विद्यार्थी को पत्र लिखे थे जिनमे पत्रकारिता के भविष्य के बारे म अपने विचार प्रकट किय थे। 22 जुलाई, 1945 को मैने भाई बालकृष्ण जी नवीन को एक पत्र लिखा था जिसमे मैने कहा था कि पत्रकार कला का भविष्य अब पूँजीपतियो के हाथ मे रहेगा, ऐसा मालूम होता है। लडाई के बाद अधिकाश पत्र वही लोग निकालेगे और पत्रकारो का आर्थिक लाभ भले ही बढ जाए पर उनकी आवाज न रहेगी।

भारत मे श्रमजीवी पत्रकारो के सगठन की नीव कैसे पडी, इसका इतिहास अभी विधिवत् नही लिखा गया है, पर एक बात निश्चित है कि उसे विलायत के पत्रकारो के सगठन से प्रेरणा अवश्य मिली थी। एक बार मै दिल्ली मे किसी पुस्तक विक्रेता की दुकान पर घूम रहा था कि मुझे 'जेटलमैन दी प्रेस'

नामक पुस्तक दीख पडी। वह पुस्तक विलायती पत्रकारो के सगठन के इतिहास की थी। उस पुस्तक ने मुझे बहुत प्रोत्साहित किया और जगदीश जी के लिए तो वह स्वाध्याय ग्रन्थ ही बन गयी। हम दोनो ने अलग-अलग उस पर लेख भी लिखे थे। उस समय पत्रकार आन्दोलन के बारे मे मेरे क्या विचार थे, उसको मैने 'मधुकर' मे लिखा था "एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने यह है कि क्या अब पत्रकार, सचालक और श्रमजीवी पत्रकार एक ही सस्था मे रह सकते हैं ? अपने पिछले अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि समय की गति को देखते हुए इन भिन्न दिशाओ मे भागने वाले अश्वो को एक ही रथ मे नही जोता जा सकता। समझौते की नीति थोडी दूर तक कारगर हो सकती है और जब आर्थिक हितो मे सघर्ष चलने लगता है तब मालिको और श्रमजीवियो का एक ही सस्था के सदस्य रहना असम्भव समझिये।" मैने आगे लिखा था, "पत्रकार सचालको की मनोवृत्ति, पूँजीपतियो का इस क्षेत्र मे प्रवेश इत्यादि अनेक बातो ने हमारे प्रश्नो को काफी पेचीदा बना दिया है और सब परिस्थितियो तथा सब प्रकार के आदमियो के लिए कोई एक नीति निर्धारित नही की जा सकती।" हमने वहाँ यह लिखा था कि अपने को श्रमजीवी कहने वाले पत्रकारो को अन्य मजदूर सघो के साथ सहयोग करना चाहिए ताकि वक्त पडने पर वह उसकी सहायता कर सके। श्रमजीवी पत्रकारो तथा पत्र सचालको के सगठन अलग-अलग होने चाहिए। साथ ही हमने यह भी कहा था कि हमे ऐसे आदर्श उपस्थित करने चाहिए जो प्रान्तीय भाषाओ के लिए पथप्रदर्शक हो। कुछ पत्र तो हमारे यहाँ ऐसे होने चाहिए जो आदर्शवादिता तथा प्रभाव मे विलायत के ऊँचे से ऊँचे पत्रो का मुकाबला कर सके। हमारे सामने मुख्य सवाल यह नही है कि हमारे पत्रो की ग्राहक सख्या किस तरह लाखो पर पहुँचे बल्कि यह है कि बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी और गणेशशकर विद्यार्थी के आदर्शों की सेवा हम किस प्रकार कर सकते है। उस समय हमने लिखा था कि जब हिन्दी पत्रकारो की परीक्षा का समय आयेगा, उस समय मुख्य प्रश्न ये होगे—

1 हिन्दी पत्रकारो ने कौन-कौन से उच्च आदर्श पत्रकार जगत के लिए उपस्थित किये है ?

2 इस भूमि के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो या श्रेणियो मे पारस्परिक सौहार्द स्थापित करने के लिए उन्होने क्या-क्या प्रयत्न किये हैं ? अन्तर्प्रान्तीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय एकता के लिए क्या-क्या कोशिशे की है ?

3 और सबसे अधिक आवश्यक यह है कि हिन्दी पत्रकारो ने नवीन सामाजिक व्यवस्था लाने के लिए, जिससे इस महादेश के गरीब किसान और मज़दूर भरा-पूरा जीवन व्यतीत कर सके, क्या-क्या उद्योग किये है ?

जब अक्टूबर, 1950 मे दिल्ली मे प्रथम श्रमजीवी पत्रकार सम्मेलन हुआ तो उसमे मै सम्मिलित हुआ और भाग लिया साथ ही विंध्य प्रदेश पत्रकार सघ की स्थापना की जिसका मैं अध्यक्ष हुआ और उसके प्रतिनिधि के नाते 1952 मे कलकत्ते मे होने वाले भारतीय श्रमजीवी पत्रकार सघ के अधिवेशन मे मैंने भाग लिया। मैं पत्रकार सघ की कार्यकारिणी का भी सदस्य रहा और 1955 मे मद्रास मे जो अधिवेशन हुआ उसका अध्यक्ष चुना गया। 1955 मे ही प्रेस आयोग की सिफारिशो को कार्यान्वित किया गया और श्रमजीवी पत्रकार विधेयक पारित हुआ जिसमे वेतन मण्डल बनाने की व्यवस्था थी।

मेरे इस दृष्टिकोण को देखते हुए यह एक सयोग ही था कि ससद मे जब श्रमजीवी पत्रकारो की काम की शर्तों मे सुधार करने वाला बिल पेश हुआ, उस समय सगठन का अध्यक्ष मैं ही था, परन्तु उस बिल

के पक्ष मे सदस्यो को लाने का सारा श्रेय हमारे महासचिव श्री सी० राघवन और भूतपूर्व महासचिव जगदीश जी को ही था। इसमे सन्देह नही कि बिल के पास हो जाने पर पत्रकारो की स्थिति काफी सुदृढ हो गयी है और उन्हे आसानी से निकाला नही जा सकता, पर ध्येयवादी पत्रकारो के मार्ग मे कटक रहे है और यह बात भूलने की नही है कि स्वर्गीय श्री के० रामाराव को 28 पत्रो मे काम करना पडा था और जगदीश जी को 22 मे। उस विधेयक के पास होने मे तत्कालीन सूचना मत्री डॉ० बालकृष्ण केसकर ने बडी मदद की थी। खेद की बात यह है कि हम लोग डॉ० केसकर की सहायता को भूल चुके हैं।

यद्यपि पत्रकारो के अनेक प्रश्न हल हो चुके हैं तथापि कितने ही रचनात्मक काम करने के लिए पडे हुए हैं। अभी तक हम लोग एक अच्छा सर्वांगीण पत्रकार विद्यालय भी कायम नही कर सके हैं। कोई केन्द्रीय पुस्तकालय भी ऐसा नही, जहाँ सब सदर्भ ग्रन्थ मिल सके। हैदराबाद (दक्षिण) मे श्री वेंकट लाल ओझा का समाचार-पत्र सग्रहालय विद्यमान है। उन्होने बडे परिश्रम व अपनी पूँजी लगाकर इस सग्रहालय की स्थापना की है। उन्हे मेरा भी सहयोग प्राप्त होता रहा है, यद्यपि सारा श्रेय उनकी निष्ठा व परिश्रम को है। उत्तर भारत मे इसी प्रकार का एक सग्रहालय होना चाहिए। कुछ छुटपुट काम तो हम लोग व्यक्तिगत तौर पर कर ही सकते है—यथा श्रमजीवी पत्रकार सगठन का इतिहास, देश विदेश के सर्वश्रेष्ठ पत्रकारो के जीवन-चरित और पत्रकारिता-सम्बन्धी विशेषाको का सम्पादन। मैने अनेक पत्रकारो के रेखाचित्र प्रस्तुत किये थे—जैसे सी० पी० स्काट, नेविन्सन, एस० जी० गार्डनर, लार्ड नार्थक्लिफ, रामानन्द बाबू, गणेशशकर विद्यार्थी, सी० वाई० चिन्तामणि इत्यादि।

13

मेरे त्याग-पत्र

मैंने अपने क्षुद्र जीवन मे अनेक बार त्याग-पत्र दिये। लगी-लगायी नौकरी छोड दी थी—और इस कारण कुटुम्बियो तथा अधीनस्थो के जीवन को सकट मे डाल दिया था। अपनी उन सनको पर आज जब मैं विचार करता हूँ तो मुझे आश्चर्य के अलावा पछतावा भी होता है। भले ही वे इस्तीफे अपनी स्वाधीनता के लिये दिये गये हो पर एक सद्गृहस्थ की दृष्टि से वे अक्षम्य ही माने जायेंगे।

जब महामना मालवीय जी को मैंने बतलाया कि गुजरात नेशनल कॉलेज की नौकरी चरखे मे श्रद्धा न होने के कारण मैने छोड दी थी, तो उन्होने बडे स्नेहपूर्वक कहा था, "यह तुमने ठीक नही किया।"

मुझे वे दिन अब भी याद है जबकि हमारे पूज्य पिताजी अखबारो की रद्दी बाजार ले जाकर दो-तीन रुपये ले आते थे। उस समय यही स्थायी आमदनी थी। स्वतत्र-पत्रकारिता की आकाश-वृत्ति से 40-50 रुपये मिल जाते थे जिममे 25-30 रुपये मासिक 'लीडर' से मिलते थे। स्व० सी० वाई० चिन्तामणि जी मेरे पाँच कालम के लेख प्रतिमास छाप देते थे और 6 रुपये प्रति कॉलम मुझे मिलता था। एक बार श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मुझसे पूछा था, "अपनी जीविका के लिए आप क्या कर रहे है?" मैंने कहा, "फ्रीलास जर्नलिज्म (स्वतन्त्र पत्रकारिता)।" इस पर उन्होने तुरन्त ही कहा, "भूखो मरने की तैयारी क्यो कर रहे हो?"

महात्मा गाधी जी ने भारत सेवक समिति के सदस्य सदाशिव गोविन्द बझे, एडीटर 'सर्वेण्ट ऑफ इण्डिया' को लिखा था, "बनारसीदास हैज अननसेसरली इम्पोवेरिश्ड हिमसेल्फ।" (यानी बनारसीदास ने फिजूल ही मे अपने को गरीब बना लिया है।)

अब मैं यह अनुभव करता हूँ कि जब-जब मैंने त्याग-पत्र दिये उनके पूर्व भविष्य मे आने वाले खतरो का ख्याल नही किया। वाणी अथवा कलम की स्वाधीनता एक बहुत महँगी चीज है जिसकी प्राप्ति मेरे जैसे साधारण स्थिति के व्यक्ति के लिए यदि असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। गुजरात विद्यापीठ से त्याग-पत्र देते समय मैंने यह कारण लिखा था कि चरखे मे अपनी श्रद्धा न होने के कारण मैं त्याग-पत्र दे रहा हूँ। यह बतलाने की आवश्यकता नही कि महात्मा जी चरखे को सबसे ज्यादा महत्त्व देते थे। गुजरात विद्यापीठ के प्रत्येक अध्यापक के लिए चरखा कातना अनिवार्य था। मैं चरखा कातता नही था क्योकि उसमे मेरा मन नही लगता था। रुई के धागे के बार-बार टूट जाने से मैं उद्विग्न हो जाता था। एक बार महात्मा गांधी गुजरात विद्यापीठ मे पधारने वाले थे। वह विद्यापीठ के कुलपति थे और आचार्य गिडवानी जी हमारे

प्रिंसिपल। प्रदर्शन के लिए विद्यापीठ के सभी प्रोफेसर चरखा लेकर कातने लगे। उस समय आचार्य गिडवानी जी ने मुझसे कहा कि आप कातना तो जानते नहीं, इसलिए रुई धुनने के लिए एक कमरे मे बैठ जाइये। मैंने ऐसा ही किया और रुई धुनने लगा। अकस्मात् महात्मा जी मेरे कमरे मे ही आ गये और कहा, "पिंजड करो छो।" यानी, रुई धुन रहे हो। मैंने कह दिया, "हाँ" पर मैं रुई भी कभी धुनता न था इसलिए मेरी अन्तरात्मा ने मुझे धिक्कारा, 'यह तो बापू को धोखा देना है।'

जिस दिन विद्यापीठ मे महात्मा जी की प्रधानता मे पदवीदान समारोह (उपाधि वितरण, दीक्षान्त समारोह) होने को था, मैं प्रात काल स्नान करके साबरमती आश्रम से मील-डेढ मील चलकर विद्यापीठ मे गया। उस समय मैंने स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी कि आज मेरे भाग्य का निर्णायक दिवस है। महात्मा जी ने अपने दीक्षान्त भाषण मे कहा था, "जिनका चरखे मे विश्वास नही, यह विद्यापीठ उनके लिए नही है।" बापू इस प्रकार की बात प्राय कहा करते थे। श्रोता एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते थे। पर उस दिन मेरा दिमाग ताजा था और आत्मा सवेदनशील। हम सब अध्यापक श्रोताओ के बीच मे बैठे थे, मैंने जेब से पेन निकालकर एक कागज़ पर तीन-चार पक्तियो मे अपना त्याग-पत्र लिख दिया। त्याग-पत्र के शब्द ये थे—

श्रीमान कुलपति, गुजरात विद्यापीठ,

चरखे मे श्रद्धा न होने के कारण मैं विद्यालय मे अपने पद से त्याग-पत्र देता हूँ। मैं समझता हूँ कि विद्यालय के लिए तथा मेरे आत्मिक स्वास्थ्य के लिए यह हितकर होगा।

14-1-24, अहमदाबाद। —बनारसीदास चतुर्वेदी

जब बापू का दीक्षान्त भाषण समाप्त हुआ और विद्यापीठ के आचार्य तथा अध्यापको के साथ बापू बैठे तो मैंने अपना चार पक्तियो का वह इस्तीफा उन्हे दे दिया। बापू ने उसे पढकर उपस्थित अध्यापको से कहा, "जो काम बनारसीदास ने किया है, मैं उसकी प्रशसा करता हूँ और आप लोगो मे से किसी का विश्वास चरखे मे न हो, तो उसे भी बनारसीदास का अनुकरण करना चाहिए।" कृपलानी जी उस समय मेरे प्रधान थे। समारोह के बाद बापू आश्रम आने के लिए कार मे बैठने को थे ही, कि मैंने निवेदन किया कि मैं भी साथ चलूँगा। बापू ने कहा, "चलिए।" बैठने के बाद मैंने बापू से कहा, "आपके चरखे के बारे मे एक अन्ध-विश्वास पैदा हो गया है और कितने ही लोग यह ख्याल करने लगे है कि जो चरखा नही कात सकता वह कुछ भी त्याग और बलिदान नही कर सकता। मौका आने पर मैं किसी मामूली चरखा कातने वाले से पीछे नही रहूँगा।" बापू ने अत्यन्त धैर्यपूर्वक मेरी बात सुनी और कहा, "तुम्हारी गुजरात विद्यापीठ की नौकरी छूट गयी तो कोई चिन्ता की बात नही। मैं आश्रम से तुम्हारे वेतन का प्रबन्ध कर दूंगा। जैसे पहले काम करते थे वैसे ही करते रहना।" बापू की तत्कालीन उदारता पर जितना ही मैं ध्यान देता हूँ उतना ही उनकी प्रशसा करनी पडती है। चरखे पर अश्रद्धा करके मैंने उनके मर्मस्थल पर चोट की थी पर वह अत्यत धैर्यवान थे। मेरी बचकानी धृष्टता को उन्होने सहर्ष सहन कर लिया और कहा, "घरवालो को इस बात की सूचना भी नही भेजनी चाहिए कि तुमने इस्तीफा दे दिया है।"

साबरमती मे मेरा स्वास्थ्य ठीक नही रहता था, वहाँ का पानी खराब था। मैंने नियमानुसार टहलना बन्द कर दिया था इसलिए पाचन-क्रिया पर भी असर पडा था। मैंने आश्रम छोड देने का निश्चय कर

लिया । उन दिनो गुजरात विद्यापीठ से 130 रुपये मासिक वेतन मिलता था और रहने के लिए मकान भी। इनके अतिरिक्त 250 रुपये प्रवासी भारतीयो के कार्य के लिए मिलते थे। इन सबको एक साथ छोड देना मेरे लिए एक अत्यन्त खतरनाक काम था । पूज्य माता-पिता जीवित थे। गृहस्थी का पूरा-पूरा भार मुझ पर था। गुजरात नेशनल कॉलिज की नौकरी मैंने 14 जनवरी, सन् 1924 को छोडी थी । 'विशाल भारत' का काम मुझे पहली नवम्बर सन् 1927 को मिला था, क्योकि 'विशाल भारत' जनवरी सन् 1928 से प्रारम्भ होने वाला था । इस प्रकार लगभग तीन वर्ष तक मुझे सघर्ष करना पडा । इस बीच पाँच-छ महीने भाई हरिशकर जी शर्मा के साथ 'आर्य मित्र' का सहकारी सम्पादक रहा और आधे दिन काम करने के मुझे पचास रुपये मासिक मिलते थे। भोजन इत्यादि का प्रबन्ध तो भाई हरिशकर जी के साथ था । उन्होने मुझे अपना छोटा भाई समझा और अग्रज की भाँति ही व्यवहार करते रहे । 21 रोज के लिए सन् 1927 मे मैं इलाहाबाद के दैनिक 'अभ्युदय' का भी सम्पादक रहा । पर दैनिक का कार्य मेरे लिए अत्यन्त कठिन था और मुझे वह छोड देना पडा । महामना मालवीय उन दिनो बीमार थे । उनके सुपुत्र भाई पद्मकान्त जी उन दिनो 17-18 वर्ष के ही रहे होगे, फिर भी वह अच्छा लिख लेते थे । भाषा उनकी साफ-सुथरी थी । एक बार मैंने पद्मकान्त का एक लेख पूज्य बडे मालवीय जी को दिखाकर उसकी प्रशसा की तो उन्होने कहा, "अत्युक्तिमय प्रशसा करके कही बच्चे का दिमाग खराब मत कर देना।" जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि मैंने 'अभ्युदय' का काम कुल इक्कीस दिन ही किया, इस बीच प्रयाग से ही श्री मजर अली सोख्ता ने 'विवेक' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला था । वह उसका सम्पादक मुझे बनाना चाहते थे । मैं इलाहाबाद गया भी था पर मैंने उनसे स्पष्ट कह दिया कि मैं चुनाव आदोलन मे भाग नही लूंगा और 'विवेक' को भी उसमे नही पडने दूंगा।

उन दिनो प० हृदयनाथ कुजरू इलाहाबाद में ही रह रहे थे । जब मैं उनसे मिला और मैंने अपने चुनाव मे न पडने का निश्चय बताया तो वह हँसकर बोले, "आप भी अजीब आदमी है। मैंने सुना है कि सोख्ता जी पण्डित मोतीलाल नेहरू से रुपया लेकर पत्र निकाल रहे है, इसलिए वह पण्डित जी की पार्टी का समर्थन चुनाव मे करेगे ही । वह आपको 'विवेक' मे इतनी स्वाधीनता कैसे दे सकते हैं ?" मैं सोख्ता जी से क्षमा माँगकर चला आया । हाँ, दोनो ओर का थर्ड क्लास का किराया उन्होने मुझे अवश्य दे दिया था ।

मैं 400 रुपये मासिक पर गाधी भवन, टीकमगढ का सचालक था । रहने के लिए मुझे महल भी मिला हुआ था । जब मेरे अनुरोध पर विंध्य प्रदेश सरकार ने बेसिक ट्रेनिंग कॉलेज कुण्डेश्वर मे कायम कर दिया था तो मैने सचालक पद से त्याग-पत्र दे दिया । त्याग-पत्र मे मैंने लिखा था, "चूंकि मैं शिक्षा-विशेषज्ञ नही हूँ इसलिए अपने पद से त्याग-पत्र देता हूँ।" इस प्रकार मैं पुन आर्थिक सकट मे पड गया था। सन् 1925 से 27 के आर्थिक सकट के दिनो मे स्वर्गीय बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने मुझे सात महीने तक 50 रुपये मासिक की सहायता भेजी थी। उन्होने यह लिख दिया था कि जब तक आपको कोई नौकरी नही मिलेगी तब तक 50 रुपये महीने बराबर पहुँचते रहेगे। चूंकि मेरे पास कलकत्ते जाने के लिए किराये के पैसे भी न थे, इसलिए स्वर्गीय गुप्त जी से ही 50 रुपये मँगाए । यह बात मुझे बाद मे मालूम हुई थी कि गुप्त जी ने 'आज' के सम्पादक श्रद्धेय पराडकर जी तथा श्री प्रकाशचन्द्र जी के कहने से मेरी यह आर्थिक सहायता की थी। इस प्रकार दैवयोग से सकट के दिनो मे मुझे सहायक निरन्तर मिलते रहे। यहाँ मैं श्रद्धा-पूर्वक भाई सीताराम जी सेकसरिया, भाई भागीरथ कनौडिया, श्री सोहन लाल जी पचीसिया, और सर्वोपरि महाराज वीरसिंह जूदेव का स्मरण करता हूँ । सौभाग्य से मेरे वे कष्ट के दिन कट गये, पर उनकी याद कभी-कभी आ जाती है। एक बार तो साग-तरकारी के लिए एक आने का दही मँगाने के लिए भी पैसे घर मे नही थे।

14

फीरोज़ाबाद में

मेरे जीवन के 91 वर्ष बीत रहे है जिनमे केवल 35-36 वर्ष ही फीरोज़ाबाद मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्व-स्थान प्रेम (या लोकल पैट्रियाटिज्म) पर मैंने काफी लिखा हे। "हमारा नगर कैसे स्वस्थ और सुन्दर बन सकता है— इस विषय पर मेरा एक भाषण एस० आर० के० हाईस्कूल मे 1937 मे हुआ था और उसकी 1000 प्रतियाँ सैनिक प्रेस मे छपवाकर मैंने बटवा दी थी। पिछले 46 वर्षों मे बीसियो ही लेख अपने नगर के बारे मे लिखे है। यहाँ मैं कृतज्ञतापूर्वक यह स्वीकार करता हूँ कि मुझे स्थानीय शिक्षक सस्थाओ से भरपूर सहयोग निरन्तर मिलता रहा है। मेरे अनुरोध पर इस्लामिया कॉलिज ने फीरोज़ाबाद अक और किदवई अक निकाले थे। डी० ए० वी० कॉलेज ने श्रीधर पाठक और हरिशकर अक निकाले। पी० डी० जैन कॉलेज ने फीरोजाबाद जनपद अक, स्वच्छता अक और हजारीलाल जैन अको का प्रकाशन किया और तिलक कॉलिज ने रामचन्द्र पालीवाल अक का। इसके सिवाय कोटला कॉलज ने भी मेरे सम्पादन मे कोटला जनपद अक छपवाया था। 'अमर उजाला' तो बराबर मेरे फीरोज़ाबाद-सम्बन्धी लेख छापता रहा है।

फीरोज़ाबाद एक उद्योग प्रधान नगर है। यहाँ की आबादी 14 हजार से बढकर पौने तीन लाख तक पहुँच चुकी है और औद्योगिकता की बुराइयो ने स्थायी रूप से अपने डेरे यहाँ डाल लिये हैं। कहते हैं कि यहाँ चोर-बाज़ारी का अड्डा है। यहाँ सैकडो लखपति है और एक-दो करोडपति भी। इतने साधन-सम्पन्न नगर मे फीरोज़ाबाद का 'भारती भवन', जिसकी स्थापना 70 वर्ष पहले हुई थी, दयनीय स्थिति मे चल रहा है। उसके सस्थापक श्री द्वारिका प्रसाद सेवक का स्वर्गवास अभी हाल मे कोई चार वर्ष पहले बम्बई मे हुआ था। यह बडे दुर्भाग्य की बात है कि स्थानीय नगरपालिका से बहुत कम सहायता मिलती रही है और वह भी बीच मे बहुत दिन बन्द रही थी।

अन्य साहित्यिक सस्थाओ मे मानसरोवर साहित्य सगम ही क्रियाशील है। वैसे मनीषा, हिन्दी साहित्य परिषद, गीतिका, उद्गम तथा युवा क्रान्तिकारी परिषद आदि सस्थाएँ भी कुछ न कुछ करती ही रहती हैं। मेरी प्रेरणा पर पी० डी० कॉलेज ने एक अतिथि गृह, शास्त्री कक्ष के नाम से बनवा दिया था जो आगन्तुक साहित्यकारो के लिए सुविधाप्रद सिद्ध हुआ है। यहाँ पर समय-समय पर ब्रज साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन भी हो चुके हैं। पर अभी तक हम लोग कोई ठोस काम करने वाली सस्था स्थापित नही कर सके हैं।

साप्ताहिक पत्र 'फीरोजाबाद सन्देश', 'युग परिवर्तन', और 'अमर जवाहर' उपयोगी कार्य करते ही रहते हैं। 'फीरोजाबाद सन्देश' ने कई विशेषाक भी निकाले थे जैसे तोताराम सनाढ्य शताब्दी विशेषाक। डी० ए० वी० कॉलिज ने अपनी पत्रिका 'ज्योत्स्ना' का नगर समाजसेवी अक प्रकाशित कर अनेक दिवगत कार्यकर्ताओ का नाम उजागर कर श्रद्धाजलि अर्पित की थी।

यहाँ बच्चो का एक पार्क बनवाने के लिए मैं अनेक बार लिख चुका हूँ। सेठ विमल कुमार जैन ने मेरे निवास स्थान पर पधारकर पार्क बनवाने का वचन भी दिया था पर वह व्यस्तता के कारण अपने वचन का पालन अभी तक नही कर सके हैं।

कितने ही बाहर के लोग यहाँ पधारते हैं और काफी चन्दा कर ले जाते है। यदि यहाँ के साधन-सम्पन्न व्यक्ति चाहे तो यहाँ से एक सशक्त साप्ताहिक पत्र भी निकाला जा सकता है।

फीरोजाबाद मे विद्यार्थियो की सख्या बीस हजार तो होगी ही और फीरोजाबाद तहसील मे पाँच हजार से कम ग्रेजुएट न होगे। फिर भी इस नगर मे अस्वच्छता का साम्राज्य है।

समय-समय पर यहाँ के साधन-सम्पन्न व्यक्तियो से मुझे जो सहायता मिली है उसके लिए मैं उनका बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ। सबसे अधिक मदद मुझे भाई बालकृष्ण जी गुप्त से मिली है। मेरे उनके सम्बन्ध अब इतने घरेलू हो चुके हैं कि अब मैं उन्हे धन्यवाद देने की धृष्टता नही कर सकता। वह प्रति वर्ष मेरा जन्म दिवस मनाकर मुझे अनुचित महत्त्व देते रहे है। उनके अतिरिक्त श्री चन्द्रकुमार जैन और श्री चन्द्र भानु जी मित्तल ने भी आर्थिक सहायता की है।

मेरे साहित्यिक सहायको मे स्वर्गीय गणेशलाल शर्मा प्राणेश, भाई रतनलाल जी बसल, कुसुमाकर जी, हकीमुद्दीन फहीम, स्वर्गीय राजेन्द्रनाथ शर्मा तथा भाई डॉ० मथुराप्रसाद मानव के नाम उल्लेखनीय है। श्री भाई जगन्नाथ लहरी तथा भाई जगदीश मृदुल का सहयोग तो मुझे बराबर मिलता ही रहता है। श्री मानव जी तो तीन-चार वर्ष से नित्य प्रति मेरे कार्य मे नि स्वार्थ सहयोग प्रदान कर रहे हैं और डेढ़-दो घण्टा नित्य मुझे देते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि हम फीरोजाबाद के भविष्य के बारे मे एक भारी-भरकम सचित्र ग्रन्थ निकाले। साधनहीन होने पर भी भाई प्राणेश जी ने मेरी प्रार्थना पर फीरोजाबाद परिचय ग्रन्थ निकाल दिया था, जो अपने ढग की एक अनूठी पुस्तक है।

मेरे जीवन के बाईस वर्ष प्रवासी भारतीयो के कार्य मे बीते और पिछले तैतीस वर्षों से मै शहीदो का श्राद्ध करता रहा हूँ पर अपने नगर के लिए जमकर साल दो साल नही बिता सका, इसका मुझे सदैव पछतावा रहेगा। अपने जीवन के शेष दिनो मे मैं कुछ सेवा इस नगर की करना चाहता हूँ। यद्यपि अब उतनी शक्ति बाकी नही बची है, फिर भी मैं निराश नही हूँ।

जरूरत इस बात की है कि कराची के जमशेद जी, लखनऊ के गगाप्रसाद वर्मा, मैनपुरी के हेमचन्द्र चतुर्वेदी और हमारे नगर के स्वर्गीय हजारीलाल जैन के जीवन के दृष्टान्त हमारे युवको के सामने रखे जावें।

15

मेरे द्वारा की गई समीक्षाएँ

'विशाल भारत' के दस वर्षों मे तथा 'मधुकर' के छह वर्षों मे मैने कुछ पुस्तको तथा लेखो की आलोचना स्वय की थी जिसमे दो लेख निराला जी के थे तथा एक कहानी प्रसाद जी की थी। कुछ ग्रन्थो की समीक्षा भी मेरे द्वारा हुई थी। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, हिन्दी साहित्य का विधिवत् अध्ययन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नही हुआ। मेरी आलोचनाएँ केवल एक साधारण पाठक की दृष्टि से ही की गयी थी। एक सज्जन ने उन आलोचनाओ की, जो मैंने निराला जी के लेखो की की थी, घोर निन्दा की थी। उन्होने निराला जी के उन लेखो को उद्धृत करने की शिष्टता नही दिखायी। निराला जी के 'वर्तमान धर्म' नामक लेख के विषय मे स्व० प० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा था "यह विक्षिप्त का बर्राना है और पागल का प्रलाप।"

'दुलारे दोहावली' के एक दोहे के जो आठ अर्थ निराला जी ने किये थे, वह भी बिल्कुल ऊल जुलूल थे। अब यह सभी जानते हैं कि निराला जी के मस्तिष्क मे कुछ विकार आ गया था। पर जिन दिनो 'वर्तमान धर्म' छपा था, मुझे इस बात का पता न था। केवल दो अको मे वर्तमान धर्म पर आन्दोलनात्मक पत्र छपे। तीसरे अक मे जब मुझे निराला जी की अस्वस्थता का पता लगा तब मैंने आन्दोलन बन्द कर दिया। निराला जी निस्सन्देह क्रान्तिकारी कवि थे। 'विशाल भारत' मे उनकी कविताओ पर प्रशसात्मक लेख भी मैने छापे थे। अपने द्वारा सचालित तथा सस्थापित हिन्दी भवन मे निराला जी का तैलचित्र भी मैने टँगवाया था। जब श्री किशोरीदास जी वाजपेयी हिन्दी भवन मे पधारे तो श्री निराला जी का चित्र देखकर उन्हे आश्चर्य हुआ था। उन्होने मुझसे पूछा भी था, "यह कैसे हुआ ?" मैंने तभी उनसे निवेदन किया था, "मैं निराला जी के सघर्षमय साहित्यिक जीवन का प्रशसक हूँ।"

मैंने अपने जीवन मे कुल जमा 25-30 हिन्दी और अग्रेजी किताबो की समीक्षा की होगी, जिनमे कुछ किताबो को तो मैंने खरीद कर पढा था, जैसे रधावा साहब की 'ब्यूटीफाइग इण्डिया' और धीरेन भाई की 'समग्र ग्रामसेवा की ओर'। मेरा यह निश्चित मत है कि सम्पादको को सद्ग्रन्थो को खरीदकर उसकी आलोचना करनी ओर करानी चाहिए। जब स्व० रामानन्द चटर्जी ने 'विशाल भारत' का काम मुझे सौपा था, उन्होने केवल एक बात मुझसे कही थी, "किसी लेखक की रचना पर लिखते हुए यह मत लिखना कि उसने किसी भीतरी उद्देश्य से यह काम किया है।" मैंने बडे बाबू की इस बात को सदैव ध्यान मे रखा।

16

पिछले इकहत्तर वर्ष

मेरा प्रथम लेख 'आत्मावलम्बन' सन् 1912 के 'नवजीवन' के मार्च-जून के अक मे छपा था। पत्र के सम्पादक थे स्व० केशवदेव जी शास्त्री, जिनको लोग अब बिल्कुल भूल चुके हैं। मैंने उनके विषय मे एक पुस्तिका भी लिखी थी जिसका नाम था, 'अमेरिका मे केशवदेव शास्त्री'। मैंने उनके दर्शन फीरोजाबाद मे किये थे, जब वह आर्य समाज के एक उत्सव मे पधारे थे। पुस्तक को उनके भक्त श्री द्वारिकाप्रसाद जी सेवक ने छपवाया था। उस पुस्तक की भूमिका पण्डित रामनारायण मिश्र ने लिखी थी। स्व० सत्यदेव परिव्राजक के आत्म-चरित मे केशवदेव शास्त्री के प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख है जिससे पता चलता है कि वह पहले क्रान्तिकारी रह चुके थे। शास्त्री जी का 'नवजीवन' सात्विक विचारो का एक पत्र था। खेद है कि उसकी पुरानी फाइले भी अब अप्राप्त हो गयी हैं।

सन् 1912 से लेकर 1981 तक, यानी पिछले 70 वर्षों मे मुझे हिन्दी तथा अग्रेजी के अनेक पत्रकारो तथा सम्पादकों के निकट सम्पर्क मे आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उर्दू के एक पत्र 'जमाना' के सम्पादक स्व० मुशी दयानारायण निगम के दर्शन मैंने किये थे और उनसे पत्र-व्यवहार भी मैंने किया था। 'स्वराज्य' उर्दू के सस्थापक और सम्पादक शान्तिनारायण भटनागर ने स्वय मेरे स्थान पर पधार कर दर्शन दिये थे। इसके सिवाय उर्दू के पितामह मौलवी हक साहब से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था और उनके 30-35 महत्त्वपूर्ण पत्र मेरे पास सुरक्षित थे।

हमे किसी भाषा विशेष से द्वेष नही करना है। पिछले 200 वर्षों मे अग्रेजी ने तो भारत की एक उपभाषा का रूप ही धारण कर लिया है। अग्रेजी और अग्रेजी का आधिपत्य हमारे राष्ट्र के लिए अत्यन्त हानिकारक था पर विदेशी हुकूमत खत्म हो जाने के बाद अग्रेजी एक सेविका के रूप मे ही हमारे यहाँ रहनी चाहिए। एक बात ध्यान देने योग्य है कि अग्रेजी हुकूमत के चले जाने पर अग्रेजियत भारतवर्ष मे बहुत बढ़ गयी है।

पत्रकारिता एक अन्तर्राष्ट्रीय विषय है और विदेशो मे जो सर्वश्रेष्ठ पत्रकार हुए है उनकी रचनाओ का हमे अध्ययन करना चाहिए और सम्मान भी। मैंने स्वय सम्पादकाचार्य सी० पी० स्कॉट, नेविन्सन, लार्ड नार्थक्लिफ, ए० जी० गार्डनर इत्यादि पर रेखाचित्र प्रस्तुत किये हैं। अमेरिका के विलियम लायड गैरीसन ने महात्मा गाधी से भी पहले अहिंसा का प्रतिपादन किया था।

भारत मे रामानन्द चट्टोपाध्याय, सी० वाई० चिन्तामणि, सैयद अब्दुल्ला बरेलवी, के० नटराजन इत्यादि के नाम प्रसिद्ध ही हैं और मद्रास का दैनिक 'हिन्दू' तो हमारे देश का सर्वश्रेष्ठ पत्र माना जाता है। 'लीडर' के कृष्णाराम मेहता और विश्वनाथप्रसाद जी व नारायण प्रसाद चतुर्वेदी भी सुयोग्य पत्रकार थे। इनमे रामानन्द बाबू, चिन्तामणि, कृष्णाराम मेहता से मेरा विशेष सम्बन्ध रहा है।

हिन्दी पत्रकार कला पर कई शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत किये गये है पर जहाँ तक मैं जानता हूँ अखिल भारतीय पत्रकार कला पर कोई शोध नही किया गया।

हमारे देश मे कृतज्ञता का प्राय अभाव ही है। चिन्तामणि जी की गणना उत्तर प्रदेश के निर्माताओ मे होती है पर हम उत्तर प्रदेश वालो ने उनकी स्मृति-रक्षा के लिए कुछ भी प्रयत्न नही किया। उनका कोई जीवन-चरित भी नही छपा। हाँ, रामानन्द बाबू की सुपुत्री श्रीमती शान्तादेवी नाग ने अपने पूज्य पिता जी का जीवन-चरित बगला मे अवश्य लिखा था और मेरे द्वारा एक ग्रन्थ अग्रेजी मे उन पर छपा है। 'विश्व भारती' ने भी रामानन्द अक निकाला था। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय पत्रकार विद्यालयो की लाइब्रेरी मे भारत की सभी भाषाओ के पत्रकारो के चित्र और चरित्र हो। खेद की बात है कि पुराने पत्रो की फाइलें भी अप्राप्य होती जा रही है। प० सुन्दरलाल जी के 'कर्मयोगी' तथा 'भविष्य' के अक अब नही मिलते। 'भारत मित्र' की पुरानी फाइले एक सज्जन ने रद्दी मे बेच दी। 'प्रताप' की कुछ फाइलें ही मिलती हैं। हाँ, नेहरू म्यूजियम ने कई पत्रो की पुरानी फाइलो की माइक्रो फिल्म बनवा ली गयी है। स्व० बालकृष्ण भट्ट के हिन्दी 'प्रदीप' के अक इसी प्रकार सुरक्षित हो गये। प० झाबरमल शर्मा ने भी अपने सग्रहालय मे 'कलकत्ता-समाचार' और 'हिन्दू-ससार' को सुरक्षित कर लिया था। कुछ पत्र बन्धुवर श्रीनारायण चतुर्वेदी ने भी सुरक्षित कर लिये हैं।

पुराने पत्रो की रक्षा का कार्य जनपदीय ढँग पर शुरू होना चाहिए। उदाहरणार्थ, कुमायूँ और गढ़वाल मे जहाँ कही भी पुराने पत्र मिलें, उनकी माइक्रो फिल्म ले लेनी चाहिए। स्व० बद्रीदत्त पाडे का जीवन-चरित मैंने छपा दिया था। श्रद्धेय मुकन्दीलाल जी बैरिस्टर के सग्रहालय मे भी कुछ पत्र मिले थे। पुराने पत्रो, कागजातो और दस्तावेजो की नकल का काम इतना महत्त्वपूर्ण और कठिन है कि उसे एक-दो आदमी नही कर सकते। उसे तो सरकार द्वारा ही कराया जा सकता है। सौभाग्य मे हमारे बीच मे ऐसे व्यक्ति विद्यमान है जो आवश्यक परामर्श दे सकते है, जैसे राणा जगबहादुरसिंह, जो मौलाना मुहम्मद अली तथा कालीनाथ राय के बारे मे अधिकारपूर्वक कह सकते हैं। उनके अनुज स्व० पृथ्वीपालसिह तो भारत मे पत्रकार विद्यालयो के सस्थापक थे।

हिन्दी पत्रकारो के विषय मे मेरे द्वारा कुछ सेवा अवश्य हुई है। गणेश जी पर मैंने कई ग्रन्थ निकलवाये है और आचार्य प० पद्मसिंह जी शर्मा पर दो तीन ग्रन्थ। 'रामराज्य' (कानपुर) तथा 'मधुकर' के पत्रकार अक भी मैंने निकाले थे।

मुझ यह देखकर खेद होता है कि अग्रेजी के पत्र देशी भाषाओ के पत्रो को महत्त्व नही देते। 'लीडर' के चिन्तामणि जी इस विषय मे एक अपवाद थे। वह जानते थे कि भविष्य मे देशी भाषा के पत्र ही अधिक प्रभावशाली होगे। उन्होने आग्रह करके मुझसे अनेक लेख 'लीडर' के लिए लिखवाये थे। वे लेख हिन्दी पत्रकारो और हिन्दी पत्रकारिता के विषय मे थे। स्वतत्र पत्रकारिता का प्रयोग करने वाले पत्रकारो का जीवन समान रूप से सघर्षमय रहा है—चाहे वह चिन्तामणि हो, रामाराव, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी या मैं स्वयं।

हमे सभी भाषाओ और उपभाषाओ के पत्रकारो का सम्मान करना है। छोटे बडे के भाव हमारे हृदय मे हैं ही नही। पर चूंकि हमारी राजभाषा हिन्दी के बोलने और समझने वाले इस देश मे 25-30 करोड है, इसलिए हम हिन्दी पत्रकारिता को अधिक महत्त्व देते हैं। जैसा काम श्री लक्ष्मीशकर व्यास ने पराडकर जी के लिए किया है वैसा ही अन्य प्रतिष्ठित पत्रकारो के लिए भी होना चाहिए। स्व० प० रुद्रदत्त सम्पादकाचार्य धामपुर, बिजनौर के थे और उस जन पद के लेखको का कर्त्तव्य है कि उनकी कीर्ति-रक्षा का प्रयत्न करें। हम स्व० पद्मकान्त जी मालवीय के सस्मरण भी न छपा सके। स्व० बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त का कोई जीवन-चरित हिन्दी मे नही है। स्व० श्रीप्रकाश जी को तो लोग भूल ही गये है।



सपादकाचाय पण्डित रुद्रदत्त शर्मा

आर्य समाज इस विषय मे सबसे बडा अपराधी है। उमने स्व० प० पद्मसिंह जी, इन्द्रजी, बशीधर विद्यालकार, प० सत्यदेव विद्यालकार तथा प० हरिशकर जी शर्मा की कीर्ति-रक्षा के लिए कुछ भी नही किया। यदि उत्तर प्रदेश की सरकार कानपुर मे एक बृहद पत्रकार विद्यालय की स्थापना करे और प्रचुर आर्थिक सहायता भी दे तो वहाँ एक पत्र सग्रहालय कायम कराया जा सकता है। भाई नरेशचन्द्र चतुर्वेदी ने हिन्दी पत्रकार भवन द्वारा कुछ प्रारम्भिक कार्य किया भी है। कानपुर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री भक्तदर्शन जी ने भी कुछ प्रयत्न किया था पर गाडी आगे नही बढी। एक पत्रकार विद्यालय आगरा विश्वविद्यालय द्वारा भी कायम किया जा सकता है।

17

वे क्षण जो भुलाए नही जा सकते

जीवन के कुछ क्षण ऐसे होते है जो स्मृति-पटल पर सदा-सर्वदा के लिए अकित हो जाते है। किसी भी लेखक या पत्रकार का यह कर्त्तव्य है कि उन क्षणो को सुरक्षित कर ले। वे क्षण उसके जीवन की अमूल्य निधि है और समय-समय पर उनका स्मरण प्रेरणा प्रदान कर सकता है। स्वय मेरे विस्तृत जीवन मे ऐसे अनेक क्षण आये थे जिनकी याद मैं अक्सर कर लेता हूँ। उनमे से कुछ का विवरण इस प्रकार है—

सन् 1918 मेरे जीवन का एक निर्णायक वर्ष माना जा सकता है। इसी वर्ष क्रोपाटकिन का आत्म-चरित पढने और महात्मा गाधी जी, प्रो० गिडीज, दीनबन्धु एण्ड्रूज और कवीन्द्र रवीन्द्र के दर्शन प्रथम बार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं उन दिनो इन्दौर के राजकुमार कॉलेज मे हिन्दी-अध्यापक था। एक दिन यो ही घूमते-घामते स्थानीय विक्टोरिया लाइब्रेरी मे जा पहुँचा। मैं उसकी प्रबन्धकारिणी का सदस्य भी था। पुस्तकालय मे पहुँचकर मैंने एक अलमारी खोली तो दो जिल्दो वाली एक पुस्तक दीख पडी- –'मेमोयर्स ऑफ ए रिवोल्यूशनिस्ट' अर्थात् एक क्रान्तिकारी के सस्मरण। लेखक का नाम था—क्रोपाटकिन। यह नाम मैंने पहली बार ही पढा था। पुस्तक की दोनो जिल्दें मैंने पढने के लिए ले ली। मुझे तब तक इस बात का पता न था कि वह ग्रन्थ 19वी शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ आत्म-चरित माना जाता है। पुस्तक के प्रथम पाठ ने ही मेरी आत्मा को जकड लिया। मैंने स्वय तो उसे पढा ही श्रद्धेय गणेशशकर जी विद्यार्थी को भी पढने के लिए भेज दिया और मेरे अनुरोध पर श्री प्यारे मोहन चतुर्वेदी ने उसका अनुवाद 'क्रान्तिकारी राजकुमार' के नाम से कर दिया। उसे 'प्रताप' कार्यालय ने छाप दिया। यह बात सन् 1918 की है। तब मैंने स्वप्न मे भी यह कल्पना नही की थी कि इसके इकतालीस वर्ष बाद मुझे रूस जाने का सौभाग्य प्राप्त होगा और क्रोपाटकिन की समाधि पर पुष्प चढाने वाला मैं प्रथम भारतीय होऊँगा।

रूस पहुँचने पर मैंने अपने रूसी मित्रो से कहा, "मुझे क्रोपाटकिन के जन्म स्थान के दर्शन कराइए और मैं उनकी समाधि पर फूल चढाने भी जाऊँगा।" मेरी इच्छा पैदल चलकर समाधि तक जाने की थी पर मेरे रूसी मेजबानो ने कहा कि वह स्थान तो मास्को होटल से पाँच मील दूर है और वहाँ तक पैदल चलना बहुत कठिन होगा। इसलिए कार मे ही जाना पडा। वह स्थल बडा भारी कब्रिस्तान है—अत्यन्त व्यवस्थित और उपवन का रूप धारण किये हुए। एक रूसी बुढ़िया उसकी निर्देशिका थी। प्रार्थना करने पर

उसने एक व्यक्ति हम लोगो के साथ कर दिया जिसने हमे कब्र तक पहुँचा दिया। दुभाषिये ने अंग्रेजी मे कहा, "यही क्रोपाटकिन की समाधि है। मैं 18 रुपये मे फूल खरीदकर अपने साथ लेता गया था। मैंने वे फूल बडी श्रद्धा से समाधि पर अर्पित कर दिये। दुभाषिए ने उस क्षण का एक चित्र भी ले लिया था।

वह चित्र मेरे अभिनन्दन ग्रन्थ मे छपा भी है। आगे चलकर चि० बुद्धिप्रकाश ने क्रोपाटकिन के आत्म-चरित का अनुवाद किया था पर चूँकि वह उस समय सरकारी नौकर था इसलिए वह अनुवाद मेरे नाम से ही छपा था। क्रोपाटकिन के प्रति मेरे हृदय मे महात्मा जी के समान ही उच्च स्थान था और अब भी है। निस्सदेह वह एक ऋषि थे और भावी ससार की समाज-व्यवस्था मे कार्ल मार्क्स और गाधी जी के साथ उनके विचारो का भी उपयोग होगा। क्रोपाटकिन अनार्किस्ट (अराजकवादी) थे और महात्मा जी तथा उनके सिद्धान्तो मे विचित्र साम्य भी पाया जाता है। यद्यपि दुर्भाग्यवश मैं 'कर्मणा' अराजकवादी न बन सका तथापि 'मनसा वाचा' उस सिद्धान्त के प्रति मेरी श्रद्धा अब भी है। अंग्रेजी की एक उक्ति है

Go put thy creed
into thy deed
Not speak with double tongue

अर्थात् अपने सिद्धान्त को कार्य रूप मे परिणत करो, दुहरी जबान से मत बोलो। पर मेरे भाग्य मे तो दुहरी जबान से बोलना ही बदा था। एक रूसी लेखक श्री वाइकोव ने मेरे मुँह पर ही कह दिया, "आप अराजकवादी नही हो सकते।" मैंने पूछा, "क्यो ?" वह तपाक से बोले, "क्या कोई अराजकवादी राज्य सभा का सदस्य बन सकता है?"

जब सन् 1952 मे पटना मे लोकनायक श्री जयप्रकाश जी ने मेरे राज्य सभा का सदस्य बनने की बात पढी तो उन्होने आश्चर्य से कहा, "यह क्या हुआ ? चौबे जी तो अराजकवादी थे।" मेरे किसी मित्र ने जयप्रकाश जी की यह बात मुझे लिख भेजी। आगे चलकर मैंने एक पत्र मे श्रद्धेय जयप्रकाश जी के सामने यह स्वीकार कर लिया था कि उन दिनो मैं टीकमगढ मे बेकार बैठा हुआ था और बिना किसी प्रयत्न के मुझे राज्य सभा की मेम्बरी मिली तो मैं उसे अस्वीकार नही कर सका। श्रद्धेय जयप्रकाश जी बडी उदार प्रवृत्ति के थे। उन्होने उत्तर मे अपने पत्र मे लिखा था, "आप जहाँ भी रहेगे, हिन्दी का हित ही करेगे।"

क्रोपाटकिन की समाधि पर पुष्पार्पण का वह क्षण मेरे जीवन की अविस्मरणीय घटना है।

18

मेरे द्वारा संचालित आंदोलन

प्रोपेगेण्डा या प्रचार कार्य पत्रकार कला की एक विशेष विधा है। आज के प्रचार युग मे इसका बडा महत्त्व भी है। किसी प्रश्न को चर्चा का विषय बना देना कोई आसान काम नही है। हिन्दी जगत् मे मेरे द्वारा कई आन्दोलनो का सूत्रपात हुआ था और 'प्रोपेगेण्डा' मेरे नाम का एक हिस्सा ही बन गया था। उग्र जी उसे पुडपुडगेण्डा कहते थे। प० पद्‌मसिंह शर्मा ने भी अपने एक पत्र मे इसका जिक्र किया था। मैंने जो आन्दोलन चलाए उनमे से कुछ के नाम ये है

1 घासलेटी साहित्य विरोधी आन्दोलन—जो अश्लील साहित्य के खिलाफ था और उसे मैंने 'विशाल भारत' मे ढाई वर्ष चलाया था।

2 कस्मै देवाय आन्दोलन—जो साहित्य को एक नया मोड देने के पक्ष मे था।

3 ग्रामीण लेखको की समस्या।

4 जनपद-आन्दोलन।

5 प्रान्त निर्माण आन्दोलन—जो बुन्देलखण्ड को एक प्रान्त बनाने के पक्ष मे था।

इनके अतिरिक्त अन्य कई विषयो की सार्वजनिक चर्चाएँ मैंने 'विशाल भारत' तथा 'मधुकर' के द्वारा चलाई थी। प्रवासी भारतीयो का कार्य तो मैं सन् 1914 से करता ही चला आ रहा था। नगर सेवा का आन्दोलन मैंने 1937 से शुरू किया था। दिल्ली मे प्रवासी भवन स्थापित करने का कार्य तो अब भी चल रहा है। अपने-अपने स्थान पर इन प्रश्नो का महत्त्व है पर अपने सब आन्दोलनो मे मैं जनपद आन्दोलन को अधिक महत्त्व देता हूँ। 'मधुकर' का जनपद आन्दोलन अक मैंने सन् 44 मे प्रकाशित किया था। अब वह सर्वथा दुष्प्राप्य हो गया है। रूस के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान् चेलिशेव महोदय को रूस मे उसकी फोटोस्टेट कापी करानी पडी थी। जनपद आन्दोलन को शास्त्रीय पृष्ठभूमि देने का पुण्य कार्य स्वर्गीय वासुदेवशरण अग्रवाल ने किया था। उनकी पुस्तक 'पृथ्वी पुत्र' जनपदीय कार्यकर्ताओ के लिए बाईबिल है। अग्रवाल जी बडे विनम्र पुरुष थे और कृतज्ञता की भावना उनमे कूट-कूटकर भरी थी। एक पत्र मे उन्होने लिखा, "जितना सम्पादकीय उछाल (पुश) मुझे आपसे मिला है उतना किसी दूसरे से नही मिला।" अग्रवाल जी ने मुझे 70-75 महत्त्वपूर्ण पत्र लिखे थे, जिन्हे बन्धुवर वृन्दावन दास जी ने पुस्तकाकार मे छपा दिया। 'मधुकर' के जनपद अक मे तीन धाराएँ थी—1 आचार्य वासुदेव शरणजी की शुद्ध जनपद धारा, 2 मेरा विकेन्द्रीयकरण

आन्दोलन और 3 महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का प्रत्येक जनपद को प्रान्त बनाने का सुझाव। इसके कारण कुछ गलतफहमियाँ भी उत्पन्न हो गई थी। एक गलतफहमी का कारण यह भी था कि मैं बुन्देलखण्ड को अलग प्रान्त बनाने का आन्दोलन भी चला रहा था। भाई वासुदेवशरण जी को इन दोनो आन्दोलनो का सम्मिलन पसन्द नही था। वह इसे सकरता का नाम देते थे।

मेरे विकेन्द्रीकरण का अभिप्राय यही था कि हम केन्द्रीय सस्थाओ के मोह को छोडकर यत्र-तत्र छोटे-छोटे केन्द्रों को विकसित करें। सम्पूर्ण साहित्यिक शक्ति काशी और प्रयाग मे केन्द्रित कर देना अन्ततोगत्वा हानिकारक ही है। आगे चलकर वह सब ग़लतफहमियाँ दूर हो गयी और आचार्य वासुदेवशरण की नीति ही चिर-स्थायी और मगलकारी सिद्ध हुई। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भिन्न-भिन्न भाषाओ के जनपदो के साहित्यिक मण्डल स्थापित करने का प्रस्ताव दिल्ली के हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे मेरे द्वारा ही भेजा गया था और टण्डन जी ने उसे पास भी कर दिया था। ब्रजसाहित्य मण्डल की स्थापना भी सन् 1936 मे मेरे द्वारा ही हुई थी। मेरे लिए यह परम सौभाग्य की बात रही है कि मुझे भिन्न-भिन्न जनपदो मे रहने का मौका मिला है। इन्दौर (मालवा) मे 6 वर्ष, बगाल मे 11 वर्ष, गुजरात मे 4 वर्ष बुन्देलखण्ड मे साढे चौदह वर्ष, दिल्ली मे 12 वर्ष, गढवाल मे 2 वर्ष, ज्ञानपुर (काशी) मे 3 वर्ष और ब्रजभूमि तो मेरी जन्मभूमि है ही।

जनपदीय भाषाएँ निरन्तर पनपती रही हैं। रेडियो विभाग द्वारा उन्हे काफी प्रोत्साहन भी मिला है। खडी बोली के कुछ नासमझ समर्थको ने जनपद आन्दोलन का विरोध भी किया था पर वह निरर्थक सिद्ध हुआ। प्रयाग के एक पत्रकार ने मुझसे कहा था, "आप तो जिन्ना से भी अधिक भयकर व्यक्ति है, क्योकि आपके आन्दोलन से भारत बीसियो भागो मे विभक्त हो जाएगा।" वह स्वर्गवासी हो चुके है। हाथरस के ब्रज साहित्य मण्डल के अधिवेशन मे मैंने अन्तरजनपदीय परिषद की स्थापना भी करवाई थी। मेरे इस कार्य मे मथुरा के वृन्दावन दास जी ने बहुत सहयोग दिया था। भदेई मुजफ्फरपुर बिहार के श्री राम इकबाल सिंह राकेश ने मैथिली के लिए बडा भारी काम किया है। भोजपुरी के श्री कुलदीप नारायण झडप तो अन्तर्जनपदीय परिषद् के मत्री ही रहे हैं। वह और उनके साथी आजनेय अब भी बहुत काम कर रहे है। अवधी के दो महाकवि, श्री वशीधर शुक्ल तथा रमई काका तो स्वर्गवासी हो चुके है। निमाडी के लिए श्री रामनारायण उपाध्याय का कार्य अत्यन्त प्रशसनीय है। इनमे सबसे अधिक बोलने वाले भोजपुरी भाषा के है। मारीशस द्वीप मे भोजपुरी का काफी प्रचार है और वहाँ हाल मे ही गीता का भोजपुरी अनुवाद भी छपा है। फिजी द्वीप मे तथा दक्षिण अफ्रीका मे भी कुछ भोजपुरी बोलने वाले हैं। हाल ही मे गढवाली-हिन्दी कोश कोटद्वार से प्रकाशित हुआ है। सुना है कि आगरे के के० एम० मुशी विद्यापीठ द्वारा स्वर्गीय द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी का ब्रजभाषा कोश छपने वाला है। वशीधर जी भी अवधी कोश तैयार कर रहे थे, पर वह काम अधूरा ही रह गया। भाई वशीधर जी की तीन कविताएँ—सिनेमा, मुशायरा और कवि सम्मेलन—मैंने एक साथ कानपुर मे 'सुमित्रा' मे छापी थी। वे शक्तिशाली तथा मनोरजक भी थी। महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने तो यहाँ तक कहा था कि महाकवि तुलसी के बाद वशीधर शुक्ल ही अवधी के सबसे अधिक शक्तिशाली कवि है।

हिन्दी के भिन्न-भिन्न जनपदो मे जो कार्य हो रहे हैं, उन्हे एक सूत्र मे बाँधने की योजना अभी तक पूर्णत सफल नही हो पायी है। बन्धुवर झडप जी वयोवृद्ध हो चुके है और साधनो के अभाव के कारण अधिक

काम कर नही पाते। अन्तर-जनपदीय भाषा सम्बन्धी प्रश्नों को महत्त्व देने वाला कोई पत्र हिन्दी जगत् में विद्यमान नही है। छुट-पुट काम करने वाले तो बहुत हैं, जैसे सासनी (अलीगढ़) के डा० राजेन्द्र रजन चतुर्वेदी, पर वह अपना थोडा समय ही इस कार्य को दे सकते हैं। इधर सैंया बजिला आगरा के दक्षिण विद्यालय के अध्यापक श्री कृष्णगोपाल दुबे ने ख्याल गायको के लिए अच्छा कार्य किया है और अभी हाल ही मे एतमाद-पुर (आगरा) के वैद्यराज श्री शिवकुमार 'आनन्द' ने भी एक उत्सव (लोक साहित्य सम्मेलन) बडी सफलतापूर्वक आयोजित किया था। अनेक क्षेत्रो की तरह इस क्षेत्र मे भी नये रगरूटो के भरती करने की जरूरत है।

अश्लील साहित्य विरोधी आन्दोलन

अश्लील साहित्य के स्थान पर घासलेटी साहित्य नाम का प्रचार मेरे द्वारा ही हुआ था, यद्यपि इस नाम का सुझाव बन्धुवर सत्येन्द्रजी ने दिया था। अश्लील साहित्य का प्रश्न केवल भारत से ही नही, सम्पूर्ण विश्व से सम्बन्ध रखता है। हिन्दुस्तान मे जो बहुत-सा गन्दा साहित्य अग्रेजी मे आता है, वह अमरीका इत्यादि से आता है। उसमे से बहुत सा पगडडियो पर बिकता है और बहुत-सा चाय आदि के स्टॉलो पर। दिल्ली के एक चतुर्वेदी सज्जन ने बताया था कि उनके मकान के नीचे पान वाले की एक दूकान है, जहाँ गन्दा साहित्य चोरी-छिपे बिकता है। ग्राहक 25-30 पैसे का पान लेता है और अश्लील साहित्य के लिए इशारा कर देता है। तब दूकानदार 5-7 रुपये का गन्दा साहित्य उसे दे देता है। 'युग परिवर्तन' के फीरोजाबाद के सम्पादक श्री जगदीश मृदुल जी ने हमे अपने अनुभव की एक घटना सुनाई थी। आगरे के एक प्रकाशक ने, जो गन्दा साहित्य बेचकर मालामाल हो गये है, उन्हे कुछ पुस्तकें भेंट कर दी थी। मृदुल जी ने घर आकर उनके पन्ने उलटे तो वे इतनी अश्लील तथा गन्दी प्रतीत हुई कि उन्होने उन्हे फाडकर आग के हवाले कर दिया।

'विशाल भारत' का जन्म जनवरी 1928 मे हुआ था। कुछ महीने बाद ही मैने सम्पादकीय नोट लिखा था— 'असतो मा सदगमय'—'मुझे बुराइयो मे अच्छाइयो की ओर ले चलो। उस नोट मे मैने अपना यह मत स्पष्ट प्रकट कर दिया था कि मैं यौन सम्बन्धी विषयो के बारे मे अधिकारी व्यक्तियो के द्वारा लिखे गये लेखो के विरुद्ध नही हूँ, पर वे वैज्ञानिक ढग पर लिखे गये हो। लेकिन जो लेख जन-साधारण या सामान्य पाठको की वासनाओ को उत्तेजित करते हो, उनका डटकर विरोध ही होना चाहिए। 'विशाल भारत' द्वारा दो वर्ष तक जो घासलेटी विरोधी आन्दोलन चलाया गया। उसका विवरण उस पत्र के पुराने अको मे है ही पर अन्य सामग्री के साथ वह आगरा विश्वविद्यालय के चतुर्वेदी ब्रजकेन्द्र मे सुरक्षित है। उक्त आन्दोलन के प्रारम्भ की कथा इस प्रकार है—

सन् 1927 मे मैंने अपने अनुज स्वर्गीय रामनारायण चतुर्वेदी से पूछा था कि पता तो लगाओ कि तुम्हारे साथी आजकल कौन-कौन-सी किताबे पढते है? भाई ने लिख भेजा कि उसका एक साथी 'दिल्ली का दलाल' नामक किताब पढ रहा है। वह किताब श्री पाडेय बेचन शर्मा उग्रजी की लिखी हुई थी। मैंने उसे मँगाया और युवको के लिए उसे आपत्तिजनक समझा। उसके बाद उग्रजी की चाकलेट नामक पुस्तक भी मँगाई जो अप्राकृतिक दुराचारो के बारे मे थी। तत्पश्चात् अश्लील साहित्य की अन्य किताबें भी मँगाकर पढ़ी जिनमे 'अबलाओ का इसाफ' नामक पुस्तक भी थी जो श्री रामगोपाल मेहता की लिखी हुई थी। दिल्ली

के श्री ऋषभचरण जैन की भी एक पुस्तक थी। उन पुस्तको मे अनाचारो का बडा मनमोहक वर्णन किया गया था जिसे पढकर हमे रूस के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक चेखव की एक कहानी की याद आ गयी। एक बडे नगर से 15-20 मील दूर एकान्त स्थल पर एक तपस्वी साधु अपने शिष्यो के साथ रहा करता था। एक दिन शहर से एक सज्जन पधारे और साधु जी की सेवा मे उन्होने निवेदन किया, "आप लोग तो सब प्रलोभनो से दूर रहते हैं, इसलिए आपको क्या पता कि हम लोग दुराचारो के किस चक्कर मे फँसे हुए हैं। आप एक बार चलकर हमे देखें और उपाय बतलायें ताकि हमारा उद्धार हो सके।" साधु जी का हृदय द्रवित हो गया और वह पैदल चलकर शहर पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होने जो कामोद्दीपक दृश्य देखे उनसे वह घबरा गये और भागते हुए अपने आश्रम को लौट आये। वहाँ पहुँचकर उन्होने अपने को एक कमरे मे बन्द कर लिया और फूट-फूटकर रोने लगे। शिष्यो के बहुत अनुनय-विनय पर उन्होने कमरे का दरवाजा खोला। बहुत आग्रह करने पर नगर मे देखे दृश्यो का मनमोहक वर्णन भी कर दिया। चरित्रहीन स्त्रियो के सौन्दर्य और शराब इत्यादि का वर्णन इतना उद्दीपक था कि उसे सुनकर गुरुजी के तमाम शिष्य आश्रम छोडकर शहर को भाग गये। दरअसल दुराचारो का मनोहर वर्णन स्वय उत्तेजक ही होता है। स्वय प्रेमचन्द ने इस विषय की चर्चा करते हुए लिखा था, कि अगर कोई चोर लिखने लगे कि उसने ताला इस तरकीब से तोडा तो पढ़ने वाले उस तरकीब को जान जाएँगे। हिन्दी के अनेक लेखको ने मेरे आन्दोलन का समर्थन किया था और गोरखपुर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने तो इस विषय पर मेरे प्रस्ताव को स्वीकृत ही कर दिया था।

लोगो का यह भ्रम था कि मेरा आन्दोलन केवल 'चाकलेट' के विरोध मे था। चाकलेट मे दिये हुए कुछ वाक्यो ने मुझे उत्तेजित अवश्य कर दिया था। इसमे एक जगह किसी के मुँह से कहलाया गया था कि महाकवि तुलसीदास ने भगवान राम की बाल्यावस्था का जो वर्णन किया है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी अप्राकृतिक दुराचार के प्रेमी थे। इस बीभत्स कल्पना के विषय मे क्या कहा जाये। चाकलेट के विषय मे मैंने एक लेख अग्रेजी मे लिखकर महात्मा गाधीजी के 'यग इण्डिया' के लिए भेज दिया और साथ मे पुस्तक भी भेज दी। महात्मा जी ने लेख छापने को दे दिया और तत्पश्चात् चाकलेट पुस्तक भी पढ ली। पढ लेने के बाद उन्होने मुझे एक पत्र भी लिखा था।

मुझ पर यह एतराज किया जाता है कि मैंने उस पत्र को तभी क्यो नहीं छापा? मैंने इस आक्षेप का उत्तर तभी विस्तार से दे दिया था। महात्मा जी के उस पत्र के बाद मैं अश्लील साहित्य विषयक सम्पूर्ण सामग्री लेकर उनकी सेवा मे उपस्थित भी हुआ था और एक घटे-भर तक इस विषय की चर्चा उनसे हुई थी। बापू ने मुझसे कहा था, "जो कुछ कहना हो, घण्टे-भर मे कह दो। जो आदमी एक घण्टे मे अपनी बात नही कह सकता, वह जिन्दगी-भर मे भी नही कह पायेगा।" मैंने अपने द्वारा सग्रह किये हुए गन्दे साहित्य का परनाला ही खोल दिया। 'माधुरी' मे किसी स्त्री का एक रगीन चित्र छपा था जो झूला झूल रही थी। उसके नीचे एक कविता भी छपी थी जिसमे कहा गया था कि "रति विपरीत की पुनीत परिपाटी" इत्यादि। महात्मा जी ने उसका अर्थ मुझसे पूछा। मैंने कहा कि इतना गन्दा है कि मैं आपको समझा नही सकता। स्व० कृष्णकान्त मालवीय जी की एक पुस्तक थी जिसका नाम था 'सुहागरात'। उस पुस्तक का एक वाक्य था, "ससार-भर की स्त्रियो के मद-भजन का उपाय यह है कि अश्विनी मुद्रा सिद्ध की जाये।" एक जगह अन्यत्र उसी पुस्तक मे 'रतिमल्लता' प्राप्त करने के उपाय बताये गये थे। महात्मा जी ने उन अशो को सुनकर पूछा, "यह पुस्तक किसकी लिखी हुई है?" मैंने कहा, "कृष्णकान्त मालवीय जी की।" महात्मा जी ने पूछा, "इनको सम्मेलन

का मंत्री किसने बनाया।" मैंने कहा, "बनाने वालो मे तो मैं भी था।" महात्मा जी ने कहा, "पुस्तक को छोड जाओ। मैं कृष्णकान्त को लिखूंगा।" बातचीत समाप्त होने के बाद महात्मा जी ने कहा, "तुम आ गये, यह ठीक किया। तुम्हारे आने से मुझे पता लग गया कि हिन्दी मे कितना गन्दा साहित्य निकल रहा है। तुम न आते तो मैं भ्रम मे कुछ का कुछ लिख देता।" चाकलेट पर दी गयी, महात्मा जी की सम्मति पर मैंने कोई बातचीत नही की थी। यदि मैं महात्मा जी के उस पत्र को छापता तो प्रसगवश मुझे सारी बातचीत लिखनी पडती। इस कारण मैंने उसे तब रोक लिया था। उसके दो तीन वर्ष बाद स्वय मैंने ही महात्मा जी के उस पत्र को छपाया था। यदि मैं उसे गोपनीय रखना चाहता तो छपाता ही क्यो। स्व० भाई अशोक जी ने अपने एक लेख मे लिखा था, "एक पुराने बस्ते मे उग्र जी पुराना जूता लिए रहते थे और कहते थे कि यदि चौबे जी मिल जायें तो इसका मजा उन्हे चखा दूं।" उग्र जी की चाकलेट नामक पुस्तक को अन्य प्रतिष्ठित लेखको ने पढ़ा था और उसे आक्षेप योग्य भी पाया था। घासलेटी साहित्य विरोधी आन्दोलन की समीक्षा करते हुए तत्कालीन स्थिति को भी ध्यान मे रखना जरूरी है। विलायत मे अब अप्राकृतिक अनाचार दण्डनीय नही रहा है। उस समय तो सुप्रसिद्ध लेखक आस्कर वाइल्ड को इसी अपराध मे जेल हो गयी थी। 'अबलाओ का इसाफ' नामक पुस्तक मैंने बगाली भाषा के सुप्रसिद्ध आलोचक स्व० सजनीकान्त दास, सहकारी सम्पादक प्रवासी को पढने को दी थी, उसे पढकर लौटाते हुए उन्होने कहा था, "अश्लील साहित्य तो हमारी बगला भाषा मे भी है पर हिन्दी साहित्य के अश्लील साहित्य के मुकाबले तो वह पूर्ण ब्रह्मचर्य है।"

पचास वर्ष पहले के मुकाबले मे हिन्दी जगत् मे अश्लील साहित्य का प्रकाशन बहुत ज्यादा हो गया है और आन्दोलनो द्वारा उसे रोका नही जा सकता। केवल सरकार ही कठोर नियत्रण द्वारा उसकी रोकथाम कर सकती है। इस विषय मे मुझे अपनी रूस यात्रा की एक घटना याद आती है। मास्को के एक रूसी पत्रकार से, जो अग्रेजी पत्रिका का सम्पादन कर रहे थे, बातचीत करते हुए मैने कहा, "हमने सुना है कि आपके देश मे फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन (वाणी की स्वाधीनता) नही है।" उसका उत्तर उन सम्पादक महोदय ने बडे तपाक से देते हुए कहा, "सुनिये जनाब, जो समाज व्यवस्था हमने अपने देश मे लाखो आदमियो के बलिदान के बाद कायम की है, यदि आप उसका विरोध करेंगे तो हम आपको ऐसा नही करने देंगे और यदि आप अश्लील साहित्य छापेंगे तो हम आपको दबोच देंगे।" उनके शब्द थे—वी विल कम डाउन अपॉन यू। जब तक भारतवर्ष मे ऐसी समाज व्यवस्था कायम नही हो जाती कि गन्दे साहित्य के प्रकाशको को टटकर दबोच दिया जाये, तब तक यहाँ गन्दा साहित्य बिकता ही रहेगा।

19

जब मुझे कविता का शौक चर्राया

अंग्रेजी मे एक कहावत है, 'ए पोएट हैज डाइड यग इन एवरी वन' अर्थात् युवावस्था मे प्रत्येक व्यक्ति मे कवित्व के भाव उत्पन्न होते है, जो आगे चलकर नष्ट हो जाते है। मेरे मामले मे भी ऐसा ही हुआ।

मैट्रिक क्लास मे ही, जब मैं 17-18 वर्ष का था, मेरे मन मे कविता करने की धुन सवार हुई। 'सरस्वती' उन दिनो हिन्दी जगत की प्रतिष्ठित पत्रिका थी और मैंने हितोपदेश की एक कहानी का कविता मे अनुवाद कर उसे सरस्वती सम्पादक श्री द्विवेदी जी को भेज दिया। अपना नाम देने के बजाय मैने अपनी छोटी बहिन राधा का नाम कविता पर लिख दिया था। पूज्य द्विवेदी शायद मेरी चालाकी को ताड गये थे। उन्होने राधा देवी के बारे मे अनेक प्रश्न पूछे। गर्ज़ यह कि मेरा प्रयत्न असफल रहा।

मैने एक अन्य कविता कुँवर हनुमतसिंह रघुवशी, सम्पादक 'स्वदेश-बान्धव' को भेजी और उन्होने भी उसे अस्वीकार कर दिया, यह अच्छा ही हुआ। नही तो साहित्य मे एक थर्ड क्लास कवि की वृद्धि और हो गयी होती। फिर भी कविता करने की जो बीमारी मुझे लगी थी वह जड से नष्ट नही हुई। मैं कभी-कभी तुकबन्दी करता ही रहा।

कलकत्ते मे एक बार कवि सम्मेलन हुआ। उसमे समस्या थी, 'छाए हैं'। मैंने उसकी पूर्ति इस प्रकार की—

"पावत न जोग सजोग सम्पादन को
मेरे प्राण प्यारे सम्पादक कहाए हैं।
प्रूफ पढिबे मे प्रेम पाती बन्द कीनी हाय।
रगे अखबार घर खबर भुलाए है।
विरह व्यथा ते हा तो तार को कुतार भयो
तार पढ़िबे मे भरतार भरमाए हैं।
प्राण काढ़िबे को पापी पावस पपीहा आए
पत्र काढ़िबे को परदेश पिया छाए हैं।

इसमे तृतीय पक्ति (चरण) स्व० भाई मदनलाल चतुर्वेदी, जो कलकत्ते के लोकमान्य के सम्पादक थे, द्वारा सशोधित है। कवि सम्मेलन मे कविता काफ़ी पसन्द की गयी थी।

वसन्त के अवसर पर ओरछा राज्य मे नर्तकियो द्वारा नृत्य-गान हुआ करते थे, एक दिन महाराज वीरसिंह जूदेव ने कहा, "चौबे जी। आप हमारे मदनोत्सव मे पधारिये। मैं गाडी भेज दूँगा।" मैं टीकमगढ से साढ़े तीन मील दूर रहता था। गाडी आने पर मैं टीकमगढ पहुँचा। नर्तकियो का नाच इससे पहले जिन्दगी मे कभी नही देखा था। उस उत्सव मे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरणजी तथा मुशी अजमेरी जी भी उपस्थित थे। रात को एक बजे तक बडे मनमोहक नाच-गाने होते रहे। फिर हम लोग विश्राम के लिए चले गये। मुझे ठीक तरह नीद नही आयी और चार बजे ही जग गया। फिर गुनगुनाते-गुनगुनाते एक कविता लिख डाली जिसका तृतीय चरण मुझसे पूरा नही हो पाया था। पाँच बजे मैं राष्ट्रकवि के तम्बू मे गया। वह और सियाराम शरण सोये हुए थे, पर मुशी जी जाग रहे थे। उन्होने पूछा, "चौबे जी इतनी जल्दी कैसे आये ?" मैंने कहा, "एक गुस्ताखी मैने की है—एक तुकबन्दी कर डाली है, सशोधन कराना चाहता हूँ।" उन्होंने कहा, "सुनाओ।"

मैंने वह रचना 'ओरछेश' को सम्बोन्धित की थी। वह इस प्रकार है—

"साँची ही कहौंगे चाहे चुगल चबाब करे,
होगो जग जाहिर 'नरेश' सदा सच्चा मैं।
रिसि मुनि चूके अस चूके चतुरामन हूँ,
अचरज कहा जो सिद्ध भयो कछु कच्चा मैं।
चार छन माँहि अभिमान भयो चूर-चूर,
× × ×
प्रबल उमग भयो ब्रह्मचर्य भग भयो
डूब गयो चौबे रस रग के चबच्चा मे।"

मैंने मुशी जी को अधूरी कविता सुना दी और कहा कि तीसरा चरण मुझसे पूरा नही हुआ, आप पूरा कर दीजिए। मुशी जी ने तुरन्त ही उसे पूरा करते हुए कहा, "आप यो लिखिए—

"चन्द्रमुखी नैन सैन खायो एक दच्चा मैं।"

अपनी यह तुकबन्दी जब मैंने महाराज साहब को सुनायी तो वह बहुत प्रसन्न हुए और कहा, "इसे प्राइवेट ही रखिये और कवि सम्मेलन मे न सुनाइये।"

मै कलकत्ते मे प्रात काल ईडन गार्डन मे जाया करता था और वहाँ तालाब के किनारे बैठकर लेख इत्यादि लिखा करता था। उस प्रसग की एक कविता मैने की थी, जो अधूरी ही रह गयी है। उस तुकबन्दी की अन्तिम पक्तियाँ इस प्रकार की थी—

गोरी-गोरी गोरियो की नौका केलि क्रीडा देख
तप भग भयभीत लेखक विचारा है।
मदन मनोहर के साधन जुटे है जहाँ,
अदम बगीचा बीच आसन हमारा है।"

एक तुकबन्दी मैंने अपनी विकासोन्मुख साहित्यिक रुचि के विषय मे भी की थी। मैं पहले श्रीधर पाठक का प्रशसक रहा फिर सत्यनारायण कविरत्न, तत्पश्चात् मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर जी तथा बच्चन जी का। किसी एक कवि का अन्ध भक्त मैं कभी भी नही रहा। मेरी तुकबन्दी यह है

"रस एक का लेकर दूसरे से, मनभावनी यो मन मे मचली।
नित प्रेमी नवीन बनाती रही, फिर भी यह रही चुनरी उजली।
कली प्रेम मे ही मदमाती रही, मँडराते रहे यहाँ अनेकों अली।
अली एक की होके रहूँगी न मैं, शुचि साहित मे परकीया भली।"

इस सवैया मे 'शुचि साहित' शब्द राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त द्वारा सशोधन मे रखा गया है।

और भी अनेक तुकबन्दियाँ मैंने की थीं, जिन्हें मैं भूल गया। केवल एकाध याद रह गयी है, जैसे—

निरन्तर करते रहना दान, इसी को कहते हैं जीवन
बुढापा कजूसी का नाम, भला फिर क्यो जोडूँ मैं धन।
लुटाऊँ दोनो हाथो से, मिलें गर मुझको कुछ साधन,
करूँ अनगिनती परोपकार जगत मे बुरा हिसाबी पन॥

एक कविता अराजकवाद पर भी है जो किसी ग्रन्थ की भूमिका मे छपी है।

एक तुकबन्दी मैंने 9 जनवरी, सन् '32 मे अपनी स्वर्गीय पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष बाद की थी, वह इस प्रकार है—

"जीवन बसन्त की अवाई आज देखो पिये
स्वागत करे को, कूकि कोकिला सुनावो तुम।
आशा लता लहरें, मन सुमन प्रफुल्लित हो,
आली बनि माली बिन्हे सफल सजावो तुम।
जस की जुही की गन्ध जग मे पसारिबे को,
हीतल कर सीतल समीर सरसावो तुम।
जो पै छरछन्द मे न कविता ह्वै आतो देवि,
जीवन उद्यान माँहि सविता ह्वै आवो तुम।
प्रेम रस प्यासे भटकत, फिरौ चाहे जितै,
भावन के भूखे, वस म्हो की हो खाओगे।
सूखि जैहै सरिता, सरोवर विलीन ह्वै हैं,
जीवन की आस लै जितै ही तुम जाओगे।
मारग अकेले मे दुकेले अब ह्वै हो नाँहि,
साथी विधुर को कहूँ खोज हू न पाओगे।
व्याकुलता त्यागी मनी राम धीर धारौ अब,
सूखे रसहीन वृथा वासर बिताओगे।"

मेरी अराजकवाद सम्बन्धी कविता श्री बसन्तसिंह भृग के काव्य ग्रन्थ 'बढ़ते चरण थिरकते पाँव' की भूमिका मे भी लिखी गयी थी। उसके कुछ पद्य ये थे—

"हम को न चाहिए एक वृक्ष, चाहे वह हो विस्तृत बटका।
जो थोडो को आश्रय दे दे औ' बने शेष के हित खटका॥

हम वन उपवन के प्रेमी हैं, जो एक नहीं होवें हजार।
हम नही चाहते हैं रक्षक चाहे वह कितना हो उदार।।
हम चिडियो सम चहकें स्वतन्त्र, हो नहीं किसी का भी बन्धन।
है आजादी का अर्थ नही, सय्यादो का कुछ परिवर्तन।।
उन भोले भाले श्रमिको से, जो शासक मे करते यकीन।
मैं कहता हूँ यो जान-बूझ, बनते जाते क्यो पराधीन।।
जब तक शासक सय्याद रहे, तब तक उजडेंगे ही उपवन।
फिर फिर ये अकुर ठूँठ बने, हो नष्ट हमारे तन मन धन।।
हम सिहो सम विचरें स्वतन्त्र, पर घृणित चीज ये सिंहासन।
जो मनुज भेड निर्माण करे, हैं निन्दनीय वे सब शासन।।

शासन के दुश्मन बने, करें निज शासन।
सिहत्व चाहिए हमे, नही सिहासन।।"

20

बुन्देलखण्ड में साढ़े चौदह वर्ष

महाकवि रहीम ने कहा था—

"चित्रकूट मे रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जिहि पर बिपदा परति है, सो आवत इहि देस ॥"

रहीम की यह उक्ति, कि जिस पर आपत्ति पड़ती है, वह इस देश मे आता है, मेरे ऊपर पूर्णत चरितार्थ हुई थी। सन् 1935-36 मे कलकत्ते मे रहते हुए मेरे जीवन मे दो दुर्घटनाएँ घटी थी—एक तो मेरे बहनाई कामता प्रसाद जी का स्वर्गवास और दूसरा मेरे अनुज रामनारायण का देहान्त। स्वभावत मैं अत्यन्त दुखित था। अकस्मात् उन्ही दिनो, शायद सन् 1936 मे ओरछा नरेश श्री वीरसिंह जू देव कलकत्ते पधारे। शिकार के लिए वे आसाम जा रहे थे और रास्ते मे रुकते हुए मुझसे मिलने चले आए। मेरा मकान चौथे तल्ले पर था। महाराज कष्ट करके वहाँ पहुँचे और उससे मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे पूछा, "कैसे कृपा की ?" उन्होने उत्तर दिया, "मैं तुमसे एक प्रार्थना करने आया हूँ। तुम कलकत्ता छोडकर टीकमगढ चलो। यहाँ दो दुर्घटनाएँ घट चुकी हैं और अगर तुम यहाँ रहे तो तुम्हारी भी खैर नही।" मैंने कुछ मजाक मे और कुछ गम्भीरता से उत्तर दिया कि, "क्या टीकमगढ मे पपीते मिलते है ?" महाराज ने हँसकर कहा, "चाहे जितने पपीते खाना। पपीते, अमरूद, आम और जामुनो की वहाँ भरमार है।" बात यह थी कि उन दिनो मुझे पपीता खाने का शौक था।

13 अक्तूबर, सन् 1937 को मैं टीकमगढ पहुँचा और महाराजा साहब ने अपने सहपाठी सज्जनसिंह से कहा, "चौबे जी को कोठियाँ दिखला दो और जहाँ यह पसन्द करे वही इनके रहने का प्रबन्ध कर दो।" मुझे नदी किनारे वाली कोठी, जो कि 40 फीट ऊँची चट्टान पर बनी हुई थी, जिसके नीचे जमडार नदी का जलप्रपात था, पसन्द आई। मैं कुण्डेश्वर मे साढे चौदह वर्ष रहा, और वे मेरे जीवन के सर्वोत्तम वर्ष थे।

मैं प्रारम्भ ही मे दो बातें स्वीकार कर लेना चाहता हूँ—पहली बात तो यह है कि मैं बुन्देलखण्ड का इतना ऋणी हूँ कि उसके बारे मे तटस्थ वृत्ति से मैं कुछ नही कह सकता। मैंने साढे चौदह वर्ष बुन्देलखण्ड का नमक खाया है और आज भी वहाँ से पेंशन पा रहा हूँ। कृतज्ञता के भाव से मैं इतना प्रभावित हूँ कि मैं वहाँ के निवासियो के कोई दोष देख भी नही सकता। दूसरी बात यह है कि मैं साढ़े चौदह वर्ष मे भी बुन्देलखण्डी नही बन सका। मैं एक महल मे रहता था और मेरे रहन-सहन का स्टैण्डर्ड बहुत ऊँचा था। एक बार

श्रद्धेय वियोगी हरि जी ने मुझसे पूछा, "क्या आपने कोदी की रोटी खाई है या महुआ की मिठाई ?" जब मैंने नकारात्मक उत्तर दिया तो वह बोले, "तो आप बुन्देलखण्डी नहीं हैं।" वियोगी हरि जी का कथन सर्वथा सत्य था।

यद्यपि बुन्देली के साहित्य और उक्त जनपद की संस्कृति का विशेष अध्ययन मैं नही कर सका तो भी उस प्रदेश के कवियों, लेखकों और कार्यकर्ताओं के निकट सम्पर्क में मैं आ सका, इस प्रकार मैंने बुन्देलखण्ड की आत्मा के दर्शन कर लिए। आखिर साहित्य तथा सस्कृति का स्रोत तो अध्ययन मे ही है। रूस के सुप्रसिद्ध लेखक मैक्सिम गोर्की ने कहा था "प्रत्येक जनपद की एक अलग आत्मा होती है", और बुन्देलखण्ड की भी एक अलग आत्मा है। मेरा यह परम सौभाग्य था कि मुझे निकट से महाराज ओरछा से लेकर छोटे-छोटे कार्यकर्ताओ को जानने-पहिचानने का मौका मिला। मुझे यह देखकर हार्दिक दुख हुआ कि जहाँ प्रकृति माता ने बुन्देलखण्ड को इतना दिया है, सौन्दर्य बिखेरा है वहाँ पुरुष इतना छोटा और बौना क्यो रह गया है ? कारण यह हुआ कि बुन्दलेखण्ड छोटी-छोटी रियासतो मे विभाजित हो गया और अन्य प्रदेशो के जो शासक वहाँ पहुँचे, उनमे इतनी कल्पना-शक्ति नही थी कि वे उसे अपना सर्वोत्तम अर्पित कर सकते।

बुन्देलखण्ड के दो लेखको मे मैंने अद्भुत मिशनरी भावना के दर्शन किये थे। एक थे स्व० कृष्ण बलदेव वर्मा और दूसरे स्व० गौरी शकर द्विवेदी। अपने जनपद को गौरव प्रदान करने का कोई अवसर वह अपने हाथ से नही जाने देते थे। उनकी स्मृति-रक्षा यदि किसी ने की तो वह थे उनके भतीजे स्व० ब्रजमोहन वर्मा जिन्होने 'विशाल भारत' मे मेरे साथ नौ वर्ष काम किया था। हम लोग इस बात को भी भूल गये हैं कि 'विश्वमित्र' के सचालक और सम्पादक स्व० मूलचन्द्र अग्रवाल बुन्देलखण्ड के ही थे। स्व० नाथूराम माहौर जी भी मुझ पर कृपा करते थे।

बडे भैया वृन्दावनलाल वर्मा और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण जी गुप्त, इन दोनो ने अखिल भारतीय कीर्ति प्राप्त की थी। यद्यपि सियारामशरण गुप्त, घासीराम जी व्यास भी इसके पूर्ण अधिकारी थे। सबसे बडी दुर्घटना बुन्देलखण्ड मे यह हुई कि वहाँ साधन-सम्पन्न व्यक्तियो की बहुत कमी रही है। महाराज वीरसिंह जू देव के चले जाने पर तो साहित्य क्षेत्र का एक महासरक्षक ही उठ गया। स्वर्गीय रसिकेन्द्र जी तथा स्वर्गीय व्यास जी, इन दोनो ने अपने पत्रो मे मुझे लिखा था कि अपनो से उन्हे वह प्रोत्साहन नही मिला जो मिलना चाहिए था।

गुप्त बन्धुओ की कृपा से चिरगाँव एक साहित्यिक तीर्थ बन गया था। और महाराज वीरसिंह जू देव की सहायता से कुण्डेश्वर को भी कुछ गौरव प्राप्त हुआ था। आचार्य विनोबाजी, राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू, आचार्य क्षितिमोहन सेन, प० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी, श्रद्धेय काका कालेलकर, द्वारिका प्रसाद जी मिश्र, रामनरेश त्रिपाठी, बाबू गोविन्द दास जी, श्री सोहनलाल द्विवेदी, हरिशकर शर्मा, श्रीराम शर्मा इत्यादि वहाँ पधारे थे।

इनके अतिरिक्त कुण्डेश्वर के वसन्तोत्सवो पर अनेक प्रतिष्ठित कवि आया ही करते थे, अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की माताजी दो बार वहाँ पधारी थी और उनके साथ सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगवानदास माहौर तथा सदाशिवराव भी थे। महाराज ओरछा ने पाँच-छः कवियो को वृत्ति देकर राज्याश्रय प्रदान किया था, वे थे—स्व० ब्रजेशजी, मुशी अजमेरी जी, अबिकेश जी, रामाधीन खरे इत्यादि। मुशी अजमेरी जी तो बुन्देलखण्डी मे मधुर कविता कर लेते थे और कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'स्मरण' नामक पुस्तिका का

उन्होंने बुन्देली-मिश्रित ब्रजभाषा में अनुवाद किया था। दुःख की बात यही रही कि उन्हें अपनी आजीविका के लिए यत्र-तत्र भटकना पडा और वह अपना पूरा-पूरा समय साहित्य को न दे सके। पर जो कुछ उन्होंने लिखा, वह उच्चकोटि का है।

आजकल अनेक बुन्देलखण्डी कवि और लेखक प्रशसनीय कार्य कर रहे हैं। कविवर रामचरण हयारण मित्र ने बुन्देलखण्डी मे बडी कविताएँ की हैं और अपने गुरुवर घासीराम व्यास की कीर्ति-रक्षा भी की है। बन्धुवर सेवकेन्द्र जी ब्रजभाषा के सुकवि हैं और आचार्य श्री श्यामसुन्दर बादल ने फाग साहित्य पर बडा शोध-पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया है। अजयगढ़ के श्री अम्बिका प्रसाद दिव्य बडे परिश्रम-पूर्वक निरन्तर साहित्य सेवा करते रहते है। दुर्गेश दीक्षित प्रकाश सक्सेना अच्छा लिख लेते है। साढे चौदह वर्ष तक बुन्देलखण्ड मे रहने पर मुझसे जो थोडी-बहुत साहित्य सेवा बन पडी थी उसका उल्लेख करना मुझे ठीक नही जचता। वहाँ जो कुछ कार्य हुआ उसके अधिकाश का श्रेय मेरे सहयोगियो को है। श्री कृष्णानन्द जी गुप्त अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखते थे पर श्री यशपाल जैन और श्री जगदीश चतुर्वेदी मेरे सहायक और सहयोगी थे। नाथूराम प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ तो यशपाल ने ही तैयार किया था और 'मधुकर' का जनपद अक जगदीश जी ने निकाला था। कभी उत्तर प्रदेश पत्रकार सघ तथा अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सम्मेलन के कार्यालय कुण्डेश्वर मे ही थे और बुन्देलखण्ड प्रान्त निर्माण का आन्दोलन तो वही से प्रारम्भ हुआ था। उसके अध्यक्ष व्यौहार राजेन्द्रसिह जी वहाँ पधारे थे। सम्पूर्णानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ भी वही तैयार हुआ।



हरिशकर शर्मा एव श्रीराम शर्मा के साथ लेखक (मध्य मे)

अपने टीकमगढ़ निवास मे स्व० शोभाचन्द्र जोशी मुझे सबसे अधिक प्रतिभाशाली लेखक प्रतीत हुए। दुर्भाग्य से वह अधिक दिन जीवित नही रह सके। पर अपने रेखाचित्रो द्वारा उन्होने साहित्य क्षेत्र मे अच्छी कीर्ति प्राप्त कर ली थी। श्री चन्द्रदत्त पाण्डे भी अच्छा लिख लेते थे। श्री कृष्ण किशोर द्विवेदी ने वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् कार्यालय मे अच्छा साहित्यिक वातावरण उत्पन्न किया।

बुन्देलखण्ड ने हिन्दी साहित्य को महाकवि केशव पद्माकर तथा भूषण प्रदान किए थे और लोक-

कवियों में इनका नाम सर्वोच्च आता है । यह बड़े सौभाग्य की बात है कि झाँसी मे बुन्देलखण्ड यूनीवर्सिटी कायम हो गयी है और यदि वह चाहे तो बहुत काम कर सकती है।

सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि जो बुन्देली लेखक और कवि संघर्षमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं उन्हें सहायता और प्रोत्साहन प्रदान किया जाय। बन्धुवर गोविन्द गुप्त का 'वेतवा का जीवन चरित्र' तो शीघ्र ही छप जाना चाहिए। बँगला की एक कविता है—"सवार ऊपर मानुस आछे, तार ऊपर किछु नांइ।" यानी सबके ऊपर मनुष्य है और उसके ऊपर कुछ भी नही है। इस सिद्धान्त के अनुसार मैंने साहित्य क्षेत्र के कुछ मुख्य-मुख्य लेखको तथा कवियो का उल्लेख किया है। वे साहित्य तथा सस्कृति के स्रोत हैं और गगोत्री की गगा का गौरव कानपुर या हुगली गगा से लेशमात्र कम नही है। बुन्देली साहित्य तथा सस्कृति पर बन्धुवर हरिहर निवास द्विवेदी जैसे विद्वान् ही लिख सकते है।

बुन्देलखण्ड की साधारण जनता भी बहुत गरीब है। प्राचीन काल मे अगस्त्य ऋषि ने विंध्य को जो धोखा दिया था उसके अभिशाप से बुन्देलखण्ड अब भी मुक्त नही हुआ। जब तक वह प्रदेश अमर शहीद नारायण दास खरे तथा स्व० प्रेमनारायण खरे जैसे कार्यकर्ता उत्पन्न नही करता तब तक वहाँ साहित्य और सस्कृति के पौधे पनप नही सकते।

21

राज्यसभा में बारह वर्ष

सन् 1952 से 1964 तक पूरे बारह वर्ष मुझे राज्यसभा मे रहने का सौभाग्य अकस्मात् ही प्राप्त हो गया। सक्रिय राजनीति से मेरा कोई सम्बन्ध नही था और मैंने पार्लियामेण्ट का मेम्बर बनने की कल्पना स्वप्न मे भी नही की थी, उसके लिए प्रयत्न करना तो दूर रहा। 10 मार्च, सन् 1952 को होली थी और जब मेरे पास दिल्ली से तार पहुँचा, "आप कौसिल आफ स्टेट्स के लिए खडे हो जाइये।" तो मेरे मन मे ख्याल आया कि किसी ने होली का मजाक तो नही किया है। मैं डाकखाने मे साढे तीन मील दूर कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे रहता था। बन्धुवर चतुर्भुज पाठक तार लेकर मेरे पास पैदल आये थे। आते ही उन्होने कहा, "पहले आप यह वायदा कीजिये कि अस्वीकार नही करेंगे, तब तार आपको दिखलाया जायेगा।" मैंने मजाक मे पूछा, "आपने तार खोल कैसे लिया?" तब उन्होने वह तार मुझे दिया जिसे दिल्ली से विंध्य प्रदेश कांग्रेस के मुख्य कार्यकर्ता पडित शम्भू शुक्ल ने भेजा था।

राज्यसभा के सदस्य राज्य की एसेम्बली के मेम्बरो के द्वारा चुने जाते थे। मैं मेम्बरी के लिए खडा हो गया और सबसे अधिक मत भी मुझे मिले। बात दरअसल यह हुई थी कि विध्य प्रदेश कांग्रेस द्वारा श्री सुन्नू लाल नापित का नाम भेजा गया था। वह कांग्रेस पार्टी के एक प्रतिष्ठित कार्यकर्ता थे पर कवि के रूप मे उनके नाम की कोई प्रसिद्धि नही थी। जब सूची प० जवाहरलाल नेहरू के सामने पहुँची तो पण्डित जी ने उसे देखकर झुंझलाहट के साथ कहा, "क्या तुम्हारे यहाँ विंध्य प्रदेश मे कोई पढ़ा-लिखा आदमी नही है?" पण्डित जी के इस प्रश्न से विंध्य प्रदेश के नेता लोग चकरा गये और तब दतिया के श्री श्यामसुन्दर जी ने दरवाजे के बाहर खडे यह सलाह दी कि बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम भेज दिया जाय, क्योकि वह प्रसिद्ध हैं। ऐसा ही किया गया। जब मेरा नाम पण्डित जी के सामने पहुँचा तो उन्होंने कहा, "इज बनारसीदास स्टिल इन दि लैंड ऑफ लिविंग? ही हैड गॉन टू ईस्ट अफ्रीका विद मिसिज सरोजिनी नायडू?" अर्थात् "क्या पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी अब भी जीवितो के लोक मे है, वही जो श्रीमती सरोजिनी नायडू के साथ पूर्वी अफ्रीका गये थे?" इस पर श्रद्धेय श्री प्रकाश जी ने कहा, "चतुर्वेदी जी बहुत काम कर रहे है। आप नही जानते। वह टीकमगढ़ मे है।" श्रद्धेय टण्डन जी ने भी मेरे नाम का समर्थन कर दिया। मौलाना आजाद साहब ने भी, जो बोर्ड के सभापति थे और मेरे नाम से परिचित थे, स्वीकृति दे दी। इस प्रकार मेरा नाम चुन लिया गया। और चूंकि एसेम्बली मे कांग्रेसी मेम्बरो की सख्या अधिक थी, इसलिए मै चुनाव मे जीत भी गया। कांग्रेस

पार्टी के अतिरिक्त एक वोट मुझे हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि ठाकुर गोपालशरण सिंह के सुपुत्र ठाकुर सोमेश्वर सिंह का भी मिला था जो किसी अन्य पार्टी के सदस्य थे ।

चुनाव के लिए मुझे रीवां जाना पड़ा था जो उन दिनो विंध्य प्रदेश की राजधानी था । मार्ग व्यय में मेरे कुल जमा 30-35 रुपये खर्च हो गये थे। इस प्रकार संसद की सदस्यता मुझे अकस्मात् ही बिना किसी विशेष प्रयास के मिल गयी।

स्व० श्री प्रकाश जी ने स्वय ही यह किस्सा मुझे सुनाया था। चूँकि मैं उन दिनों अमर शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद की माता जी की पेंशन के लिए प्रयत्न कर रहा था और श्री प्रकाश जी को मैंने उनके बारे मे लिखा भी था इसलिए उन्होने मेरा ज़ोरदार समर्थन कर दिया । पूज्य टण्डन जी ने भी मुझसे मज़ाक मे कहा था, "तुम्हारे नाम का समर्थन मैंने किया और स्वामी केशवानन्द का भी क्योकि वह भी मेरी तरह दाढ़ी रखते हैं।" पार्लियामेण्टरी बोर्ड के सभापति मौलाना आज़ाद मेरे द्वारा प्रकाशित पुस्तिका 'हजरत मुहम्मद' की भूमिका 1934 मे लिख चुके थे और मुझे जानते थे। इस प्रकार यह घटना अकस्मात् ही घटित हो गयी ।[1]

पहली बार मैं 1952 से 58 तक मेम्बर रहा और दूसरी बार श्रद्धेय टण्डन जी की कृपा से फिर चुन लिया गया क्योकि उन्होने मुख्यमत्री कैलाशनाथ काटजू साहब तथा प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष को मेरे बारे मे लिख दिया था । राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू ने भी स्वत मुख्यमत्री काटजू साहब को इस बारे मे लिख दिया था। इस प्रकार राज्यसभा मे दुबारा जाने का अवसर मुझे मिल गया ।

राज्यसभा के कुछ सदस्य इस उद्देश्य से भी बनाये जाते हैं कि सरकार उनकी विशेषज्ञता से कुछ लाभ उठाये । मैं 60 वर्ष की उम्र मे पार्लियामेण्ट मे पहुँचा था और तब तक मेरे जीवन के उद्देश्य निश्चित हो चुके थे और ससदीय जीवन प्रारम्भ करने के लिए प्रश्न मेरे सामने नही था । ससद के वाद-विवादो मे मेरी कोई रुचि नही थी और 15-20 दिन के भीतर ही मेरा मन ऊब गया । इसके सिवाय क्रान्तिकारियो की सेवा तथा शहीदो का श्राद्ध मेरे जीवन के मिशन बन चुके थे । इसलिए मैंने इस दुर्लभ अवसर का उपयोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए करना ठीक समझा । प्रवासी भारतीयो का कार्य भी मैं थोड़ा-बहुत चलाता ही आ रहा था। ये प्रश्न दलगत राजनीति से ऊपर थे और मुझे सभी पार्टियो का सहयोग मिलता रहा ।

मेरे सौभाग्य से श्रीमन्नारायण जी उन दिनो कांग्रेस के महामन्त्री थे और उनसे मेरा घनिष्ठ परिचय भी था, क्योकि उनकी ननसाल फीरोज़ाबाद मे ही थी। एक दिन उनके निवास पर पहुँचकर यह निवेदन कर दिया कि मैं अपने घर पर सभी पार्टियो के सदस्यो को निमत्रित करता रहूँगा क्योकि मेरे विषय दलगत राजनीति से ऊपर हैं, और सबका सहयोग मुझे अपेक्षित है। मेरे बारे मे गलतफहमी न हो इसलिए मैंने यह बात स्पष्ट कर दी है। श्रीमन्नारायण जी ने सहर्ष मेरे प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और कहा, "आप निश्चितता से अपना काम करते रहिए। आपके बारे मे कोई गलतफहमी हमारे मन मे नही है।"

मेरी एक भयंकर भूल

मौलाना आज़ाद ने जो साहित्य-अकादमी कायम की थी उसकी प्रबन्ध-समिति मे उन्होने मेरा नाम दे दिया था । श्रद्धेय राधाकृष्णन जी उसके प्रधान थे। एक दिन उन्होने अकस्मात् मुझसे पूछा, "क्या

1 बुन्देलखण्ड के युवा कांग्रेस कार्यकर्त्ताओ ने एक दिन पहले 15, विंडसर प्लेस, नयी दिल्ली में इस प्रस्ताव की चर्चा की थी।

कारण है कि आप राज्यसभा मे नही दीख पड़ते" राधाकृष्णन जी राज्यसभा के अध्यक्ष थे और उनका यह प्रश्न सर्वथा उचित और सही भी था। मैंने उत्तर दिया, "मैं घर पर कुछ काम करता रहता हूँ।" इस पर राधाकृष्णन जी ने कहा, "देअर आर इपोर्टेंट स्पीचिज इन राज्यसभा।" (राज्यसभा मे कुछ आवश्यक भाषण होते हैं)। इस पर मैंने नासमझी से उत्तर दे दिया, "आई हैव मोर इपोर्टेंट वर्क टू डू एट होम। (मुझे घर पर इससे भी आवश्यक काम करने होते हैं।) मेरा यह उत्तर मूर्खतापूर्ण था। क्योंकि दरअसल किसी सासद का प्रथम कर्त्तव्य ससद के प्रति ही है। मेरा कथन सर्वथा अनुचित ही था। यद्यपि पार्टी से अनुमति लेकर ही मैं घर पर शहीदो का काम किया करता था।



प्रसिद्ध क्रान्तिकारी डॉ० खानखोजे के साथ लेखक

मैं प्रातकाल चार बजे उठकर अपना कार्य शुरू कर देता था। एक घण्टे टहलकर ग्यारह बजे निवृत्त हो जाने पर मुझमे इतनी शक्ति ही शेष नही रहती थी कि मैं पार्लियामेण्ट जा सकूँ। शाम के वक्त कभी-कभी वहाँ पहुँचकर हस्ताक्षर कर आता था। हमारी कांग्रेस पार्टी के सदस्यो की संख्या इतनी अधिक थी कि 2-4 मेम्बरो की गैरहाजिरी से कुछ अन्तर नही पड़ता था। हाँ, पार्टी की ओर से यह शर्त अवश्य रख दी गयी थी कि जब दो-तिहाई वोटो की जरूरत पार्टी को पड़ेगी तो फोन करके मुझे बुला लिया जायेगा। शहीदो और क्रान्तिकारियो के विषय मे जो 20-21 ग्रन्थ तथा विशेषाक मै निकाल सका उसका श्रेय पार्टी की उदारता को ही मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त नयी दिल्ली मे मैने हिन्दी भवन की भी स्थापना कर दी थी और निरन्तर ग्यारह वर्ष तक उसका भी काम मैंने किया था। आदरणीय बहिन सत्यवती मलिक उसकी मत्री थी और मैं प्रधान। सस्था-सचालन की कठिनाइयो का तब मुझे भरपूर अनुभव हुआ। ग्यारह वर्ष मे कम से कम साढ़े तीन हजार रुपये मुझे गाँठ से हिन्दी भवन के लिए खर्च करने पडे, और बहुत-सा समय देना पड़ा, सो अलग। जब श्रमजीवी पत्रकारो का प्रश्न पार्लियामेण्ट के सामने आया था तब मुझे विशेष परिश्रम करना पड़ा था क्योकि मैं अखिल भारतीय श्रमजीवी पत्रकार सघ का सभापति था और पत्रकारो के सगठन से मेरा भी घनिष्ठ सम्बन्ध था।

मैं इस बात को मानता हूँ कि पार्लियामेण्ट के मेम्बर की दृष्टि से मैं सफल नही रहा पर उन बारह वर्षों मे जो साहित्यिक तथा सास्कृतिक कार्य सर्वथा नि स्वार्थभाव से मेरे द्वारा बन पडे, वे निष्फल नही गये। अपने दिल्ली प्रवास मे मैं सस्ता साहित्य मण्डल, आत्माराम एण्ड सन्स, तथा भारतीय ज्ञानपीठ के निकट सम्पर्क मे आ सका, जो मेरे लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। इन सस्थाओ ने मेरे ग्रन्थों को छापा और उनसे मेरे व्यक्तित्व के विकास मे बड़ी सहायता मिली।

मेरा निवास स्थान, 99 नार्थ एवेन्यू, एक केन्द्र-सा बन गया था। कितने ही प्रतिष्ठित व्यक्ति वहाँ पधारा करते थे। राजा महेन्द्र प्रताप, डॉ० खानखोजे (क्रान्तिकारी), वामनदत्तोपोद्दार (इतिहासवेत्ता), शान्ति-नारायण भटनागर (सस्थापक, उर्दू स्वराज्य), आशुतोष लाहिडी (हिन्दू महासभा), वेदमूर्ति सातवलेकर जी इत्यादि ने मेरे यहाँ पधारने की कृपा की थी। अनेक रूसी विद्वान् भी पधारे थे और सीमा प्रान्त के श्री अमीरचन्द बम्बवाल का प्राय आगमन होता था। साम्यवादियो से तो मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था ही।

नयी दिल्ली मे जो कुछ मैंने कमाया उसे वही खर्च कर दिया और नकद 1346 रुपये लेकर मैं सन् 1964 मे घर लौटा जिनमे एक हज़ार रुपये भाई सीताराम सेकसरिया द्वारा दिये गये थे। आर्थिक दृष्टि से मैंने कभी विचार नही किया और मै उसे कोई महत्त्व भी नही देता। नयी दिल्ली मे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि दिनकर, कविवर बच्चन जी, डॉ० केमकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' इत्यादि से प्राय मिलना-जुलना रहता था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हमारे देश की प्रथम ससद मे सयोगवश अनेक लब्धप्रतिष्ठ साहित्य सेवियो का सगम हो गया था। वैसा बानक अब शायद ही कभी बने ! स्वामी केशवानन्द जैसे सन्यासी अब देश मे होना दुर्लभ है। उन्होने अपनी सस्थाओ के लिए पचास लाख रुपया इकट्ठा किया था, जबकि वह अपने ऊपर बहुत ही कम खर्च करते थे। मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया बन्धुवर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की सहृदयता ने। यद्यपि वह उम्र मे मुझसे पाँच वर्ष छोटे थे तथापि उनका मुझ पर पूरा-पूरा कण्ट्रोल रहता था। उनका आदेश था कि मुझे नित्य प्रति शेव करके स्वच्छ कपडो मे ही पार्लियामेण्ट मे पहुँचना चाहिए। केसकर साहब 'विशाल भारत' के पुराने लेखक थे और उन्होने अपने विभाग (सूचना-विभाग) की ओर से एक टाइपिस्ट की सुविधा मेरे लिए उपलब्ध कर दी थी और मेरा नाम 'आजकल' के सम्पादक मण्डल मे दे दिया था। भाई जयकृष्ण जी टाइपिस्ट से मेरे कार्य मे मुझे बडी मदद मिली थी। हिन्दी भवन के कार्य मे बन्धुवर राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह से बहुत सहयोग मिला था। ससद के सदस्यो को एक कमरा सेवा के लिए मिला करता था। मेरा कमरा स्व० रामधन तथा साथी शिवनारायण श्रीवास्तव के काम आता था। ये दोनो ही हिन्दी भवन के सेवक थे। यदि दिल्ली के इन 12 वर्षो मे मुझसे कुछ सेवा बन पडी तो उसका श्रेय मुख्यतया श्रद्धेय बहिन सत्यवती मलिक, यशपाल जैन तथा जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी को ही मिलना चाहिए, जिनसे मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध था और जो अब भी मेरे सहायक बने हुए है।

कविवर दिनकर जी मज़ाक मे अक्सर कहा करते थे "मेरी सरकारी नौकरी चौबे जी ने ही छुडवा दी और मत्री भी मैं उन्ही के आदेश के कारण न बन सका।" बात यह हुई थी कि मैंने बार-बार उनसे आग्रह किया था कि वह साहित्य-सेवा को समय दे और पार्लियामेण्ट मे समय बरबाद न करें।

मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि कांग्रेस की कृपा से मै बारह वर्ष दिल्ली मे रह सका। दिल्ली का यह प्रवास मेरे व्यक्तित्व के विकास मे अवश्य ही सहायक हुआ और उसके बदले मे मेरे द्वारा कुछ साहित्यिक या सास्कृतिक सेवा बन पडी या नही, इस प्रश्न का निर्णय मेरे तत्कालीन सगी-साथी ही कर सकते हैं।

22

पत्र-व्यवहार : एक मनोरंजक व्यसन

कोई भाँग पीता है, कोई तमाखू खाता है, किसी को अफीम की लत है, तो किसी को गाँजे का शौक। सुरो की प्रिय सुरा के पीने वालो का तो क्या कहना, और चाय के पियक्कडो की सख्या तो दिन दूनी रात चौगुनी बढ रही है। वह और उसका भाई पीता है गरम चाय, यह सचित्र विज्ञापन पहले कभी टीन पर छपा हुआ, किसी भी नगर मे दीख पडता था। पर इन सब नशो की तरह का, उतना ही उन्मादक एक नशा और भी है और वह है चिट्ठियाँ भेजने का। शायद पाठक इससे कुछ चौके, पर बीसियो वर्षों से इस मद का अमल करने के बाद मै अनुभव की कुछ बाते इस मनोरजक व्यसन के बारे मे लिख रहा हूँ।

समय, शक्ति और धन के अपव्यय की दृष्टि से यह व्यसन शराब को छोडकर सम्भवत अन्य सब व्यसनो से अधिक खर्चीला बैठेगा।

अपने जीवन मे मुझे कई व्यक्ति ऐसे मिले है, जिन्होने पत्र-व्यवहार को व्यसन के रूप मे ग्रहण किया था। उनमे स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंह शर्मा और दीनबन्धु एण्ड्रूज़ के नाम उल्लेखीय है। पर दीनबन्धु के पत्र-व्यवहार मे सेवा तथा परोपकार की भी भावना थी और जहाँ कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ध्यान आया कि व्यसन का असली मज़ा किरकिरा हो जाता है। पीने वाला तो अपनी मौज के लिए पीता है।

स्वर्गीय शर्मा जी ने अपने ग्रन्थ 'पद्म पराग' मे एक जगह लिखा है "पत्र व्यवहार मुझे एक व्यसन-सा लग रहा है। पत्र लिखते-लिखते ही मैंने कुछ लिखना सीखा है।" इसमे सन्देह नही कि स्वर्गीय शर्मा जी इस व्यसन के आचार्य थे। कला शब्द का प्रयोग हम जान-बूझकर नही कर रहे, क्योकि कला मे कृत्रिमता का समावेश हो जाता है। वैसे भाषा और भाव की दृष्टि से उनके पत्र हिन्दी मे पत्र-लेखन कला के भी सर्वोत्तम दृष्टान्त माने जायेगे।

दीनबन्धु एण्ड्रूज़ तो पत्रो की वर्षा-सी करते थे। स्वय गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हे लिखा था "अबाउट वन थिंग आइ कैन नेवर होप टू कम्पीट विद यू, एज़ ए लेटर राइटर यू आर इन्कम्पेयरेबल" अर्थात् एक बात मे मैं आपका मुकाबला करने की आशा भी हर्गिज़ नही कर सकता, पत्र लेखक की हैसियत से आप अद्वितीय हैं।

सौभाग्य से इन दोनो ही महानुभावो के सैकडो ही पत्र मेरे सग्रहालय मे सुरक्षित है। यद्यपि पत्र लेखक की हैसियत से दोनो की ही चरण रज लेने का भी अधिकारी अपने को नही मानता, तथापि इतना

अवश्य कहूँगा कि इस नशे के कारण मैंने अपनी बहुत कुछ साहित्यिक हानि की है।

मैंने कहीं पढ़ा था कि जर्मनी के महान् कवि गेटे ने पत्रो के विषय मे एक नियम बना लिया था। वह उन्ही पत्रो का उत्तर देते थे, जिनमे उन्हे कोई कुछ देने का वचन देता था और शेष पत्रो को, जिनमे उनसे कुछ माँगने की बात होती, फाड फेंकते थे। सुना है कि ऑस्कर वाइल्ड बहुत ही कम चिट्ठियो का जवाब देते थे और उन्होने एक जगह लिखा था कि पत्रो का उत्तर देना अपने साहित्यिक जीवन को नष्ट करना है। अमरीका के सुप्रसिद्ध लेखक थोरो पत्रो को बिल्कुल ही महत्त्व नही देते थे। एक पत्र के उत्तर मे उन्होने लिखा था "मैंने कभी आपको पत्रोत्तर देने का वचन नही दिया, इसलिए यह पत्रोत्तर भेजकर मैं अपनी प्रतिज्ञा से ऊपर का काम कर रहा हूँ।" उन्होने एक जगह यह भी लिखा था "जो आदमी भाग-भागकर डाकखाने जाते हैं और वहाँ से अपने नाम आये पत्रो का पुलन्दा लाते हैं ऐसा प्रतीत होता है, उन्हे बहुत दिनो से अपने भीतर वाले से कोई खबर नही मिली।" थोरो का अभिप्राय सम्भवत यही था कि पत्र-व्यवहार के व्यसन करने वालो की अन्तरात्मा अविकसित रह जाती है।

हिन्दी के कई प्रतिष्ठित लेखको और लेखिकाओ ने थोरो के इस उपदेश को सुना हो या न सुना हो, पर उनके द्वारा इसका आचरण अवश्य होता रहा है और तदर्थ हम उन्हे दोष नही देते।

पत्र-व्यवहार की बीमारी मुझे कब और कैसे लगी, यह मैं ठीक-ठीक नही बतला सकता पर इतना मैं जानता हूँ कि यह सत्तर वर्ष से अधिक पुरानी है। जैसे शराब का नशा करने वाले अपने बचाव के लिए कभी-कभी कह देते हैं, "अजी साहब, बलराम पीते थे और सुकरात भी पीते थे तो हमी ने क्या गुनाह किया है?" और एक बार स्वर्गीय प्रतापनारायण मिश्र ने तो नाटक के बीच कह दिया था—

बामन पीवे, खत्री पीवे, पीवे अग्गरवाला।
हम ऐडीटर पी लई तो करेगा क्या कोई साला!

उसी प्रकार हम भी कह सकते हैं कि सुप्रसिद्ध लेखक रोमा रोलाँ को भी पत्र-व्यवहार का व्यसन था और यह व्यसन उन्हे टॉलस्टॉय ने लगाया था। अपनी छात्रावस्था मे रोमा रोलाँ ने टॉलस्टॉय के नाम एक पत्र लिखा था। उन्हे इस बात की बिल्कुल आशा न थी कि वह महान् लेखक एक मामूली विद्यार्थी के पत्र का उत्तर देगा, पर टॉलस्टॉय ने अडतीस पृष्ठ का जवाब भेज दिया। बस उसी दिन से रोमा रोलाँ ने यह प्रतिज्ञा कर ली कि यदि कोई आदमी अपने सकट के समय मे अपनी अन्तरात्मा से प्रेरित होकर पत्र लिखेगा तो उसका उत्तर अवश्य दूँगा। परिणामस्वरूप उन्होने सहस्रो ही पत्र लिखे।

मछली का शिकार

पत्र-व्यवहार मछली के शिकार जैसा व्यसन है। दोनो मे अनन्त धैर्य की आवश्यकता है। मछुए को उतना आनन्द किसी भारी-भरकम मछली के काँटा निगलने पर भी न आता होगा जितना किसी महापुरुष से पत्र पाने पर पत्र-व्यवहार के शिकारी को आता है।

आज से सडसठ वर्ष पहले की बात है कि मैंने 'फीजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष' नामक पुस्तक (जो स्वर्गीय पण्डित तोताराम जी सनाढ्य की सहायता से और उन्ही के नाम से लिखी गयी थी) कवीन्द्र श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर की सेवा मे भेज दी। मैं जानता था कि गुरुदेव प्रवासी भारतीयो के शुभचिन्तक हैं और दीनबन्धु तथा मि० पियर्सन के कारण उनके प्रश्नो मे रुचि भी रखते हैं इसलिए पत्रोत्तर की कुछ आशा थी, वैसे उन

जैसे विश्व-विख्यात महापुरुष से पत्र पा लेना आसान नही था। मेरी वह आशा पूर्ण हुई। गुरुदेव ने निम्न-लिखित पत्र[1] भेजकर मुझे कृतार्थ किया .

कलकत्ता
8 नवम्बर, 1915

प्रिय महोदय,

अपनी फ़ीजी द्वीप मे स्थित प्रवासी भारतीयो के सदर्भ मे लिखित विशिष्ट हिन्दी पुस्तक के लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिए। यह एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है और मुझे आशा है कि यह उन मित्रो के लिए उपयोगी होगी—जो भारतीय प्रवासियो की भलाई के लिए कार्य कर रहे हैं।

भवदीय
रवीन्द्र नाथ टैगोर

इसके बाद गुरुदेव से चार पत्र मुझे और भी मिले; जिनमे दो बँगला मे हैं। एक बार मैंने देवनागरी लिपि मे एक बँगला चिट्ठी गुरुदेव की सेवा मे भेजने की धृष्टता की थी। बँगला मे लिखने का वह प्रथम प्रयत्न ही था, इसलिए स्वभावत उसमे अनेक भूलें रह गयी थी पर गुरुदेव ने लिखा—

"आपनार बाँगला चिठि खानि सुन्दर हइयाछे। दुइ एकटि या भूल आछे ताहा यत्सामान्य।"

गुरुदेव की चिट्ठी कुछ विस्तृत थी। गुरुदेव से अपने बँगला पत्र की सुन्दरता के विषय मे यह सर्टीफिकेट पाने के बाद मैंने बगला पढना बिल्कुल छोड दिया।

गुरुदेव मुझसे इस बात से कुछ असन्तुष्ट थे कि मैं उनसे निरन्तर अग्रेजी मे ही बोलता था। और एक बार तो उन्होने मधुर डाँट भी बतला दी थी। उन्होने कहा, "देखिये, जब मैं हिन्दी सीखूं, उस समय मुझसे हिन्दी बोलिये और साधारणत बँगला मे। अग्रेजी क्यो बोलते हैं ?"

और एक बार तो दीनबन्धु एण्ड्रूज ने भी यही शिकायत की। उन्होने कहा, "मैं बापू से कहूंगा कि मैं शुद्ध हिन्दी बोलना इसलिए नही सीख पाया कि बनारसीदास मुझसे बराबर अग्रेजी ही बोलता है।" गुरुदेव ने मुझे स्वय पढाना शुरू भी किया था, पर शीघ्र ही मुझे साबरमती आश्रम चला जाना पडा। गुरुदेव ने अपने पत्र मे अपनी कक्षा का जिक्र करते हुए लिखा था

"आश्रम आमार बाँगला अध्यापनार काज एखनउ चलितेछे। पाटेल भाइ प्रभृतिके लइया विचित्र प्रबन्ध नामक ग्रन्थ पाठ आरम्भ हइया छे। आपनि थाकिले खुसि हइतेन—आपनार फिरिया आसार जन्य अपेक्षा करितेछे।"

1.

Calcutta
Nov 8, 1915

Dear Sir,

Please accept my thanks for your remarkable Hindi book dealing with the Indian emigrants in Fiji Island It is a valuable document and I hope it will lead to beneficial results in the hands of our friends, who are working in the interest of Indian Emigrants

Your Sincerely
Rabindra Nath Tagore

पर मैं महात्मा जी के पूर्ण जाल मे फँस चुका था—और वह ऐसा जाल था, जिसमे फँसकर निकलना यदि असम्भव नही तो कठिन अवश्य था—इसलिए गुरुदेव के चरणो के निकट बैठकर बँगला पढ़ने का अवसर फिर मुझे न मिला।

पत्र-व्यवहार का जाल

मैं स्वय अपने पत्र-व्यवहार का जाल बराबर फैलाता रहा और दुर्भाग्य की बात यह हुई है कि विज्ञापित हो जाने के बाद स्वय मैं उस जाल मे फँस गया। नतीजा यह हुआ कि फालतू पत्र-व्यवहार मे बहुत-सा वक्त बर्बाद हुआ और कितने ही आवश्यक पत्रो के उत्तर न दे सका। पर इस दुर्घटना के पूर्व मैं स्वर्गीय माननीय श्रीनिवास शास्त्री से, जिनकी गणना भारत के सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखको मे की जा सकती है, कई दर्जन पत्र पाने मे सफल हो चुका था। उनमे कई पत्र तो भाषा और भाव की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन पर अलग से एक निबन्ध ही लिखा जा सकता है।

महात्मा जी से भी पत्र व्यवहार हुआ और उनके पत्र तो मेरे क्षुद्र सग्रहालय की अमूल्य निधि है। वह भी एक अलग लेख के अधिकारी है।

पूज्य द्विवेदी जी ने भी 50-60 पत्र भेजने की कृपा की और मैं यह अभिमान के साथ कह सकता हूँ कि उनके भेजे हुए दो-तीन पत्र इतने महत्त्वपूर्ण है कि उनके मुकाबले के पत्र शायद ही अन्य किसी हिन्दी लेखक के पास हो। मेरे लिए यह अत्यन्त दु ख की और लज्जा की बात है कि मैं श्रद्धेय द्विवदी जी के अन्तिम पत्र का उत्तर भी नही दे सका। वह निम्नलिखित है

दौलतपुर (रायबरेली)
2-3-38

प्रिय चतुर्वेदी जी,

पहले तो आप मुझ पर विशेष कृपा किया करते थे। क्या कारण है जो अब आप मेरी खबर तक नही लेते— जीता हूँ या मर गया। मालूम हुआ है कि आप 'विशाल भारत' से किनाराकशी करके टीकमगढ चले गये। क्या कलकत्ते से सदा के लिए विदा हो आये? आशा है, महाराजा साहब की छत्रछाया मे आप सानन्द और सुखी होगे—किसी बात की कमी न होगी साम्पत्तिक अवस्था भी अब अच्छी होगी।

महाराजा साहब ने बहुत यश, बहुत कीर्ति कमाई है। उनका हिन्दी-प्रेम सर्वथा प्रशसनीय है। अनेक ग्रन्थकारो, कवियो और हिन्दी हितैषियो के विषय मे वह द्वितीय कर्ण रहे है। ईश्वर करे कि वह दीर्घायु हो और उनका कल्याण हो। यह लिखते समय मुझे सस्कृत का एक श्लोक याद आ रहा है। अर्क (मदार) की झाडी वर्षा ऋतु से कहती है—

त्वयि वर्षति पर्जन्य सर्वे पल्लविता द्रुमा ।
अस्माकमर्क वृक्षाणा जीर्ण पत्रेऽपि सशय ॥

मैं बहुत वृद्ध हो गया। कमजोरी बेहद बढ रही है। चलने मे पैर लडखडाते है। दृष्टि मद हो गयी। 'लीडर' अब अच्छी तरह नही पढ सकता। छटाँक भर दलिया भी हजम नही होता। दूध पीकर और लौकी का ज़रा-सा साग खाकर जी रहा हूँ। देखूँ, ये भोग कब तक भोगने पडे।

कृपापात्र
म० प्र० द्विवेदी

मैंने द्विवेदी जी की सेवा के लिए कुछ प्रयत्न किया भी पर उसमे मुझे सफलता नही मिली। जो महानुभाव बाधक हुए उनका नाम लेना मुनासिब न होगा क्योंकि वे भी अब इस लोक मे नही हैं।

इसी प्रकार माननीय श्रीनिवास शास्त्री जी तथा रोम्या रोला के भी अन्तिम पत्रो के उत्तर नही जा सके। मैं सोचता ही रहा कि फुर्सत मिलते ही बढ़िया ढग से चिट्ठी लिखूंगा और फिर प्रमादवश वह अवकाश कभी नही मिला।

दीनबन्धु ऐण्ड्रूज जी ने एक बार कहा था, "यह तुम बहुत अच्छा करते हो कि 'एक भारतीय हृदय' के उपनाम से लिखते हो। जिस दिन तुम्हारा नाम विज्ञापित हो जायेगा, चिट्ठियो का जवाब देते-देते तुम्हारी नाको दम आ जायेगा।"

दीनबन्धु की भविष्यवाणी भयकर रूप से सफल हुई और मेरे लिए यह नुसखा 80 से 90 रुपये महीने तक का आ बैठा। यही नही, महीने मे बीस दिन पत्रोत्तर में ही जाने लगे और अभी तक यही विघातक क्रम चल रहा है।

एक बार एक कौवे ने हँस की चाल चलने का उपक्रम किया था, सो वह अपनी चाल भी भूल गया, और एक बार एक श्वान महोदय ने मुर्गे की बोली बोलने का प्रयत्न किया तो 'भूकरूँ भूँ' की ध्वनि निकली थी। वैसा ही दुष्परिणाम मुझे भी भोगना पड़ा है।

एक महाशय ब्रह्मचर्य पर किताब लिखते हैं और तत्सम्बन्धी पत्र व्यवहार मे मैं उलझ जाता हूँ यद्यपि ब्रह्मचर्य के लाभो के बजाय उसकी हानियो से अधिक परिचित हूँ।

समाचारपत्रो के भोले-भाले पाठक, सम्पादक को सर्वज्ञ मान लेते हैं और उन्हे यह भ्रम भी हो जाता है कि सम्पादको के पास फालतू समय बहुत है। कोई नवयुवक महोदय लिखते है कि स्त्री से झगडा होता रहता है, क्या किया जाय ? तो कोई महिला लिखती हैं, मेरे लडकी हुई है, उसका नाम आप बतलाइये, और लेखक बनने के इच्छुक नवयुवको के तो अनेको पत्र आया करते है। सहृदयतापूर्वक और सन्तोषजनक उत्तर न देना एक प्रकार से अशिष्टता ही होगी, इसी भावना से प्रेरित होकर वस्तुत सहस्रो ही पत्र मुझे लिखने पड़े हैं। इसके सिवाय यह बात मैं कभी नही भूल पाया कि कभी मैंने इसी प्रकार विज्ञापित या सुप्रसिद्ध व्यक्तियो का समय लिया था। अत अब जिज्ञासु छात्रो के पत्रो को रद्दी की टोकरी मे फेंकना नालायकी होगी।

पत्रो के विषय मे स्व० रामानन्द बाबू की नीति सर्वोत्तम थी। वह सप्ताह-भर की चिट्ठियो का जवाब केवल रविवार को दिया करते थे। और काम-विज्ञान के सर्वोच्च विशेषज्ञ हेवलाक ऐलिस ने यह नियम बना लिया था कि साल-डेढ साल मे जब वह कोई लेख लिख पाते तब जिज्ञासु पत्र लेखको को उस लेख का रीप्रिण्ट भेज देते थे। महात्मा जी अनेक पत्रो का उपयोग अपनी सम्पादकीय टिप्पणियो मे कर लेते थे। श्री अमरनाथ जी झा ने एक उत्तम युक्ति निकाल ली थी। मतलब की बात वह तीन-चार पक्तियो मे अत्यन्त सुन्दर अक्षरो मे लिख भेजते थे।

बन्धुवर माखनलाल जी चतुर्वेदी और श्रीमती महादेवी वर्मा ने अनावश्यक पत्र-व्यवहार से तग आकर शायद यह नियम ही बना लिया था कि पत्र का जवाब न देना ही उनका सर्वोत्तम उत्तर है। पर पूज्य द्विवेदी जी की तरह भाई श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी प्रत्येक पत्रो का उत्तर देते थे यद्यपि वह उत्तर सक्षिप्त ही होता था। इस व्यसन के बारे में यह बात ईमानदारी के साथ स्वीकार करनी पडेगी कि यह

सौदा बिल्कुल घाटे-ही-घाटे का रहा हो, सो बात नही। जब साढ़े चौदह वर्ष तक मुझे कुण्डेश्वर में एकात जीवन व्यतीत करना पडा, तब इस व्यसन ने शुष्क जीवन मे रस का सचार किया है। पत्र व्यवहार एकाकीपन के रोग की एक औषधि अवश्य है। कितने ही लोग उस हर्ष और आनन्द का अनुमान भी नहीं कर सकते जो एक रुपये के छ कार्डों द्वारा दिया जा सकता है और बचा हुआ दस पैसा मुनाफे मे, सो अलग। पर आनन्द का यह वितरण 'स्वान्त सुखाय' ही होना चाहिए। परोपकार की भावना से जहाँ तक इस नशे का सम्बन्ध है, मूलत गलत है।

जिन्हे पत्र-व्यवहार का रोग लगा हो उनसे हम कहेंगे कि यदि आप साहित्य के क्षेत्र मे कोई उल्लेख योग्य रचनात्मक कार्य करना चाहते हैं, तो इस बीमारी को न पालिये। पर हम जानते हैं, चैत-क्वार मे जैसे मलेरिया फैलता है उसी प्रकार जीवन के एक विशेष भाग मे पत्र-व्यवहार का यह खसरा निकले बिना नही रहता। डाकखाने इसी से चलते हैं।

पत्र-व्यवहार, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, मेरे लिए घाटे का सौदा नही रहा। विदेश के किसी महान् लेखक ने लिखा था "यदि मुझे कोई ऐसा कुतुबनुमा (दिशासूचक-यन्त्र) मिल जाए, जो उस दिशा की ओर इशारा करता हो, जहाँ महापुरुष रहते हो, तो मैं सब घर-द्वार, सम्पत्ति तथा साधन बेचकर उसी दिशा की ओर चल पड़ूँगा।" यदि धृष्टता क्षन्तव्य मानी जाय तो मैं कहूँगा कि पत्र-व्यवहार के रूप मे वह कुतुबनुमा मुझे मिल गया था। मैं प्रत्येक पत्र अच्छे से अच्छे कागज पर और अपने सर्वोत्तम अक्षरो मे भेजा करता था। मैं फाउण्टेनपेन से नही, बल्कि मिचल जी निब से बढ़िया कागज पर लिखा करता था। अच्छे अक्षरो से हम उस व्यक्ति का सम्मान करते हैं, जिसे पत्र भेजा जाता है और खराब अक्षरो से उसकी अवज्ञा। महात्मा गाधी का यह कथन सर्वथा सहृदय था कि "खराब अक्षर लिखना भी एक प्रकार की हिंसा है।" भारत कोकिला सरोजिनी नायडू अपने पत्र घसीट देती थी। इस कारण महात्मा जी के यहाँ उनके पत्रो को पढाने के लिए कमीशन बिठलाया जाता था। मुझे अपने पत्रो तथा अक्षरो के लिए अनेक सर्टीफिकेट मिले थे। पण्डित मोतीलाल नेहरू एक बार काटजू साहब के चुनाव के सिलसिले मे एतमादपुर जा रहे थे। टूण्डला स्टेशन पर जब वह गाडी का इन्तजार कर रहे थे, मैं उनकी सेवा मे उपस्थित हुआ। उस समय उन्होंने मजाक मे कहा, "जब मेरे पास कोई ऐसा खत आता है जिसमे रेड और ब्ल्यू दोनो स्याहियो का प्रयोग किया गया हो तो फौरन समझ लेता हूँ कि यह खत बनारसीदास का है।"

जब मैंने केन्द्रीय एसेम्बली मे एमीग्रेशन कमेटी कायम करने का प्रस्ताव रखा था तो प० मोतीलाल जी नेहरू तथा लाला लाजपतराय दोनो ने उसका सदस्य बनना स्वीकार कर लिया था। दोनो के स्वीकृति पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली मे सुरक्षित हैं। माननीय श्रीनिवास शास्त्री ने एक पत्र मे मुझे लिखा था "आपका यह पत्र भी आपके अन्य पत्रो की भाँति बहुत सुन्दर है। वृन्दावन मे मेरे सामने आचार्य गिडवानी ने भाई परिपूर्णानन्द जी से कहा था, "अच्छे अक्षर लिखना बनारसीदास से सीखिए।" जब मैंने साबरमती आश्रम मे रहते हुए महात्मा जी से यह प्रार्थना की कि वह मुझे टाइप-राइटर खरीदने की अनुमति दे दें तो उन्होने कहा, "तुम्हारे अक्षर तो मोती से जड़े हुए होते हैं, तुम्हे टाइप-राइटर की जरूरत ही क्या है?" जब 'लीडर' कार्यालय मे मेरा कोई लेख पहुँचता था तो उसके सयुक्त सम्पादक श्री कृष्णाराम मेहता उसका सम्पादन किए बिना प्रेस मे दे देते थे, क्योंकि कम्पोजीटरो को मेरे अक्षर पढने मे बहुत सुविधा होती थी।

एक बार जब मैं गुजरात विद्यापीठ मे हिन्दी अध्यापक था, तो मैंने अपनी क्लास मे अपना मजाक

उड़ाते हुए कहा था, "मेरे अक्षर इतने अच्छे हैं कि यदि मैं लड़की होता तो कोई कम्पोजीटर मुझसे शादी करने के लिए तुरन्त राजी हो जाता।" मेरी उस कक्षा मे दो लड़कियाँ भी थी—सरदार वल्लभ भाई पटेल की पुत्री कु० मणि बहिन, और सेठ अम्बालाल साराभाई की भतीजी सरला जी। वे दोनों लड़कियाँ हँसने लगी और एक ने कहा, "पण्डित जी बड़े रसिक हैं।"

सहस्रो पत्र भेजने के कारण उत्तर मे मुझे हजारो ही पत्र मिले हैं और वह मेरे सग्रहालयो की अमूल्य सम्पत्ति बन गये हैं। कुछ लोग तो मुझे पत्र-लेखन-कला का प्रवर्तक ही मान बैठे हैं पर दरअसल प्रवर्तक की उपाधि तो आचार्य प० पद्मसिंह शर्मा को ही मिलनी चाहिए। हाँ, उसकी लोक-प्रियता को बढ़ाने मे मेरा हाथ अवश्य रहा है। स्वय मैंने स्व० भाई हरिशकर जी की सहायता से प० पद्मसिह जी के लेखो का सग्रह प्रकाशित किया था। उसकी भूमिका में जो मेरा विस्तृत लेख है, पत्र लेखन कला, वह पुस्तक रूप मे अलग भी प्रकाशित हो सकता है। इसके सिवाय मैंने सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, मुंशी अजमेरी जी, रामनरेश त्रिपाठी, पीर मुहम्मद मूनिस, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, वासुदेव शरण अग्रवाल तथा हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के पत्र भिन्न भिन्न पत्रिकाओ मे छाप दिये थे। भाई वृन्दावन दास जी ने वासुदेवशरण जी के पत्रो का सग्रह अलग से पुस्तकाकार मे प्रकाशित करा दिया था। यही नही, उन्होंने मेरे डेढ़-सौ पत्र भी छपा दिये थे। मैंने स्वय स्व० बशीधर जी विद्यालकार तथा भाई हरिशकर शर्मा के तीन-तीन सौ पत्रो की चार-चार प्रतियाँ टाइप कराके सुरक्षित करा दी थी। इसके सिवाय हिन्दी मे अनेक पत्र-सग्रह पहले प्रकाशित हो चुके हैं—यथा, महर्षि दयानन्द के पत्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी के पत्र (बैजनाथ सिंह विनोद द्वारा सग्रहीत), श्री किशोरी दास वाजपेयी का पत्र-सग्रह इत्यादि।

मैंने सुना है कि उर्दू मे पत्र-सग्रह की सख्या लगभग एक सौ होगी। उस भाषा मे अनेक प्रतिष्ठित लेखको के पत्रो का सग्रह हो गया है। जब मैं पानीपत मे मौलाना हाली की शताब्दी पर गया था, तो एक पुस्तक विक्रेता के पास मौलाना हाली के उर्दू पत्रों की चार जिल्दें थी। सुना है कि अलीगढ से उर्दू का कई पृष्ठो का सग्रह एक विशेषांक के रूप मे प्रकाशित हुआ था और अग्रेजी मे तो सैकडो ही पत्र-सग्रह हैं। लाखो ही पत्र डाकियो के हाथ से रोज निकला करते हैं और उनमे से अधिकांश रद्दी की टोकरी मे चले जाते हैं, जिनमे अनेक महत्त्वपूर्ण व सग्रहणीय हो सकते हैं। किसी अग्रेज लेखक ने लिखा था "केवल वे ही पत्र सग्रहणीय हैं जो कभी नही लिखे जाने चाहिए थे, और लिखे भी गये होते तो नष्ट कर दिये जाते।"

बन्धुवर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के कुछ पत्र, जो उन्होने मुझे लिखे थे, इस श्रेणी मे आ सकते हैं। ऊटपटांग जो भी विचार उनके मन मे आते थे, उन्हे वह बिना सकोच के मुझे लिख भेजते थे। मैंने उनका एक भी पत्र नष्ट नही किया था और सबको नर्मदा के विशेषांक मे छाप दिया था।

23

जिन ग्रन्थों ने मुझे प्रभावित किया

यह बात मैं कई बार लिखा चुका हूँ कि मैं ज्यादा पढ़ता नही। चलती-फिरती किताबो—सजीव मनुष्यो—को पढ़ने मे मेरी रुचि है जब कि निर्जीव पुस्तकें मुझे आकर्षित नही करती।

प्राचीन ग्रन्थो मे मुझे गीता और धम्म-पद निरन्तर प्रेरणा देते रहे है। महाभारत का एक संक्षिप्त सस्करण, जो इण्टर के कोर्स मे था, मैंने पढ़ा था। स्व० चिन्तामणि वैद्य की लिखी महाभारत की समीक्षा मुझे बहुत पसन्द आयी, और शान्तिलाल नानूराम व्यास ने वाल्मीकि रामायण पर जो शोध-ग्रन्थ अंग्रेजी मे तैयार किया था उसका हिन्दी अनुवाद मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा था। महाकवि तुलसीदास की रामायण का अयोध्या काण्ड तथा कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का राजा लक्ष्मणसिह कृत हिन्दी अनुवाद मैं पाठ्य-ग्रन्थ रूप मे पढ़ चुका था। कविरत्न सत्यनारायणजी द्वारा किया गया उत्तररामचरित का हिन्दी अनुवाद भी मैंने पढ़ा था। सुभाषित रत्न भाण्डागार मेरी प्रिय पुस्तक थी। यह हुई प्राचीन साहित्य की बात।

आधुनिक साहित्य मे भी मैंने बहुत कम पढ़ा है। प्रेमचन्द तथा सुदर्शन जी, दोनो की कहानियाँ मुझे प्रिय रही थी और उनके असाधारण व्यक्तित्व से भी मै प्रभावित था। स्व० आचार्य श्री वासुदेवशरण जी की पुस्तक 'पृथ्वीपुत्र' तो जनपदीय कार्यकर्त्ताओ के लिए बाइबिल की तरह है। मै उन्हे, श्री हजारीप्रसादजी तथा राहुलजी को गुरुतुल्य पूज्य मानता हूँ यद्यपि वे तीनो उम्र मे मुझसे छोटे ही थे—अग्रवालजी 11 वर्ष, द्विवेदीजी 15 वर्ष और राहुल जी कुछ महीने। कविवर दिनकर जी भी 'विशाल भारत' के खास लेखक थे। उनकी रचनाएँ मै बराबर पढ़ा करता था। स्व० रविशंकर जी का 'चहचहाता चिड़ियाघर' तथा श्री अन्नपूर्णानन्द जी का 'महाकवि चच्चा' दोनो मेरे प्रिय ग्रन्थ थे। कविवर बच्चन जी तथा भाई मोहनलाल जी की कृपा 'विशाल भारत' पर थी और आदरणीय बहिन सत्यवती मलिक तथा स्व० कमला चौधरी की अनेक रचनाएँ मैंने 'विशाल भारत' मे छापी थी। बन्धुवर गुरुभक्तसिंह की 'नूरजहाँ' और राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' के भी अनेक अंश मैंने 'विशाल भारत' मे प्रकाशित किये थे। भाई सियाराम शरण जी के बारे मे मैंने एक लेख ही लिखा था—'हमारे रुचि के कवि', महाकवि रत्नाकर जी के साथ मैंने कलकत्ते मे बारह दिन तक नित्य प्रति वार्तालाप किया था। कविरत्न सत्यनारायण तो मेरे प्रिय कवि थे, उनकी कीर्ति-रक्षा के लिए जो प्रयत्न मैंने किया था, उसकी चर्चा मै कर चुका हूँ।

यह लिखने मे मुझे किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नही होता कि मै अपना मानसिक भोजन

विदेशी ग्रन्थकारों से लेता रहा हूँ। माता सरस्वती की आराधना मे देशी-विदेशी का सवाल उठता ही नहीं। अनेक वर्षों तक एमर्सन को मै स्वाध्याय के रूप मे नित्य प्रति प्रात काल मे पढता रहा। एमर्सन के बारे मे किसी विदेशी लेखक ने कहा था "बौद्धिक दृष्टि से वह ब्राह्मण थे और उनका जन्म भारत मे होना चाहिए था।" यह बात ध्यान देने योग्य है कि महात्मा गाधी एमर्सन और थोरो, दोनो के प्रशसक थे। थोरो के कई निबन्ध, जिनमे एक सिविल डिसऑबिडिएन्स था, उन्हें प्रिय थे। थोरो की पुस्तक 'वाल्डेन' (Walden) ने तो विश्व साहित्य में स्थान पा लिया है और उसका हिन्दी अनुवाद 'वाल्डेन सरोवर' मेरे नाम से ही प्रकाशित हुआ था, यद्यपि यह मुख्यतया मेरे भानजे चि० प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी द्वारा किया गया था।

सुप्रसिद्ध आस्ट्रियन लेखक स्टीफन ज्विग मेरे अत्यन्त प्रिय ग्रन्थकारो मे रहे और उनको हिन्दी मे लाने का श्रेय भी मुझे ही प्राप्त हुआ था। बकौल रोमा रोलाँ ज्विग की लेखन-शैली आत्मा को जकड लेने वाली थी। ससार की 33 भाषाओ मे उनके ग्रन्थो के अनुवाद हुए थे। लीग ऑफ नेशन्स की एक रिपोर्ट मे ज्विग को 'दि मोस्ट ट्रान्सलेटिड ऑथर इन दि वर्ल्ड' (ससार का सबसे ज्यादा अनुवादित) लेखक लिखा गया था।

स्वय रोमा रोलाँ का सुविख्यात उपन्यास 'जीन क्रिस्तोफी' मेरा प्रिय ग्रन्थ रहा है। उसी ग्रन्थ पर उन्हे नोबुल पुरस्कार मिला था। रोमा रोलाँ से पत्र-व्यवहार भी मैंने किया था। उनके तीन पत्र मेरे पास थे जिन्हे मैंने राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित करा दिया है।

विलायत के एडवर्ड कारपेण्टर भी मुझे बहुत प्रिय थे। उनकी विख्यात पुस्तक 'टूवर्ड्स डेमोक्रेसी' मुझे अत्यन्त प्रिय थी और उनके आत्म-चरित—'माई डेज़ एण्ड ड्रीम्ज़'—का साराश चार लेखो मे मैंने 'विशाल भारत' मे प्रकाशित किया था।

सुप्रसिद्ध रेखाचित्रकार ए० जी० गार्डनर के अनेक ग्रन्थो को मैने पढ़ा है। उनसे बढिया स्केच कोई दूसरा नही लिख सकता था। सुप्रसिद्ध भारतीय लेखक के० ईश्वर दत्त उनके अनुयायी थे। मै उनका भी प्रशसक रहा हूँ। एच० डब्ल्यू० नेविन्सन युद्धो के सवाददाता थे। ससार मे जहाँ कही भी अन्याय होता था वहाँ वह पहुँच जाते थे। मै उन्हे ससार का सर्वश्रेष्ठ पत्रकार मानता हूँ। पत्रकारिता किसी देश विशेष मे सीमित नही है, क्योकि वह अन्तर्राष्ट्रीय विषय है। 'मैनचेस्टर गार्जियन' के सम्पादक सी० पी० स्कॉट हमारे लिए उतने ही पूज्य हैं जितने रामानन्द चट्टोपाध्याय।

हमे विश्व सस्कृति का निर्माण करना है। इसलिए हमारा दृष्टिकोण व्यापक होना चाहिए।

रूस के महान् उपन्यासकार तुर्गनेव का मै प्रारम्भ से ही प्रशसक रहा हूँ। उनकी कई रचनाओ का अनुवाद मैने स्वय किया और कई का दूसरो से कराया। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'फादर्स एण्ड सन्स' के दो-दो अनुवाद हिन्दी मे हुए थे। स्व० जगन्नाथ प्रसाद जी मिश्र द्वारा किये गये तुर्गनेव के दो लघु उपन्यासो के अनुवाद 'प्रेम प्रपच' और 'स्वामीभक्त' मैने सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा छपवाए थे। तुर्गनेव का मै इतना प्रेमी था कि उनके सब ग्रन्थ आगरे के सुप्रसिद्ध प्रकाशक स्व० रामप्रसाद के द्वारा खरीदवाकर पढे थे। जिनकी कीमत मै बहुत वर्षों बाद अदा कर सका था। रूस मे तुर्गनेव का आश्रम बहुत दूरी पर है। रात-भर रेल द्वारा यात्रा करने के बाद भी चालीस मील मोटर द्वारा जाना पडा था। रूसी सरकार ने उसे ज्यो का त्यो सुरक्षित रखा है। वह छोटे-से वन मे था। वहाँ पहुँचकर मैने उसके दर्शन किये थे और सग्रहालय के निदेशक से बातचीत भी की थी। उन्होने कहा, "टॉल्स्टॉय यहाँ पधारा करते थे और उनके और तुर्गनेव के बीच इस बात पर विवाद हुआ करता था कि किसका आश्रम बेहतर है। किसी निर्णय पर न पहुँचकर उन्होने यह फैसला

दिया था कि भविष्य ही इसका निर्णय करे। भविष्य का फैसला तुर्गनेव के पक्ष मे था।"

चेखव की कहानियो का भी मै प्रशसक रहा हूँ। 'विशाल भारत' का चेखव अक भी मैने निकाला था। रूस से मै चेखव शैलीकोव संग्रहालय तथा आश्रम मे भी गया था। टॉल्स्टॉय के आश्रम यासनायापोलियाना की यात्रा मैने दो बार की थी। वहाँ सरकार की ओर से एक निदेशक तथा 100 कर्मचारी नियुक्त हैं। टॉल्स्टॉय के समय मे उस उपवन की जैसी स्थिति थी वैसी ही उन्होने ज्यो की त्यो बनाए रखी है। उस आश्रम में एक छोटे-से पौधे को देखकर मैने आश्चर्य प्रकट किया तो मेरे दुभाषिये ने कहा कि इसके पास का वृक्ष काफ़ी पुराना हो चुका है। चार-पाँच वर्ष मे वह गिर जायेगा। उसके रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए कई वर्ष पहले यह पौधा लगा दिया गया था। हजारो विद्यार्थी प्रति वर्ष टॉल्स्टॉय के आश्रम को देखने जाते हैं।

गोर्की भी मुझे प्रिय रहे हैं। उनकी बहुत-सी रचनाओ का अनुवाद मैने अपने भानजे प्रकाशचन्द्र से करवाया था। मास्को मे गोर्की संग्रहालय एक अद्भुत वस्तु है। सरकार से उसे लाखो रुपया प्रतिवर्ष की आर्थिक सहायता मिलती है। चार-चार विदेशी भाषाओ के अनुवाद वहाँ से प्रकाशित होते हैं। मै गोर्की की धर्मपत्नी की सेवा मे भी उपस्थित हुआ था और उनकी पुत्रवधू से भी मिला था।

24

साहित्य-सेवियों की कीर्ति-रक्षा

साहित्य-सेवियो की कीर्ति-रक्षा भी मेरे जीवन का मिशन रहा है और उसमे मेरे कितने ही वर्षों के अवकाश का समय व्यतीत होता रहा है। यद्यपि स्वर्गीय प० सत्यनारायण कविरत्न के दर्शन तो मैने 1912 मे किये थे, जब वह फीरोज़ाबाद पधारे थे पर उनसे निकट परिचय सन् 1918 में इन्दौर के अष्टम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर हुआ था। मैंने खास तौर पर उन्हे निमत्रित किया था और सम्मेलन के अवसर पर उनके काव्य-पाठ ने दस-पन्द्रह हज़ार की जनता को मन्त्रमुग्ध-सा कर दिया था। उसी समय मैंने उनकी कविताओ का सग्रह करने का विचार किया था और उसका नाम भी 'हृदय-तरग' रख दिया गया था। मेरी एक नोटबुक मे उन्होने अपनी कुछ कवितायें लिख भी दी थी। दुर्भाग्यवश इन्दौर से लौटने के बाद 15-20 दिन के भीतर ही सत्यनारायण जी का स्वर्गवास हो गया था। 'हृदय-तरग' उनके जीवन काल मे छप न सकी। उसके बाद तो उसके दो सस्करण हुए। द्वितीय सस्करण का सम्पादन प० अयोध्याप्रसाद जी पाठक ने किया था। पाठक जी बड़े काव्य-मर्मज्ञ थे और उर्दू-फारसी तथा ब्रजभाषा के विशेषज्ञ थे। कविरत्न जी के तो वह सरक्षक थे। सत्यनारायण जी को उन्ही के यहाँ आश्रय मिला था। तत्पश्चात् मैंने कविरत्न जी का जीवन-चरित भी लिखा जिसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने प्रकाशित किया। फिर (सम्मेलन) प्रयाग मे सत्यनारायण कुटीर की भी स्थापना करवायी गयी। उसकी स्थापना का प्रस्ताव मैंने ही टण्डन जी के सामने रखा था। उन्होने उत्तर मे लिखा था "कुछ रुपयो का प्रबन्ध आप कीजिये, शेष का मैं कर दूंगा।" मैंने चन्दा करके 1046 रुपये उन्हे भेज दिये और 4000 रुपये मे उन्होंने एक कमरा बनवा दिया था। फिर तो बढ़ते-बढ़ते वह तितल्ला भवन बन गया और उसका उद्घाटन महात्मा गाधी जी ने किया था। कविरत्न जी के एक तैल चित्र का उद्घाटन सन् 1920 मे दीनबन्धु एण्ड्रूज ने फीरोज़ाबाद पधार कर भारती भवन मे किया था।

सत्यनारायण जी के समस्त ग्रन्थों का सग्रह दिल्ली मे सन् 1980 मे के० एम० मुशी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा द्वारा प्रकाशित हुआ। तदर्थ मैं उसके निदेशक भाई डॉ० विद्यानिवास मिश्र का कृतज्ञ और ऋणी हूँ। इस प्रकार सत्यनारायण जी की कीर्ति-रक्षा के पुण्य कार्य मे 62 वर्ष (1918 से 1980 तक) लग गये।

स्वर्गीय प० श्रीधर पाठक का जन्म फीरोज़ाबाद से नौ मील दूर एक ग्राम जोधरी मे हुआ था और उनकी मिडिल तक की शिक्षा फीरोज़ाबाद के तहसील स्कूल मे हुई थी। यहाँ प० जयराम जी प्रधानाध्यापक

थे। मेरे पूज्य पिता जी उनके सहपाठी थे। इसलिए स्व० पाठक जी का शुभनाम मैं अपनी बाल्यावस्था से ही सुनता चला आ रहा था। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ का काव्य ग्रन्थ 'ट्रेवलर' एफ० ए० मे पाठ्य पुस्तक के रूप मे स्वीकृत था। मैंने कभी पाठक जी द्वारा किया हुआ उसका अनुवाद 'श्रान्त पथिक' मे पढ ही नही लिया था, उसकी नकल भी अपने हाथ से कर ली थी। मैंने उनका जीवन-चरित लिखने का विचार किया और सन् 1920 मे मैंने इस उद्देश्य से प्रयाग की यात्रा भी की। मैंने सोलह दिन तक पद्मकोट लूकरगज, प्रयाग मे रहकर पाठक जी के जीवन-चरित-सम्बन्धी पुराने पत्र-व्यवहार आदि की नकल की। पाठक जी उस समय जीवित थे। उनका व्यवहार मेरे प्रति अत्यन्त स्नेहपूर्ण रहा और अपने गुरु प० जयराम के विषय मे उन्होने कई वाक्य स्वय लिखाये। भाई गिरिधर जी और वागधर जी (पाठक जी के सपुत्र) उस समय बालक ही थे। यह बड़े दुर्भाग्य की बात हुई कि मैं उस बहुमूल्य सामग्री का सदुपयोग न कर सका। यद्यपि स्थानीय डी० ए० वी० कॉलिज की पत्रिका 'ज्योत्स्ना' का श्रीधर पाठक अक मैंने प्रकाशित कर दिया था, जिसमे भाई मथुराप्रसाद मानव, जो वहाँ प्रवक्ता थे, ने उस कार्य मे बडी सहायता दी थी। उन्होने लगभग 20-25 दिन मेरे घर पर आकर मेरे निर्देशन मे पाण्डुलिपि तैयार की थी। इसके सिवाय 'विशाल भारत' मे भी स्व० पाठक जी के सस्मरण मैंने लिखे थे जो मेरी पुस्तक 'सस्मरण' मे उद्धृत कर दिये गये। सन् 1944 मे मैंने स्व० भाई सुनहरी लाल जी शर्मा तथा कविवर श्री सुकुमाकर जो के साथ जोधरी की पैदल तीर्थयात्रा की थी। उसी दिन मुझे अठारह मील पैदल चलना पडा। मेरे पूज्य पिता जी जीवित थे और अस्वस्थ थे फिर भी उनसे अनुमति लेकर मैं गया था। इसके कुछ दिनो बाद पिता जी का स्वर्गवास हो गया था। उन्ही दिनो भाई गिरिधर पाठक जोधरी गये थे और मेरे घर भी पधारे थे। अकस्मात् मैं उस समय कक्का के फूल लेने के लिए श्मशान घाट पर, जमुना जी गया था और वहाँ से लौटने पर ही गिरिधर जी के आने का समाचार मिला। वह जल्दी मे थे अत प्रयाग लौट गये। मुझे भली-भाँति स्मरण है कि मैंने भाई गिरिधर जी के सामने पत्र-व्यवहार द्वारा यह प्रस्ताव रखा था कि हम दोनो मिलकर पाठक जी का जीवन-चरित लिखें। खेद है कि वह प्रस्ताव जहाँ का तहाँ पडा रहा।

62 वर्ष पहले इकट्ठी की हुई सामग्री का पर्चा-पर्चा सुरक्षित है। चि० रामगोपाल पाठक जी का जीवन-चरित लिखना चाहता था और उसने ही राष्ट्रीय अभिलेखागार को पाठक जी से सम्बन्धित सामग्री नहीं भेजने दी। यदि वह दिल्ली चली गयी होती तो उसकी नकल कराने मे काफी खर्चा पड जाता।

मेरा विचार है कि अब चि० रामगोपाल भाई मानव जी के सहयोग से इस कार्य को पूरा कर ले। मुझे पूरा विश्वास है कि पाठक जी के पौत्र डॉ० पद्मधर पाठक का सहयोग भी मेरे इस यज्ञ मे प्राप्त होगा। इस ग्रन्थ से पैसा कमाने का उद्देश्य मेरा कभी नही रहा और अब भी नही है।

हाल मे बन्धुवर पद्म जी ने एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक छपायी है जिसमे स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखे हुए पाठक जी के नाम अंग्रेजी के पत्र हैं। उनका सरल अनुवाद भी पाठक जी ने दे दिया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि पाठक जी की समस्त रचनाओ को उनके जीवन-चरित के साथ छपा दिया जाये।

स्व० हरिशकर जी से मेरा परिचय बहुत पुराना था। उससे भी पूर्व मै महाकवि शकर जी का भक्त बन चुका था। यद्यपि उनके दर्शनार्थ हरदुआगज की यात्रा मैंने अपने अनुज रामनारायण के साथ सन् 1925 मे की थी। भाई हरिशकर जी मुझसे उम्र मे दो-ढाई वर्ष बड़े थे और मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करते

थे जैसा कोई अपने छोटे भाई के साथ करता है। कई महीने तक मैं 'आर्यमित्र' मे उनका सहायक सम्पादक भी रहा था।

जब स्व० रामानन्द चट्टोपाध्याय ने 'विशाल भारत' का सम्पादन कार्य मुझे सौंपा तो मैंने उसे कलकत्ते के जलवायु खराब होने के डर से अस्वीकार कर दिया और अपनी जगह के लिए प० जयचन्द्र जी विद्यालकार के नाम की सिफारिश की। रामानन्द बाबू ने वह नाम स्वीकार नही किया, इस पर भाई हरिशकर जी ने मुझसे कहा, "आर्यसमाजी सस्थाओ मे नौकरी की कोई पक्कायत नही है। व्यवस्थापक बदलने पर नौकरी छूट भी सकती है। जब तक पूर्णचन्द्र जी व्यवस्थापक हैं तब तक तो आपकी नौकरी को कोई खतरा नही है। इसलिए 'विशाल भारत' के काम को स्वीकार ही कर लीजिए।" मैंने भाई हरिशकर जी की आज्ञा का पालन किया और 'विशाल भारत' के कार्य ने मेरे जीवन को एक नया मोड ही दे दिया। भाई हरिशकर जी को मैंने बहुत निकट से देखा था। ब्रजभाषा और खडी बोली, दोनो पर उनका समान रूप से अधिकार था। वह घोर परिश्रमी थे और जब साइकिल से टकराकर वह गिर पडे थे तो कई महीने तक खाट पर लेटे-लेटे उन्होने 'आर्यमित्र' का सम्पादन किया था। वह हास्यरस के तो आचार्य ही थे। उनके साथ वार्तालाप करने मे अत्यन्त आनन्द आता था। अर्थ के प्रति उनके हृदय मे कोई आकर्षण नही था। दिल्ली के एक पत्र मे उन्हे हजार-बारह सौ रुपये महीने की नौकरी मिल रही थी, पर मालिक लोगो का यह इशारा था कि वह महात्मा गाधी जी के खिलाफ लिखें। भाई हरिशकर जी ने साफ मना कर दिया और तुरत लौट आये।

जब पत्र के कार्यालय से प्रथम श्रेणी का दोनो ओर का किराया उन्हे दिया गया तो उन्होने केवल थर्ड क्लास का किराया लिया, बाकी पैसा वापिस कर दिया। यह बात उन दिनो की है जब भाई हरिशकर जी घोर आर्थिक सकट मे थे। उनका जीवन एक साधक तपस्वी का था। महाकवि शकर जी ने पचास वर्ष आर्य-समाज की सेवा की और इतनी ही दीर्घकालीन सेवा भाई हरिशकर जी ने की भी थी, आर्यसमाज ने इस कुटुम्ब की शताधिक वर्ष की सेवा को कोई महत्त्व नही दिया। भाई शकर जी के स्वर्गवास के बाद बन्धुवर श्री कुसुमाकर जी के बहुत प्रयत्न करने पर भी लखनऊ की आर्य प्रतिनिधि सभा से कुल जमा 114 रुपये मिल सके जो हरिशकर जी की चिट्ठियो के टाइप कराने मे खर्च कर दिये गये। हाँ, फीरोज़ाबाद के डी० ए० वी० कॉलेज ने अपनी पत्रिका 'ज्योत्स्ना' का एक विशेषाक निकाल दिया था जिसमे भाई मथुराप्रसाद मानव ने पूरा-पूरा सहयोग दिया था। वह आगरा शकर सदन पर रहकर श्री विद्याशकर जी से सामग्री नोट करके लाये थे। उनकी स्मृति-रक्षा के लिए और कोई प्रयत्न किया गया हो तो मुझे पता नही।

अभी कुछ दिन पहले श्रद्धेय राजा रणजय सिंह (अमेठी के राजा) ने अपने एक पत्र मे इस बात पर खेद प्रकट किया था कि 'शकर सर्वस्व' पुन प्रकाशित नही हो सका। स्वय भाई हरिशकर जी के भी कई ग्रन्थ ऐसे हैं जिनकी गणना हिन्दी के स्थायी साहित्य मे होनी चाहिए पर उनके नवीन सस्करण प्रकाशित ही नहीं हो सके।

25

मेरे पूज्य

यह भी एक आकस्मिक घटना ही समझिये कि मैं उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी के अनेक विद्वानो, कवियो, लेखको और कार्यकर्त्ताओ के सम्पर्क मे आ सका। श्रद्धेय काका साहब कालेलकर के साथ तो मैं साबरमती आश्रम मे रहा ही था। वह भारत के सास्कृतिक राजदूत थे और मराठी, गुजराती, हिन्दी, सस्कृत और अग्रेजी के महान् पण्डित थे। हिन्दी का जितना प्रचार उन्होने किया उतना राजर्षि टण्डन जी को छोडकर और शायद ही किसी ने किया हो। वह मौलिक लेखक भी थे और महात्मा गाधी के अनन्य भक्त भी। उनके लेखो तथा नोटो का यदि सग्रह किया जाये तो वह कम से कम 25 बडी जिल्दो मे आवेंगे। जितने विषयो पर अधिकारपूर्ण ढँग से उन्होने कलम चलायी थी उतने विषयो पर हिन्दी जगत् मे शायद ही किसी ने लिखा होगा। गुजराती और मराठी भाषा के तो वह शैलीकार ही माने जाते थे। वह बडे स्पष्टवादी व्यक्ति थे और खरी बात कहने मे कभी नही चूकते थे।

आचार्य श्री जे० बी० कृपलानी गिडवानी जी के बाद गुजरात विद्यापीठ के प्रिंसिपल बने थे। अपने हास्य और व्यग्य के लिए वह तब भी प्रसिद्ध थे, काँग्रेस के तो वह जाने-माने नेता थे ही।

प्रोफेसर मलकानी जी भी हमारे साथ ही थे। अछूतो के लिए उन्होने बहुत काम किया था। मेहतरो के कार्य के बारे मे सरकार ने जो कमेटी बनायी थी, उसके वह प्रधान थे। यह बडे खेद की बात है कि उन जैसे रचनात्मक कार्यकर्त्ता को हम लोग बिल्कुल भूल गये। उनके स्वर्गवास पर केवल काका साहब कालेलकर ने अवश्य लिखा था।

बन्धुवर हरिभाऊ उपाध्याय तो मेरे साथ आश्रम मे रहे ही थे। वह मराठी और गुजराती से हिन्दी मे अच्छा अनुवाद कर लेते थे और उन्होने शिक्षाप्रद तथा उपयोगी साहित्य की रचना की थी। अजमेर राज्य मे वह मुख्यमत्री रहे थे और राजस्थान सरकार के वित्तमत्री भी। सस्ता साहित्य मण्डल ने उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित किये थे। मेरे द्वारा स्थापित नयी दिल्ली के हिन्दी भवन के लिए राजस्थान सरकार से उन्होने काफी आर्थिक सहायता दिलवायी थी। गाधी जी की विचारधारा के वह सुयोग्य समीक्षक थे। वह बडे विनम्र व्यक्ति थे। जब मैं राजस्थान प्रान्तीय पत्रकार सम्मेलन का प्रधान बनकर जयपुर गया था तो मुझे लेने के लिए वह पौने पाँच बजे प्रात स्टेशन पर पहुँच गये थे और उन्होने मुझे अपने पास ही ठहरा लिया था। उनके अनुज स्वर्गीय मार्त्तण्ड जी से भी मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था।

स्व० सम्पूर्णानन्द जी से तो मेरा परिचय सन् 1915 से ही था, जबकि वह विज्ञान-शिक्षक के रूप मे राजकुमार कॉलिज इन्दौर मे पधारे थे। मैं वहाँ साल-भर पहले से ही हिन्दी अध्यापक था। ढाई वर्ष हम लोगो का साथ रहा। उन दिनो की स्मृतियाँ बडी मधुर हैं। श्री सम्पूर्णानन्द जी उच्च कोटि के विद्वान् थे और अनेक विषयो के विशेषज्ञ भी। वह उच्च मानसिक धरातल पर रहने वाले व्यक्ति थे और बौद्धिक अभिमान की भी उनमे अच्छी मात्रा थी। बहुत कम लोगो को वह अपना मित्र बना सकते थे। जिनसे वह खुलकर बात-चीत या पत्र-व्यवहार कर सकते थे, ऐसे आदमियो की सख्या तीन-चार से अधिक नही रही होगी। वह घोर परिश्रमी और अत्यन्त सयमी व्यक्ति थे। उन पर अनेक गार्हस्थिक विपत्तियाँ पडी पर उन्होंने धैर्य कभी नही छोडा। हिन्दी के सुप्रसिद्ध हास्य रसाचार्य स्व० अन्नपूर्णानन्द जी उनके मँझले भाई थे और उनके सबसे छोटे भाई श्री परिपूर्णानन्द जी हैं जिनके महत्त्वपूर्ण लेख हिन्दी तथा अग्रेजी पत्रो मे प्राय निकला करते हैं। सम्पूर्णानन्द जी अत्यन्त नि स्वार्थ कार्यकर्त्ता थे। जीवन के अन्त में वह राजस्थान के राज्यपाल भी रहे थे। उत्तर प्रदेश के शिक्षा मत्री भी थे। मुख्यमत्री तो रह ही चुके थे।

26

मै जिनका ऋणी हूँ

पूज्य माता-पिता के ऋण से तो कोई यावत् जीवन उऋण हो ही नही सकता, इस कारण कक्का और अम्मा का जिक्र यहाँ नही कर रहा। उनके विषय मे अलग से इस पुस्तक मे लिखा जा चुका है। जब मैंने 1906 मे हिन्दी मिडिल पास किया उस समय फीरोजाबाद मे एक मिशन स्कूल था जिसमे मिडिल तक ही पढाई होती थी। मैट्रिक तथा आगे की पढाई के लिए आगरे जाना पडता था। चूँकि पूज्य पिता जी को औसतन दस रुपये मासिक वेतन मिलता था और सम्पूर्ण कुटुम्ब का बोझ उन पर था इसलिए मुझे पढाई के लिए आगरा भेजना उनके लिए असम्भव था। उस सकट के समय मेरे मौसा चौबे चौखेलाल जी ने ग्यारह रुपये मासिक की सहायता देकर मुझे आगरे पढने के लिए भिजवाया था। उन दिनो के ग्यारह रुपये का मूल्य आजकल सौ-सवा सौ रुपये के बराबर तो होगा ही। उनकी सहायता चार वर्ष तक जारी रही। सन् 1913 मे मैने इण्टर परीक्षा पास कर ली। मौसा का विचार मुझे आगे पढाने का भी था पर चूँकि मेरा विवाह कई वर्ष पहले हो चुका था इसलिए मैंने नौकरी करना उचित समझा। अगर मौसा मुझे एफ० ए० पास नही करा देते तो मैं कही तार बाबू या टिकट कलक्टर ही बन सकता था। इण्टर पास करने के कारण मुझे फर्रुखाबाद गवर्नमेण्ट हाईस्कूल मे तीस रुपये मासिक पर अध्यापन कार्य मिल गया। मैं मौसा के इस ऋण से कभी उऋण नही हो सकता।

सरक्षको के मामले मे मैं अत्यन्त सौभाग्यशाली रहा। आगे चलकर मुझे दीनबन्धु ऐण्ड्रूज, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ, महात्मा गाधी, महाराज वीरसिह जू देव ओरछेश का सरक्षण प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् कांग्रेस की कृपा से मुझे बारह वर्ष के लिए राज्यसभा की सदस्यता मिल गयी, जिससे मेरी आर्थिक चिन्ता दूर हो गयी। दलगत राजनीति से मैं सदैव दूर रहा था और राज्यसभा के बारह वर्ष मैंने शहीदो के श्राद्ध तथा क्रान्तिकारियो की कीर्ति-रक्षा मे बिता दिये। कांग्रेस के पदाधिकारी मेरे कार्य से सन्तुष्ट थे और उन्होने मुझे कार्य करने की पूरी स्वाधीनता दे रखी थी। बहुत वर्षों तक श्रीमन्नारायण जी कांग्रेस के महामत्री थे। उनकी ननसाल हमारे नगर फीरोजाबाद मे ही थी और वह मुझे घर का बुजुर्ग ही मानते थे। उन्होने दो बार सार्वजनिक सभाओ मे इन्ही शब्दो मे मुझे सम्बोधित किया था।

प्रवासी भारतीयो तथा शहीदो का कार्य इतना व्यय-साध्य था कि वह मेरे वेतन से चल नही सकता था। पोस्टेज, टाइपिंग तथा स्टेशनरी पर काफी व्यय करना पडता था। मेरा घर भिन्न-भिन्न पार्टियो के

व्यक्तियों के लिए खुला हुआ था। सभी दलो के व्यक्तियो के स्वागत तथा आतिथ्य का सौभाग्य मुझे प्राप्त होता रहता था। इस विषय मे भाई सीताराम जी तथा भाई भागीरथ जी कानोडिया की सहायता मुझे बराबर मिलती रहती थी। जब 1964 मे मैं पार्लियामेण्ट से रिटायर हुआ, मेरे पास बैंक मे कुल जमा 1346 रुपये थे जिनमे 1000 रु० भाई सीताराम सेकसरिया के थे।

अपने दिल्ली निवास के बारह वर्षों मे मुझे हिन्दी भवन के लिए, जिसकी स्थापना मैंने 1953 मे की थी, काफी चन्दा करना पडा। श्रद्धेय जुगलकिशोर बिडला तथा उनके अनुज सेठ घनश्याम दास बिडला से मुझे 1600 रुपये प्राप्त हुए थे। हिन्दी भवन के दो कमरो का किराया इतना ज्यादा था कि उसको अदा करना मेरे लिए अत्यन्त कठिन हो जाता था। पहले महीने के किराये के लिए मैंने 100 रुपये भाई राजेश्वर प्रसाद नारायण सिह से लिये थे और उन्होने 100 रुपये अपने अग्रज श्री चन्द्रेश्वर प्रसाद नारायण सिह, वर्तमान राज्यपाल उत्तर प्रदेश, से दिलवाये थे। बहिन सत्यवती मलिक हिन्दी भवन की मत्री थी और आगन्तुको के आतिथ्य की सारी जिम्मेदारी उन्ही पर पडती थी।

11 वर्ष तक हिन्दी भवन का सचालन करने के बाद मैने उसे श्री बाँके बिहारी भटनागर को सौंप दिया और कई वर्ष तक वह उसे चलाते रहे।

1964 मे मैं अपने घर फीरोजाबाद लौट आया। यहाँ के साहित्यिक कार्यों मे सबसे अधिक आर्थिक सहायता मुझे भाई बालकृष्ण गुप्त से मिली। वह मेरा जन्म-दिवस हर वर्ष मनाया करते है और मेरे द्वारा किये गये साहित्यिक उत्सवो का व्यय-भार वह ही वहन करते है और सहर्ष। प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिए उन्होने अपने पास से लगभग 5000 रुपये खर्च कर दिये थे और मेरी पिछली वर्षगाँठ पर भी चार हजार रुपये। मेरे अतिथियो के आतिथ्य तथा आवभगत का भार तो उन्होने ले लिया है। मेरे आवागमन के लिए उनकी कार सदैव प्रस्तुत रहती है। वह साहित्यिक रुचि के व्यक्ति है और कविवर रग जी के सरक्षक भी। उनकी यह सेवा सर्वथा नि स्वार्थ भाव से ही होती है। यद्यपि इस नगर मे उनके मुकाबले के और उनसे ज्यादा भी कितने ही साधन-सम्पन्न उद्योगपति है पर उनमे गुप्त जी जैसा साहित्यिक तथा सांस्कृतिक प्रेम नही पाया जाता। हाँ, ऐसे व्यक्ति और भी हैं, जिनसे समय-समय पर मुझे सहायता मिली है जैसे चन्द्रकुमार जैन और चन्द्रभान मीतल। मेरी प्रार्थना पर भाई चन्द्रकुमार जी ने कई बार साहित्यिक तथा राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ को सहायता दी थी और श्री मीतल जी ने शहीद अशफाकुल्ला खाँ के भाई रियासततुल्ला खाँ के स्वर्गवास पर 250 रुपये भेजे थे। हमारे नगर के अन्य पूँजीपति भी दान करते होगे पर उसकी जानकारी न होने के कारण मैं उनका नामोल्लेख नही कर सकता। मेरे पिता जी प्राय कहा करते थे

जो तृन सम उपकार को जानत सदृश पहार।
ऐसे सुजन कृतज्ञ की होत न कबहूँ हार।।

महाराज वीरसिह जू देव ने तो बहुत वर्षों तक मेरी आर्थिक सहायता की थी और मुझे आश्रय भी प्रदान किया था। उनकी सहायता से ही मैं एक कच्चा मकान खरीद सका। मेरे बच्चो की शिक्षा के लिए वह नियमित रूप से कई वर्षों तक आर्थिक सहायता भेजते रहे थे। उनकी ही सरक्षकता मे मैंने कुण्डेश्वर (टीकमगढ) मे साढ़े चौदह वर्ष बिताए। यदि मैं वहाँ न रहता होता तो राज्यसभा का सदस्य भी नही बन सकता था। उनकी दी हुई 250 रुपये मासिक पेंशन मुझे मध्य प्रदेश सरकार से आज भी मिल रही है।

किसी भी भारग्रस्त कार्यकर्त्ताओ को बीसियो व्यक्तियो से सहायता लेनी पडती है। मुझे

डॉ० शिवप्रसाद जी गुप्त, सेठ जमनालाल जी बजाज तथा श्रद्धेय घनश्यामदास बिड़ला इन तीनों का ही कृपा-पात्र होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुप्त जी ने स्वय ही बिना मेरे लिखे 50 रुपये मासिक तब तक के लिए भेजने का क्रम जारी रखा था जब तक मुझे नौकरी नही मिल गयी। साबरमती मे मेरे प्रवासी भारतीयो से सबधित कार्यों के लिए 250 रुपये मासिक सेठ जमना लाल बजाज से मुझे मिलता रहा था। बिड़ला जी ने दीनबन्धु ऐण्ड्रूज प्रेस के लिए मुझे 2000 रुपये दिये थे। इनके अतिरिक्त छुटपुट सहायता भी मुझे कभी-कभी मिलती रही है जैसे भाई सोहन लाल जी पचीनिया ने मुझे 50 रुपये महीने साल भर-तक भेजे थे।

बहुत-सी आर्थिक सहायता मुझे बिना मांगे ही मिली है, यद्यपि कभी-कभी याचना भी करनी पड़ी है। सार्वजनिक कार्यों के लिए याचना करने मे मैं कोई बुराई नही समझता पर अपने लिए मांगना तो विषपान की तरह है। फिर भी मेरे मन मे एक सतोष है कि मैंने पैसा जमा नही किया। किसी भी गृहस्थ के लिए पैसा जमा करना अनिवार्य है, पर मैं गृहस्थ धर्म का पालन न कर सका। इसे मैं अपने लिए एक जघन्य अपराध ही मानता हूँ।

27

नवयुवकों से

अपने 71 वर्षीय लेखक जीवन मे अवश्य ही मुझे कुछ अनुभव ऐसे हुए हैं जिन्हे मैं नवयुवको तक पहुँचा देना चाहता हूँ। मुझसे कुछ ऐसी गलतियाँ भी हुई हैं जिनकी चर्चा करके मैं नवीन लेखको को सावधान कर देना चाहता हूँ।

पत्रकारिता के क्षेत्र मे प्रवेश करने तथा सफलता प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका है—'स्पेशियलाइ-जेशन', यानी किसी विषय का विशेषज्ञ बन जाना। पत्रकारिता के जीवन मे सफलता का दूसरा 'गुर' है—लोक-सग्रह। क्षेत्र के प्रभावशाली नेताओ तथा प्रभावशाली कार्यकर्त्ताओ से परिचय प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। मुझे अपने पत्रकारी जीवन मे सर्वश्री महावीर प्रसाद द्विवेदी, सी० वाई० चिन्तामणि, पद्मसिह शर्मा, गणेशशकर विद्यार्थी तथा पण्डित सुन्दरलाल जी से बडी सहायता मिली थी।

प्रतिभाशाली व्यक्तियो से प्रारम्भ से ही सम्बन्ध स्थापित कर लेना आगे चलकर लाभदायक होता है। मैंने लाला लाजपतराय जी के 'पीपुल' पत्र मे बिलफ्रेड वैलक का एक लेख पढा था। वह मजदूर दल की ओर से विलायत मे पार्लियामेण्ट के मेम्बर चुने गये थे और उन्होने अपने अनुभवो पर एक लेख लिखा था। मैंने तुरन्त ही एक पत्र वैलक साहब की सेवा मे भेजा जिसका आशय यह था "आपके महत्त्वपूर्ण विचार देशी भाषाओ के पत्रो तक पहुँचने चाहिए। अग्रेजी पत्र तो केवल चुने हुए व्यक्तियो तक ही पहुँचते हैं।" वैलक साहब को मेरा विचार पसन्द आया। इसके साल-भर बाद मुझे 'विशाल भारत' का सम्पादक बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और तब विलफ्रेड का परिचय मेरे लिए बडा लाभदायक सिद्ध हुआ। उन्होने 'विशाल भारत' के लिए बारह-तेरह लेख भेजे और पारिश्रमिक भी नाम मात्र का ही लिया था यानी प्रति लेख एक पौण्ड। मैंने उनका सचित्र परिचय 'विशाल भारत' के द्वितीय अक मे छाप दिया था।

'नवीन लेखको से निवेदन' नामक एक लेखमाला भी मैंने 'मधुकर' मे शुरू की थी जिसके केवल चार लेख छपे थे। उसे पूरी करके पुस्तिका के रूप मे छपा देने का विचार है।

मेरे पास हर सप्ताह नवीन लेखको के पत्र आते ही रहते हैं। जिनमे वह परामर्श देने का अनुरोध करते हैं। मैं अब तक ऐसे पत्रो का उत्तर देता रहा था पर अब असम्भव हो गया है। विलायत के सुप्रसिद्ध लेखक हैवलॉक एलिस के पास भी ऐसे बीसियो पत्र आते थे। उन पत्रों मे पूछे गये प्रश्नो पर जब एलिस साहब का कोई ट्रैक्ट छपता तो वह उसकी प्रति उन्हे भेज देते। पत्र-व्यवहार पर कम से कम 60-70 रुपये महीना मेरा खर्च होता है और अब सब पत्रो की स्वीकृति भेजना भी आर्थिक दृष्टि से असह्य हो गया है।

28

महत्त्व की खोज

संस्कृत का एक श्लोक है—

"घृतमिव पयसि निगूढ भूते-भूते च वसति विज्ञानम् ।
सततैमन्थतव्यम् मनसा मान दण्डेन ॥"

अर्थात् जिस तरह घी दूध मे छिपा हुआ है, उसी प्रकार समझ-बूझ प्रत्येक प्राणी मे छिपी हुई है । उसे मन-रूपी मथनिया से निरन्तर मथकर निकाल लेना चाहिए । इस दृष्टिकोण से यदि हम विचार करे तो हमे तथाकथित छोटे-छोटे व्यक्तियो मे भी महत्त्व के गुण दीख पडते है । अभी कुछ दिन हुए पत्रो मे एक समाचार छपा था । एक जेबकट ने किसी की जेब से 500 रुपये के नोट काट लिये पर एक दिन उसने एक चिट्ठी लिखकर उन्हे वे रुपये लौटा दिये। चिट्ठी मे उस जेबकट ने लिखा था "आपके नोटो के साथ एक चिट्ठी भी थी जिसमे ज्ञात हुआ कि आप 500 रुपये किसी से लडकी की शादी के लिए उधार लाये है । मै कई दिन से भूखा हूँ इसलिए 100 रुपये रखकर बाकी रुपये ज्यो के त्यो लौटाता हूँ ।" निस्सदेह उस जेबकट ने एक समझ-बूझ का काम किया । उसका प्रायश्चित्त उसके अपराध से अधिक महत्त्वपूर्ण है । हमारे आसपास प्रत्येक ग्राम अथवा नगर मे ऐसी बीसियो घटनाएँ घटा करती है जिनमे परोपकार तथा सेवा के उल्लेख योग्य दष्टान्त उपस्थित होते हैं पर जिनकी रिपोर्ट समाचारपत्रो मे कभी नही छपती । हमारे नगर फीरोजाबाद के एम० आर० के० कॉलेज के वयोवृद्ध चपरासी का लडका मरणासन्न था और खाट से जमीन पर ले लिया गया था । जब यह समाचार कॉलेज के विद्यार्थियो को मिला, उन्होने आपस मे 60 रुपये चन्दा करके तुरन्त ही उसका इलाज कराया और 6-7 दिन की चिकित्सा के बाद वह बिल्कुल ठीक हो गया । इसकी खबर किसी अखबार मे नही छपी । यदि अपहरण और बलात्कार का मामला होता तो सभी पत्र उसे छाप देते ।

हम लोगो को अपने जीवन मे नित्य प्रति साधारण व्यक्तियो मे भी अनुकरणीय गुण दीख पडते है । आवश्यकता इस बात की है कि हम गुणो की कद्र करे ।

साबरमती आश्रम की एक घटना मुझे याद आ रही है । बापू प्रत्येक व्यक्ति से उसकी सामर्थ्य के अनुसार काम ले लेते थे । आश्रम के एक लूले-लगडे सज्जन को यह काम सौपा गया था कि वह दूध लेने वालो को समय पर दूध दे और उसका हिसाब रखें । वह नियम-पालन मे इतने कठोर थे कि उन्होने माता कस्तूरबा को भी दूध देने से इन्कार कर दिया था क्योकि वह निश्चित समय से कुछ देर से पहुँची थी । और पूज्य 'बा' ने

इस बात का बुरा भी नही माना था।

फ़ीरोज़ाबाद के एक मज़दूर बाज़ खाँ को हम 15-20 वर्ष से जानते हैं। इसी बीच वह बहुत बार हमारे यहाँ काम कर चुका है। वह हमेशा समय से घण्टे-भर पहले आता है और घन्टे-भर बाद जाता है। यही नही, वह साथी-सगी मज़दूरो पर नियत्रण रखता है।

मुझे अपने विस्तृत जीवन मे पचासो ही बडे-बडे कार्यकर्ताओ के साथ काम करने का अवसर मिला, और उनमे हमने नि स्वार्थ सेवा, त्याग और बलिदान के अनेक गुण देखे हैं। स्वर्गीय नारायणदास खरे और स्वर्गीय प्रेमनारायण खरे अत्यन्त साधारण स्थिति के व्यक्ति थे। नारायणदास खरे साम्यवादी विचारो के अनुयायी थे और उनका कहना था कि "मैं नित्य प्रति भोजन पाने को ही स्वराज्य-प्राप्ति मानता हूँ। यदि मुझे आज का भोजन आज मिल जाता है तो मैं मानता हूँ कि मुझे स्वराज्य मिल गया है।" जब तक खरे जी को किसी तथाकथित निम्न-जाति-जाटव या बाल्मीकि के घर पर भोजन मिल जाता तब तक वह किसी अच्छे जातीय के यहाँ भोजन नही करते थे।

ओरछा राज्य मे अत्याचारो के प्रति विद्रोह करते हुए वह शहीद हुए। सुना है कि ठाकुरो ने उन्हें गोली से उडा दिया था। वह मेरे पास प्राय आया करते थे। एक बार मैंने उनसे पूछा, "अगर ओरछा राज्य मे उत्तरदायी शासन हो जाये और आपको मन्त्री पद मिले तो आप क्या करेंगे?" उन्होने तपाक से जवाब दिया, "मैं अपने वेतन पर तुलसी दल रख दूंगा और उसे सार्वजनिक कार्यों के लिए दान कर दूंगा। पर अपना काम मैं 20-25 रुपये किसी मज़दूरी से कमाकर चला लूंगा।" जब खरे जी शहीद हुए तो हमारे पास के गाँव के साधारण व्यक्ति भी बहुत दुखित थे। एक मेहतरानी ने स्वय मुझसे कहा था, "अभी दो-तीन दिन पहले खरे जी ने हमारे यहाँ भोजन किया था।"

भाई प्रेमनारायण खरे जी जीवन-भर सघर्ष करते रहे और उत्तरदायित्वपूर्ण शासन मिलने पर भी उन्होने कोई पद ग्रहण नही किया। अछूतो का काम करते हुए दिल का दौरा पडने पर उनका अकस्मात् देहान्त हो गया।

आये दिन हमारे देश मे साम्प्रदायिक दगे हुआ करते है। उनकी लम्बी-चौडी रिपोर्ट अखबार मे छप जाती है। इन उपद्रवो मे कभी-कभी ऐसे उदाहरण भी सामने आते हैं कि एक हिन्दू ने मुस्लिम स्त्री-बच्चों और एक मुसलमान ने हिन्दू परिवार को सुरक्षित रखा है। स्वय हमारे भानजे चि० डॉ० मिथिलेशचन्द्र ने पडोसी मुस्लिम कुटुम्ब को अपने साथ ले जाकर मुस्लिम मुहल्ले मे पहुँचा दिया था जबकि कर्फ्यू लगा हुआ था और बाहर जाना खतरे से खाली न था।

यह दुनिया पारस्परिक सहयोग पर कायम है और नित्य प्रति उदारतापूर्ण घटनाएँ घटती रहती हैं। इस प्रसग मे हमे तुर्गनेव का एक गद्य याद आ रहा है। एक किसान की पत्नी पति से कह रही है, "यदि हम उस अनाथ लडकी को घर मे रखेंगे तो बडी आर्थिक कठिनाई उपस्थित हो जायेगी। हमारे घर मे नमक भी नही है।" किसान ने उत्तर दिया, "कोई परवाह नही है, हम अलोना ही खा लेंगे। पर उस अनाथ लड़की को तो आश्रय देना ही है।" ससार मे बीसियो धन-कुबेर पडे हुए हैं पर इस किसान की उदारता के सामने रॉथ्स चाइल्ड और कारनेगी की दानशीलता फ़ीकी पड जाती है।

अपने 71 वर्षीय लेखक जीवन मे मैं बीसियो ही लेखको, कवियो तथा कार्यकर्ताओ के सम्पर्क में आया हूँ और, कुछ छोटे-मोटे कार्यकर्ताओ के शब्द-चित्र भी मैंने उपस्थित किये हैं। कौन महान् है और कौन

क्षुद्र इसका निर्णय करना कोई आसान नही है। सम्पादकाचार्य द्विवेदी जी से लेकर सात रुपये वेतन पाने वाले अध्यापक देवीदयाल गुप्त के रेखाचित्र मैंने उपस्थित किये थे। महाकवि रत्नाकर की सेवा मे नित्य प्रति 12 दिन तक उपस्थित होकर मैंने उनका जीवन वृत्त पूछा था। स्वर्गीय सैयद अमीर अली मीर तथा पीर मुहम्मद यूनिस के स्केच तथा पत्र मैंने छापे थे। अपने 'सस्मरण' नामक ग्रन्थ मे मैंने प्रेमचन्द जी तथा नाथूराम प्रेमी प्रभृति के विषय मे लेख लिखे थे। यदि हम आँख खोलकर चलें तो हमे उदारता तथा भलमनसाहत के अनेक उदाहरण कदम-कदम पर मिले हैं, मिलेंगे।

● आचार्य श्री द्विवेदी के निवास स्थान की यात्रा मैने तीन बार की थी। प्रथम यात्रा मे मुझे एक मरघिल्ली गाय उनके दरवाजे पर दीख पडी जिसके सामने हरी घास पडी हुई थी। अपनी नासमझी के कारण मैं द्विवेदी जी से पूछ बैठा, "यह गाय आपने क्यो पाल रखी है?" द्विवेदी जी बोले, "चौबे जी, इस गाय ने हमे वर्षों तक दूध पिलाया है। इसलिए वृद्धावस्था मे हम इसका पालन-पोषण कर रहे है।" द्विवेदी जी के ग्राम के निकट के एक प्रतिष्ठित वैद्य मिले थे। उन्होने मुझसे कहा, "अपनी जिन्दगी मे मैने अनेक राजाओ तथा ताल्लुकेदारो का इलाज किया पर द्विवेदी जी जैसा कृतज्ञ मरीज मुझे जिन्दगी मे नही मिला। जब यह बम्बई से मन्दाग्नि लेकर लौटे थे तो मैंने इन्हे अपने इलाज से आराम पहुँचाया था। इसे बहुत वर्ष बीत गये पर यह हर वर्ष जाडे के दिनो मे मुझे कपडे बनवा दिया करते है।" बहुत कम लोगो को इस बात का पता होगा कि 'कल्याण' के सस्थापक स्वर्गीय हनुमान प्रसाद पोद्दार ने निराश्रितो तथा सकटग्रस्तो की सहायता मे एक करोड रुपये खर्च कर दिये थे। स्वय उनके पास तो अधिक पैसा था नही पर वह दूसरो से दिलवा दिया करते थे। भाई सीताराम सेकसरिया भी बडे उच्च कोटि के दानी थे और उनके साथी भाई भागीरथ जी कनोडिया तो अपना नाम भी प्रकट कर देने के पक्ष मे नही थे। इन दोनो ने लेखको, कवियो, कार्यकर्ताओ और सस्थाओ की सहायता लाखो रुपयो से की थी। व्यक्तिगत रूप से मै इन दोनो का अत्यन्त ऋणी हूँ। इन दोनो का हाल ही मे स्वर्गवास हुआ है। स्वर्गीय शिवकुमार गुप्त ऐसे दानी थे कि दान देकर बिल्कुल भूल ही जाते थे। उन्होने एक पत्र मे मुझे लिखा था कि जब तक आपको कोई नौकरी नही मिलती, 50 रुपये महीने बराबर आपको भेजता रहूँगा। यह क्रम 7 महीने तक जारी रहा। जब मुझे 'विशाल भारत' का काम, अक्तूबर सन् 27 मे मिला, तब कलकत्ते की यात्रा के लिए 50 रुपये उन्होने ही भेजे थे। जब गुप्त जी बीमार थे तो मैंने यह बात श्री अन्नपूर्णानन्द को लिख भेजी थी। उन्होने जब इसका जिक्र किया तो वह बोले, "चौबे जी यह क्या बात लिखते है। मुझे तो ख्याल भी नही पडता कि मैंने कभी चौबे जी की कुछ मदद की थी।" अनेक क्रान्तिकारियो की सहायता भी उन्होने की थी। उन्होने 1200 रुपये गणेश जी को काकोरी केस के लिए भेज दिये थे।

हमारे देश मे सहस्रो ही स्वतन्त्रता-सग्राम सेनानी ऐसे हुए है जिन्होने अपने जीवन स्वाधीनता की बलिवेदी पर अर्पित कर दिये पर जिनका कोई नाम भी नही जानता। विदेशो मे अनजाने योद्धाओ की स्मृति रक्षा के लिए स्तम्भ खडे किये जाते हैं। अपनी बिहार यात्रा मे मैने सिवान जिले के एक गाँव मे सात शहीदो की यादगार मे एक स्तम्भ देखा। अकेले चम्पारन मे 52 शहीद हुए थे और उनकी सूची एक पत्र मे छपी थी। पटना सेक्रेट्रिएट के सामने शहीद हुए 7 बालको की भव्य मूर्तियाँ भारत के एक महान् कलाकार (मूर्तिकार) ने बनायी थी।

अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद की माता जी तो चौदह दिन तक हमारी अतिथि ही रही थी। उनके 5 बच्चे हुए थे जिनमे 4 पहले जा चुके थे और पाँचवें चन्द्रशेखर आजाद भी शहीद हुए थे। वह

17 वर्ष तक भूखो मरती रही थी। कोदो की खिचडी सबेरे बना लेती थी, वही शाम को भी खाती थी। जब झाँसी मे आज़ाद को शरण देने वाले मास्टर रुद्रनारायण माता जी की सेवा मे भावरा ग्राम मे पहुँचे तो माता जी ने उनकी लडकी के लिए एक रुपया दिया और आठ आने आज़ाद को बर्फी खिलाने के लिए भी दिये। तब तक आज़ाद जीवित थे उन्होने अपनी दो उँगलियाँ सुतली से बाँध रखी थी और यह प्रण लिया था कि जब कोई आज़ाद की खबर देगा तब उन्हे खोलूँगी। उन्होंने पुत्र के जीवित होने का समाचार पाकर उँगलियाँ खोल दी थी। कुण्डेश्वर मे हमारे निवास स्थान पर वह रही थी, तब भोजन बनवाने मे मदद देती थी। अपने एक पुत्र, जो आज़ाद से बडा था, के मरने पर वह सिर पटक-पटककर इतना रोयी थी कि उनकी एक आँख ही जाती रही थी। और वह दृश्य भी मैने अपनी आँखों से देखा था जबकि सातोर नदी के तट पर स्थित उस कोठरी मे मै उन्हे ले गया था जहाँ फरारी के दिनो मे आज़ाद रह रहे थे। मास्टर रुद्रनारायण ने इस घटना के दिनो का ज़िक्र उनसे कर दिया था और वहाँ भी वह सिर पटक-पटककर रोयी थी और कहती थी "चन्दू यही कही छिपा होगा, आता क्यो नही ?"

पूज्य माता जी ने अपने पाँचो बच्चो के चले जाने के बाद दिन कैसे काटे, उसकी कथा बडी हृदय-वेधक है। उनके अन्तिम वर्षों म स्वर्गीय भगवानदास माहौर तथा भाई सदाशिवराव जी ने उनकी जो सेवा की वह अत्यन्त प्रशमनीय है। उनकी माता जी अक्सर कहा करती थी, "अगर चन्दू जिन्दा रहता तो भी वह मेरी सेवा सदू (सदाशिवराव) से अधिक नही कर पाता।" माता जी की इच्छा किसी बालक के विवाह मे 'बन्ना' गाने की थी और उन्होने मुझसे आग्रह किया था कि चि० बुद्धिप्रकाश जी की शादी मे मुझे जरूर बुलाना। खेद की बात है कि मै यह भूल गया और दूसरी बार जब माता जी पधारी तो उन्होने इस बात की शिकायत भी की।

पिछले इकहत्तर वर्षों मे मुझे बीसियो लेखको, कवियो, कार्यकर्त्ताओ और श्रमजीवियो के सम्पर्क मे आने के अवसर मिले है और उनमे मैने अनेक ऐसे गुण देखे है जो महापुरुषो मे पाये जाते है। उनका वर्णन करने से इस अध्याय का आकार बहुत बढ जायेगा अत इसे यही समाप्त करता हूँ।

29

मेरा दृष्टिकोण

प्रत्येक सजीव तथा प्रगतिशील व्यक्ति का एक दृष्टिकोण बन जाता है जिसे फिलासफी ऑफ लाइफ़ या जीवन-दर्शन कहते हैं। यद्यपि मैं सजीव होने का दम्भ नही करता और न अपने को कोई विशेष व्यक्ति ही मानता हूँ तथापि अपने इकहत्तर वर्षीय साहित्यिक जीवन मे किसी-न-किसी रास्ते पर चलता ही रहा हूँ और जीवन सघर्ष ने मुझे एक दृष्टिकोण प्रदान कर दिया है। वह कितना सही है और कितना गलत, यह प्रश्न ही दूसरा है।

अग्रेज़ी के महाकवि पोप ने कहा था "द प्रॉपर स्टडी ऑफ मैन काइड इज़ ए मैन।"

अर्थात् मानव-चरित्र ही किसी मनुष्य के लिए अध्ययन का उचित विषय है और हमारे यहाँ भी कहा गया है—"नाहि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्" यानी मनुष्य से ऊँची कोई चीज़ नही है।

मेरे क्षुद्र जीवन का एक मुख्य उद्देश्य मानव-चरित्र का अध्ययन ही रहा है, और मैंने अनेक जीवन-चरित लिखे हैं और पचासो ही रेखाचित्र प्रस्तुत किये हैं। साहित्य-सेवियो की कीर्ति-रक्षा और शहीदो के श्राद्ध मे छोटे-बड़े बीसियो ही मनुष्यो का चित्रण हुआ है। उनके चुनाव मे मैंने जाति, देश और धर्म का कोई भेद-भाव नही रखा। जहाँ मैंने कवीन्द्र रवीन्द्र तथा महात्मा गाधी, माननीय श्रीनिवास शास्त्री और श्री रामानन्द बाबू जैसे भारतीयो को श्रद्धाजलि अर्पित की है वहाँ इग्लैंड के एमर्सन, थोरो, गेरीसन, रूस के तुर्गनेव, टॉल्स्टॉय और गोर्की, फ्रास के रोमा रोलाँ, आस्ट्रिया के स्टीफन ज्विग, जापान के गाधी कागावा का भी गुणगान किया है। मेरी सर्वाधिक श्रद्धा दीनबन्धु एण्ड्रूज़ मे थी जो अग्रेज होते हुए भी विश्व नागरिक थे। प्रिंस क्रोपाटकिन को मैं महात्मा गाधी के समकक्ष मानता हूँ। मेरी दोनो किताबें 'हमारे आराध्य' और 'सेतुबन्ध' मेरे इस कथन का प्रमाण हैं। 'हमारे आराध्य' मे जो सत्रह रेखाचित्र है वे सब विदेशियो के हैं। इससे पाठको को पता लग जायेगा कि मेरा दृष्टिकोण उतना राष्ट्रीय नही, जितना अन्तर्राष्ट्रीय है।

दलगत राजनीति मे मेरी कोई रुचि नही है और किसी पार्टी की कठी या घटी अपने गले मे बाँधना मैं पसन्द नही करता। इसलिए मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था जब कांग्रेस की ओर से मेरा नाम राज्यसभा की सदस्यता के लिए रखा गया था। दिल्ली मे जो मेरे बारह वर्ष बीते उनका अधिकाश भाग शहीदो के श्राद्ध मे ही व्यय हुआ। दस वर्ष तक 'विशाल भारत' का सम्पादन करते हुए भी मैंने अपने को पार्टीबन्दी से सदा मुक्त रखा और अपने कठ की स्वाधीनता की रक्षा भी की। जब 'विशाल भारत' के मालिक श्रद्धेय रामानन्द

बाबू हिन्दू महासभा के सभापति चुने गये तो मैने उन्हीं के पत्र 'विशाल भारत' मे इसका विरोध किया था। बड़े बाबू की यह असीम उदारता थी कि उन्होंने बुरा नही माना।

सत्याग्रह आश्रम साबरमती मे मै ही अकेला ऐसा व्यक्ति था जो सरकार से सहयोग करता था। वह स्वाधीनता मुझे महात्मा जी ने दे रखी थी। उनका कहना था "रुपये-पैसे की जिम्मेदारी मेरी है और रहेगी पर नीति का निर्धारण करना तुम्हारे विवेक पर निर्भर है।" अहमदाबाद कांग्रेस के अवसर पर जब हकीम अजमलखाँ साहब साबरमती पधारे और मेरे कार्यालय के पास से गुजरे तो काका साहब कालेलकर ने मेरा परिचय कराते हुए उनसे कहा था "इस आश्रम मे यही एक कॉपरेटर (सहयोगी) है।" मै वहाँ चवन्नी का कांग्रेस का मेम्बर भी न था।

आश्रम मे मै चार वर्ष रहा और सरकार से बराबर सहयोग करता रहा। जब माननीय श्रीनिवास शास्त्री कनाडा तथा आस्ट्रेलिया की यात्रा से लौटे तो मै उनके दर्शनार्थ बम्बई गया था और फिर उनके आग्रह पर मुझे दिल्ली भी जाना पडा जहाँ मै उन्ही के साथ लॉ मेम्बर सप्रू साहब के निवास स्थान पर ठहरा था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि मिस्टर पोलक भी, जो दक्षिण अफ्रीका मे महात्मा जी के सहयोगी रहे थे, सरकार से सहयोग की नीति मे विश्वास करते थे। उन्ही के आदेश पर मैने भी श्री तेजबहादुर सप्रू साहब से सहयोग किया था। मैने उनसे मिलने के लिए बम्बई तथा प्रयाग की यात्रा की थी।

जब मै आश्रम मे था, कांग्रेस का अधिवेशन गाधी जी की अध्यक्षता मे बेलगाँव मे हुआ था। पर मै उसमे न जाकर लखनऊ के लिबरल फेडरेशन मे शामिल हुआ था। वहाँ मैने भाषण भी दिया था।

जब मै सर सप्रू साहब से मिलकर बम्बई से लौटा था तो महात्मा जी ने मुझसे उनसे हुई बातचीत का विवरण पूछा था। मैने उन्हें जनरल स्मट्स तथा सप्रू की झडप की बात सुना दी थी। महात्मा जी ने हँसते हुए कहा था, "जनरल स्मट्स मुझे जानता है और मै उसे जानता हूँ। वह सप्रू साहब जैसे व्यक्तियो को नगण्य मानता है।"

रूस की यात्रा का प्रस्ताव जब रूसी राजदूतावास के सास्कृतिक मत्री मिस्टर एफीमोव न मर सामने रखा तो मैने यही कहा, "मै अनारकिस्ट (अराजकतावादी) हूँ, मुझे आप क्यो भेजना चाहते हैं?" एफीमोव साहब बडे चतुर निकले। उन्होने तुरन्त ही कहा, "आप अराजकतावादी बने रहिए। हमारे यहाँ मास्को मे अखिल रूसी लेखको का जो सम्मेलन हो रहा है, उसमे आप दर्शक की हैसियत से जाइये और जैसा मन में आये, बोलिये।" मैने क्रेमलिन मे जो भाषण दिया उसमे साफ-साफ कह दिया, "मार्क्स और लेनिन के साथ-साथ आप क्रोपाटकिन और गाधी जी को भी लीजिए।" कृतज्ञतापूर्वक मुझे यह बात स्वीकार करनी पडेगी कि अपनी रूस यात्रा मे रूसी भाइयो ने मुझे पूरी-पूरी स्वाधीनता दी थी। क्रोपाटकिन के जन्म स्थान की मैने यात्रा की थी और उनकी समाधि पर भी मैने फूल चढाये थे। इस प्रकार नदी की धारा के विरुद्ध तैरने मे मुझे आनन्द मिलता रहा, पर कठ की यह स्वाधीनता (फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन) मुझे बहुत महँगी पडी। चरखे पे श्रद्धा न होने के कारण मैने गुजरात विद्यापीठ से इस्तीफा दे दिया था और महकमा बेकारी मे मुझे साढ़े तीन वर्ष काटने पडे थे। मेरी वह सनक सम्पूर्ण कुटुम्ब के लिए कष्टदायक सिद्ध हुई।

30

जीवन पर एक विहंगम दृष्टि

देखते-देखते मेरे जीवन के 90 वर्ष समाप्त हो चुके हैं। उन वर्षों पर जब विहगम दृष्टि डालता हूँ तो उससे सन्तोष तो कम होता है पर खेद अधिक। प्रारम्भ मे ही मैं एक बात कह दूं, वह यह कि मैं अपने बारे मे किसी भ्रम मे नही हूँ। यद्यपि मुझे विज्ञापन आवश्यकता से अधिक मिल गया है—जो विशिष्ट विषयो पर निरन्तर लिखने का ही परिणाम है--पर लम्बे समय और प्रचुर साधनो के देखते ठोस काम बहुत कम हुआ है। अगर कोई यह कहे कि बिडला, डालमिया और गोइनका ने अमुक व्यापार मे सौ सौ रुपये का मुनाफा किया है तो उसका वह कथन हास्यास्पद ही होगा। 71 वर्ष के लम्बे समय, अनेक महापुरुषो के सत्सग तथा साधनो की प्रचुरता की तुलना मे वह सेवा जो मुझसे बन पडी है गौरवप्रद नही मानी जा सकती।

हममे से प्रत्येक को अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे अपनी पिछली जिन्दगी का मूल्याकन बिना किसी रियायत के खुद ही करना चाहिए। महात्मा जी ने एक वाक्य में कहा है "आई एम परफॉर्मिंग ऐन ऑपरेशन विद ए हैड दैट मस्ट नॉट शेक,"—यानी मैं हाथ के कम्पन के बिना एक ऑपरेशन कर रहा हूँ।

कविवर बच्चन जी की एक पक्ति है "मै छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता।" बच्चन जी से क्षमायाचना करते हुए मैं इसे अपने पर यो लागू करता हूँ "मैं छिपाना जानता हूँ जग मुझे साधू समझता।" अपने बारे मे छपे प्रशसात्मक लेखो को पढकर मेरे मन मे यही धारणा उत्पन्न होती है कि अत्यधिक विज्ञापन—मैं उसे कीर्ति का भारी-भरकम नाम नही देता—लोगो को कितने भ्रम मे डाल सकता है। विलायत के एक महान् लेखक हेवलॉक एलिस ने लिखा था "कितने ही लोग चन्द्रमा की तरह अपने जीवन के शुक्ल पक्ष को ही जनता के सामने उपस्थित करते हैं और कृष्ण पक्ष को छिपाये रहते है।" बिना किसी, निजी प्रयत्न के यह उक्ति मेरे जीवन के बारे मे चरितार्थ होती रही है। प्रवासी भारतीयो की सेवा, साहित्यिको की कीर्ति-रक्षा, शहीदो का श्राद्ध तथा अनेक लोक-हितकारी आन्दोलनो के कारण मेरा नाम कई दशाब्दियो से निरन्तर जनता के सम्मुख आता रहा है। इसलिए मामूली पाठक का इस भ्रम मे पडना स्वाभाविक ही है कि मैं भी कोई बडा आदमी हूँ।

मेरे कार्यों की अधूरी सफलताओ के कई कारण हो सकते हैं। पहला कारण यह है कि मैं कोई निश्चित योजना बनाकर काम नही कर सका। जो काम सामने दीख पडा उसी मे जुट गया और पिछले आवश्यक तथा हाथ मे लिये गये कार्य उपेक्षित रह गये। दूसरा कारण यह भी है कि मैं ऐसे साथी-सगी या

सहयोगी नहीं जुटा पाता जो मेरे कार्य के पूरक हों। तीसरा कारण यह भी है कि मैं संस्थाओं के चक्कर मे फँस जाता हूँ। यद्यपि महात्मा गाधी और दीनबन्धु एण्ड्रूज ने मुझे बार-बार सावधान किया था कि सस्थाओं के मोह मे न फँसना और अपने समानशील दो-तीन साथी लेकर जो भी काम कर सको करना पर मैं सस्थाएँ स्थापित करता रहा जिसमे समय और शक्ति का बडा अपव्यय हुआ। चौथा कारण है कि मैं अपने निजी कर्त्तव्य तथा परोपकार के बीच कोई सामजस्य स्थापित नही कर सका। जीवन की सारी सफलता तथा सतुलन सामजस्य पर ही निर्भर है। बहुत-सी औषधियाँ ऐसी होती है कि जिनमे सन्निहित चीजो के अनुपात मे जरा-सी भी गडबड होने पर वे हितकारी होने के बजाय हानिकारक हो जाती है। अपने आन्तरिक तथा बाह्य सम्बन्धो मे सन्तुलन कायम रखते हुए आगे बढना मानो "तलवार की धार पै धावनो है।"

परोपकार की धुन मे मै अपनी मानस-सन्तान (ग्रन्थ इत्यादि) तथा औरस-सन्तान (बाल-बच्चे) की निरन्तर उपेक्षा ही करता रहा। अपने जीवन मे कम-से-कम एक लाख पत्र मैने लिखे ही होगे जिनमे से अधिकाश दूसरो के हित मे लिखे जबकि घरवाले मेरे पत्रो के लिए तरसते ही रहे हैं। किसी ने कहा था "बहुत से पत्र अपना उत्तर स्वय ही दे देते हैं।" उसका अभिप्राय शायद यही था कि अनावश्यक पत्रो का उत्तर न देना ही यथोचित उत्तर है। पर मैं अब तक प्राय प्रत्येक पत्र का उत्तर देता आ रहा हूँ। मजाक मे मैं अक्सर कहा करता हूँ, "डाकखाने हमारे जैसे मूर्खों के बलबूते पर ही चलते है। पोस्टेज का अपव्यय करने वालो की मूर्खता से ही डाकिये की तनख्वाह निकलती होगी।" यद्यपि मेरे द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण कवियो और लेखको के पत्र पुस्तकाकार अथवा मासिक पत्रो मे छप चुके है और वे जीवन-चरितो मे सहायक भी सिद्ध हुए है तथापि लोग इस बात का अन्दाज नही लगा सकते कि यह सेवा मुझे कितनी महँगी पडी है। मै पत्रो के विस्तृत उत्तर देने मे अपने को उलझाता रहा। यद्यपि इससे मेरा नाम पत्र-लेखन विधा मे अवश्य आ गया है तथापि यह सौदा बडे घाटे का हुआ है।

कालिदास ने एक जगह कहा है—"शरीरमाद्य खलु धर्म साधनम्" यानी धर्म साधन का मुख्य माध्यम शरीर ही है। पर मैं शरीर की यथोचित रक्षा के लिए अभी भी प्रयत्नशील नही हूँ। श्रद्धेय बाबा पृथ्वीसिह आजाद, जो इस विषय (शारीरिक स्वास्थ्य) के सबमे बडे विशेषज्ञ है, अक्सर मजाक मे कहते है कि "अगर महात्मा गाधी प्रतिदिन साढे तीन घटे शरीर-रक्षा को न देते तो उनके सम्पूर्ण आध्यात्मिक उपदेश हवा मे उड गये होते।" कुछ तो अपने प्रमाद के कारण और कुछ मजबूरियो की वजह से मेरा प्रात कालीन घूमना भी बन्द-सा ही है। जिस नगर, फीरोजाबाद, मे रहने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है वहा सडको पर निकलना या चलना खतरे से खाली नही है। मै जब कलकत्ते मे दस वर्ष, कुण्डेश्वर मे साढे चौदह वर्ष, दिल्ली मे बारह वर्ष और ज्ञानपुर तथा कोटद्वार मे क्रमश पाँच और तीन वर्ष रहा, मेरा टहलना नियमित रूप से चलता रहा, पर अपने जन्म-स्थान फीरोजाबाद मे आकर वह पूर्ण रूप से अव्यवस्थित ही हो गया, अब तो प्राय बन्द-सा ही है।

अपने कार्यालय की व्यवस्था मैं सुचारू रूप से कभी नही कर सका। महात्मा गाधी जी ने स्वर्गीय महादेव भाई देसाई के बारे मे लिखा था कि वह मेज को हमेशा साफ रखते थे, यानी पत्रो का उत्तर ठीक समय पर देकर हर काम उचित समय पर निबटा देते थे। पर मेरी मेज हमेशा अस्वच्छ ही रही है। अनेक आवश्यक पत्र अनुत्तरित रह जाते हैं जबकि गैर जरूरी चिट्ठियो के उत्तर चले जाते हैं।

इसका एक उदाहरण दे दूँ। मै विश्व के महान् लेखक, सुप्रसिद्ध फ्रासीसी विद्वान् रोमा रोलाँ से

पत्र-व्यवहार करना चाहता था । डॉ० कालीदास नाग से मैंने कहा था कि कृपाकर मेरी सिफ़ारिश रोमां रोलाँ से कर दीजिए कि मेरे प्रश्नो के उत्तर भेज दिया करें। नाग साहब ने साफ मना कर दिया। वह नही चाहते थे मै उस वृद्ध साहित्यसेवी को कष्ट दूं। तब मैंने दीनबन्धु एण्ड्रूज से सिफारिशी चिट्ठी लिखवाई। दीनबन्धु ने उन्हे लिखा था कि "हिन्दी भाषा मे आपका जीवन-चरित बनारसीदास चतुर्वेदी से बढ़कर कोई नही लिख सकता। आप इनके प्रश्नो के उत्तर भेज दिया कीजिए।" रोमा रोलाँ ने उनकी बात मान ली। तीन पत्र फ्रासीसी भाषा मे उन्होने मुझे लिखे। वह अग्रेजी नही जानते थे और उनकी बहिन अग्रेजी अनुवाद कर उन्हें सुना दिया करती थी। मेरे सामने रोमा रोलाँ के फ्रेंच पत्रो के अग्रेजी अनुवाद का प्रश्न आ खडा हुआ। 'मॉडर्न रिव्यू' के सुप्रसिद्ध पत्रकार नीरद चौधरी फ्रासीसी भाषा जानते थे। एक पत्र का अनुवाद उन्होंने कर भी दिया पर साथ ही मुझे डॉट भी पिलाई कि उस विश्वविख्यात बुड्ढे आदमी को क्यो तग कर रहा है? दुर्भाग्यवश इसी कारण उनके दो पत्रो का उत्तर मै नही दे सका। रोमा रोलाँ ने इस बात की शिकायत भी की थी। यदि मै भरपूर प्रयत्न करता तो कलकत्ते मे फ्रेंच भाषा जानने वाले विद्वान् मिल ही जाते। मै निराश होकर बैठ गया। इसी बीच मैने सैकडो ही पत्र मामूली आदमियो को लिखे होगे पर रोमा रोलाँ को पत्रोत्तर न दे सका।

सफलता का मूल मन्त्र है—सर्वप्रथम आवश्यक कार्य को करना—फर्स्ट थिग्स फर्स्ट—पर मै इस मूल मन्त्र को प्राय भूल ही जाता हूँ। नतीजा यह होता है कि जरूरी काम पडे रह जाते है। मैने किसी प्रसिद्ध लेखक के बारे मे पढा था कि वह दूसरे दिन के प्रात काल के स्वाध्याय की सामग्री रात को ही इकट्ठी करके रख देता था, ताकि समय की बचत हो जाये। मैने बीसियो बार इसकी प्रतिज्ञा तो की पर दूसरे दिन के लिए पाठ्य-सामग्री रख न सका।

अत्यन्त विज्ञापित होने के कारण मेरे पास प्रति मास पचासो ही पत्र आते है। उन्हे निबटाकर रद्दी की टोकरी मे डाल देने की बुद्धिमानी मैने कभी नही की। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कभी-कभी महीनो और वर्षों के अनुत्तरित पत्र निकल पडते हैं और वह मुझे अपनी अक्षम्य अव्यवस्था की याद दिला देते है।

उपयुक्त त्रुटियो के बावजूद कुछ सेवा पिछली सात दशाब्दियो मे मुझसे बन पडी है, यद्यपि वह विशेष महत्त्व नही रखती।

31

मेरा भावी कार्यक्रम

अपने भावी कार्यक्रम के बारे मे क्या कहूँ ? किसी कवि का कथन है

कर बैठे ऐन वक्त पर जो कुछ भी बन सका,
पहले से कोई बात दिल मे ठानते नही ।

मेरा जीवन तो प्राय इसी पद्धति पर चलता रहा है। अनेक आवश्यक कार्य वक्त पर न हो सके और अनावश्यक कामो मे उलझता रहा। पर जब जग जाये तभी सवेरा है। इसलिए "बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेय" सिद्धान्त के अनुसार मैं अपने जीवन के शेष वर्षों का सदुपयोग कर लेना चाहता हूँ।

मेरे द्वारा अपनी औरस और मानस सन्तानो की जो उपेक्षा हुई है, इसका मुझे प्रायश्चित्त करना ही है। अपने ग्रन्थो का सशोधन करके उन्हे फिर से छपाना चाहता हूँ। मेरे लिखे कई ग्रन्थ अब सर्वथा अप्राप्य हो चुके हैं। 'रेखाचित्र,' 'सस्मरण' और 'हमारे आराध्य' इन तीनो ग्रन्थो को भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, ने छापा था। इनमे 'सस्मरण' की कुछ प्रतियाँ शेष हैं बाकी दोनो अब नही मिलते। सस्ता साहित्य मण्डल ने जो मेरी किताबे छापी थी वे भी अब प्राप्य नही हैं। पिछले बीसियो वर्षों मे मैंने जो लेख पत्रो मे लिखे है उनसे कई किताबे तैयार हो सकती है, एक पुस्तक तो देश तथा विदेश के महान् पत्रकारो के रेखाचित्रो के सग्रह से बन सकती है।

सी० पी० स्कॉट, गेविन्सन, लार्ड नॉर्थक्लिफ, ए० जी० गार्डनर, विलियम लॉयड गेरीसन—इन पाँच विदेशी पत्रकारो तथा, रामानन्द बाबू, सी० वाई० चिन्तामणि, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पराडकर जी और गणेशशकर विद्यार्थी ये दस रेखाचित्र तो तैयार हैं ही। सेट निहाल से मैंने एक लेख डब्ल्यू० टी० स्टैड (W T Stad) पर भी लिख लिया था, और महादेव गोविन्द रानाडे के जीवन-चरित भी मैंने लिखे थे।

पहली पुस्तक को गगा पुस्तक माला ने छपाया था और दूसरी को स्व० लक्ष्मीधर वाजपेयी ने तरुण भारत ग्रन्थ माला मे। क्रान्तिकारियो के जो रेखाचित्र मैंने प्रस्तुत किये हैं उनसे भी दो-तीन किताबें बन सकती हैं। शहीदो और क्रान्तिकारियो के विषय मे जो ग्रन्थ और विशेषांक मैंने छपाए हैं, उनमे काट-छाँटकर कई किताबे बनाई जा सकती हैं। 'विशाल भारत' तथा 'मधुकर' के पुराने लेखो से भी कई ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं। एक पुस्तक मेरे आन्दोलनो पर भी लिखी जा सकती है। अपने नगर फीरोजाबाद के बारे में

जो लेख लिखे हैं उनमें भी एक पुस्तक का मसाला है। 'विशाल भारत' मे प्रकाशित सर्वोत्तम लेखों से भी दो-तीन सग्रह तैयार कराये जा सकते हैं।

अपने सग्रहालयो को, जो दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा आगरा विश्वविद्यालय के चतुर्वेदी ब्रज केन्द्र मे सुरक्षित है, समृद्ध और अपटूडेट बनाना है। इन सब कामो के लिए समय, शक्ति और साधनो की आवश्यकता है। बिना किसी सुयोग्य सहायक के ये पूरे नही हो सकते। जैसे कोई सिद्धहस्त चित्रकार अपने चित्र को सम्पूर्ण करने के लिए उसमे यथोचित काट-छाँट करता है --उसमे 'फिनिशिंग टच' देता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी रचनाओ का सशोधन करना चाहता हूँ पर इसके लिए सबसे आवश्यक है स्वस्थ रहना, जो इस नगर मे कोई आसान काम नही।

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी बाबा पृथ्वीसिंह आजाद ने मुझे एक मन्त्र दिया है "जब आराम करते-करते थक जाओ तब कुछ काम करो।" मैंने जब उनसे कहा, "मैं तो इस ऊबड-खाबड नगर मे टहलने भी नही जा पाता।" तो उन्होने उत्तर दिया, 'मैं तो काले पानी की कोठरी मे, जो 6 × 8 फीट थी, बराबर टहल लिया करता था जबकि आपका घर तो काफी लम्बा-चौडा है।" श्रद्धेय बाबा मुझसे उम्र मे सवा तीन महीने बडे हैं—मेरे अग्रज है और पूर्ण स्वस्थ हैं। उनके आदेशानुसार रहने का प्रयत्न मै करूँगा।

घरेलू फ्रन्ट पर अपनी असफलता मैं स्वीकार कर चुका हूँ।

"दाई लव अफार इज स्पाइट ऐट होम"—अर्थात् तुम्हारा दूसरो से प्रेम निकटस्थो के प्रति द्वेष है। यह उक्ति मुझ पर प्राय चरितार्थ होती रही है। अधीनस्थो के प्रति जो उपेक्षा मुझसे बन पडी है उसका प्रायश्चित्त मुझे करना ही होगा। इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?

स्व० वेदमूर्ति सातवलेकर जी ने अपनी आयु के 90वे वर्ष मे नार्थ एवेन्यू मे मेरे निवास स्थान पर स्वय पधार कर दर्शन दिये थे। उस समय उनके सुन्दर स्वास्थ्य को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ था। उस समय उन्होने अपने भावी जीवन के 25 वर्षों के लिए कार्यक्रम बना रखा था। जब वह मेरे यहाँ पधारे और अपना परिचय दिया तो मैंने उन्हे प्रणाम कर कहा, "आपने तो मुझ पर जुल्म किया है। आप जहाँ ठहरे हुए हैं, वहाँ से ही फोन कर देते तो मैं स्वय ही हाजिर हो जाता।" श्रद्धेय सातवलेकर जी ने मुस्कराकर कहा, "मैं इधर से निकल रहा था, सोचा आपसे मिलता चलूँ।" उन्होने यह भी शिकायत की थी कि अमरीका का हरबर्ट विश्वविद्यालय वेदो पर जितना खर्च कर रहा है, उतना भारत सरकार खर्च नही कर रही।

मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ और मेरी साधना सातवलेकर जी की साधना के मुकाबले शतांश भी नही है। मेरा जीवन कुछ व्यवस्थित और सयमित नही रहा। इसलिए दीर्घ आयु की आशा भी नही रखता। पर मेरे मन मे कोई पछतावा नही है।

अपने दीर्घ साहित्यिक जीवन मे मेरी जितनी रुचि दूसरो के साहित्यिक विकास मे रही है, उतनी अपनी साहित्यिक उन्नति मे नही। पर मैं घाटे मे नही रहा। आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल, प० हजारी-प्रसाद द्विवेदी जी तथा राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त और राष्ट्रकवि दिनकर जी के जीवन-चरितो मे कही न कही मेरा उल्लेख आता ही है और तब "ज्यो पलाश सग पान के पहुँचे राजा हाथ," वाली उक्ति चरितार्थ हो जाती है। मेरा अनुमान है कि हिन्दी मे पत्र-साहित्य तथा प्रवासी भारतीयो का जिक्र करते हुए भी मेरे नाम का उल्लेख हो सकता है। इसके सिवाय राष्ट्रीय अभिलेखागार 'दिल्ली' मे तथा ब्रज केन्द्र, आगरा विश्व-विद्यालय मे मेरे सग्रहालय बहुत वर्षों तक मुझे जीवित रखेंगे। यह भी एक आकस्मिक घटना समझिये कि

दीनबन्धु ऐण्ड्रूज जैसे विश्वविख्यात महापुरुष के साथ मेरा नाम जुड गया है। राष्ट्रीय अभिलेखागार में मेरा जो सग्रह है उसे अधिकारी व्यक्तियो ने अमूल्य कहा है। और लकास्टर विश्वविद्यालय के प्रोफेसर टिंकर साहब ने दीनबन्धु का जो नवीन जीवन-चरित लिखा है उसमे 50 से अधिक स्थानो पर मेरा उल्लेख है। फ्रांस मे बेज़िल गेट नामक एक लेखक हुए हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन दूसरे फ्रांसीसी लेखको के व्यक्तित्व के विकास ही मे बीता। विश्वविख्यात ऑस्ट्रियन लेखक स्टीफन ज्विग ने अपने जीवन-चरित मे बेज़िल गेट की प्रशसा की थी।

मैं यह जानता हूँ कि मेरे पास अब समय कम ही बचा है फिर भी 'अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्' इस उक्ति के अनुसार मैं भी कुछ करते रहना चाहता हूँ। सग्रहालयो को भेजने के लिए जो सामग्री अव्यवस्थित दशा मे मेरे यहाँ पडी है, उसकी उचित व्यवस्था करना भी एक कठिन कार्य है। जैसे बैठे-ठाले दूकानदार बाटो को तौला करता है, मैं भी शेष बची सौ-सवा सौ फाइलो को उलटा-पलटा करता हूँ।

एक बात और भी कहनी है। शहीदो और क्रान्तिकारियो के विषय मे मैंने जो 22-23 चीजें निकाली हैं, वे ऐतिहासिक दृष्टि से भले ही महत्त्वपूर्ण न हो फिर भी इतिहास का कच्चा मसाला अवश्य है। हिन्दी मे क्रान्तिकारियो के विषय मे लिखने वालो को मेरे द्वारा सगृहीत सामग्री से कुछ न कुछ मदद अवश्य मिलेगी। शहीद ग्रन्थमाला मे मेरी छ किताबें तो दिल्ली के प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स ने छापी थी। उनके सिवाय 15-17 विशेषाक और ग्रन्थ भी हैं। मेरे द्वारा सगृहीत तथा सम्पादित 22-23 ग्रन्थो मे कुछ ऐसे अवश्य हैं जिन्हे पुन मुद्रित किया जा सकता है।

मेरे द्वारा प्रस्तुत 200-300 रेखाचित्रो तथा सस्मरणो से कई ग्रन्थ तैयार हो सकते है।

अन्त मे मुझे इतना ही कहना है कि मुझे किसी से भी शिकायत नही है। योग्यता तथा साधनो की कमी होने पर भी जो थोडी-बहुत सेवा मेरे द्वारा बन पडी वह असन्तोषजक नही है।

●●

परिशिष्ट

बनारसीदास चतुर्वेदी . कुछ अनकहे प्रसग 1

फूलों से कोमल वज्र से कठोर

□ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

फीरोजाबाद मे भारती भवन मे प० बनारसी दास चतुर्वेदी की श्री तोताराम सनाढ्य से भेंट हुई। श्री तोताराम सनाढ्य ने फीजी मे गये हुए प्रवासी भारतीयो का जो वर्णन किया तो नवयुवा बनारसी दास चतुर्वेदी का हृदय द्रवित हो गया। उन्होने तोताराम जी से कहा कि आप इन घटनाओ को, अपने अनुभवो को लिख दीजिये जिससे दूसरो को पता लगे। तोताराम जी ने कहा कि मैं लेखक नही हूँ, कोई लिख दे तो मैं बोल सकता हूँ। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने स्वय यह काम अपने ऊपर ले लिया। वह उस समय डेली कॉलिज, इन्दौर के, जो महाराज कुमारो का कॉलेज था, अध्यापक थे और उन्हे उस समय 80 या 100 रुपये के करीब वेतन मिलता था। लडाई का जमाना था और उस समय अग्रेजो की नौकरी करते हुए साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के घोर अपराधो का इस प्रकार से वर्णन करना अत्यन्त साहस का काम था। 'फीजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष' ने प्रवासी भारतवासियो के लिए वही काम किया जो रुसो और वाल्टेयर की पुस्तको ने फ्रास की क्राति को प्रारम्भ करने के लिए किया। परन्तु श्री बनारसीदास चतुर्वेदी यही पर ही नही रुके। उन्होंने यह सकल्प कर लिया कि इस प्रथा को समाप्त कराना है। उसके लिए उन्होने कार्य भी किया। डेली कॉलिज की प्रोफेसरी करते हुए, जहाँ उनके चेले भावी राजा-महाराजा थे, उन्होने गिरमिट प्रथा को समाप्त करने के लिए आन्दोलन किया, 'प्रवासी भारतवासी' जैसी पुस्तक लिखी और देश के बडे-बडे नेताओ से मिलकर उस आन्दोलन को इतना बढ़ाया कि अग्रेज सरकार को फीजी मे तथा अन्य उपनिवेशो मे भारत से गिरमिटिया, यानी बधुआ मजदूर भेजना बद करना पडा। फीजी मे भारतीयो की दुर्दशा से श्री बनारसीदास चतुर्वेदी इतने द्रवित हो गये कि उन्होंने इस कार्य मे सहायता देने के लिए श्री सी० एफ० एण्ड्रूज के कहने से अपनी नौकरी छोड दी और अपना जीवन प्रवासी भारतवासियो की सेवा मे लगा दिया। यद्यपि वह लिखते हैं कि आर्थिक कारणो से वह बाईस वर्षों के पश्चात् इस कार्य को जारी नही रख सके, पर यह उनकी विनम्रता ही है। उनका कार्य बराबर जारी रहा। जब वह ससद सदस्य थे तब उन्होने फीजी मे लोतोका के बैरिस्टर श्री सुरेन्द्र प्रसाद के सहयोग से 'फीजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष' को पुन मुद्रित कराया और उसे ऐसे व्यक्तियो के पास पहुँचाया जो उससे प्रेरणा लेकर प्रवासियो का कार्य आगे बढ़ाएँ। इसी सिलसिले मे और विशेषत प्रवासी भवन की स्थापना के लिए श्री जवाहर लाल नेहरू से श्री प्रकाशवीर शास्त्री का पत्र व्यवहार करवाया जिसके परिणामस्वरूप श्री प्रकाशवीर शास्त्री को नेहरू जी ने अपनी मृत्यु से तीन दिन पहले देहरादून

से अपना ऐतिहासिक पत्र लिखा था।

मेरे सामने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के उस पत्र की प्रतिलिपि है जो उन्होंने 2 सितम्बर, 1973 को प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाधी को लिखा था। उस पत्र मे उन्होने लिखा था

"आप फीजी जा रही हैं, यह जानकर हर्ष हुआ। सन् 1914 से—59 वर्ष पूर्व से—मेरा सम्बन्ध फीजी से रहा है, जब मैंने प० तोताराम सनाढ्य के लिए 'फीजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष' लिखी थी।

उसकी प्रति अलग से सेवा मे भेज रहा हूँ। बाईस वर्ष तक प्रवासी भारतीयो की कुछ सेवा मुझसे बन पडी थी—महात्मा गाधी तथा दीनबन्धु एण्ड्रूज के अधीन वर्षों तक मैंने यही काम किया था और मेरी पूर्व अफ्रीका यात्रा का व्यय सन् 1924 मे पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने मुझे नैरोबी भेजा था।

कानपुर कांग्रेस मे मैंने कांग्रेस मे प्रवासी विभाग क़ायम कराया था। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप—

(1) फीजी के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए दीनबन्धु सी० एफ० एण्ड्रूज तथा मि० पियरसन की सेवाओ का उल्लेख कर दें।
(2) फीजी की मुख्य देन मल्टी-रैशियल यूनिटी के रूप मे हो सकती है। फीजी प्रवासी भारतीयो को उसके लिए भरपूर कोशिश करनी चाहिए।
(3) महात्मा गाधी जी के 26 पत्र नेशनल आर्काइव्स मे है। उनमे 24 पण्डित तोताराम जी तथा उनकी फीजी बोर्न पत्नी के नाम हैं और 2 रा० स० मनसुख के नाम। उन पत्रो की फोटो-कॉपीज़ यदि आप भेट स्वरूप फीजी की आर्काइव्स को दे सकें तो यह अत्युत्तम भेट होगी।
(4) दिल्ली मे प्रवासी भवन की स्थापना यदि हो सके तो बडा काम हो। पूज्य पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने अपने स्वर्गवास के तीन दिन पहने ही देहरादून से श्री प्रकाशवीर शास्त्री को इस बारे मे लिखा था।
(5) मैंने एक लेख आपकी फीजी की यात्रा के बारे मे लिखा है। वह साथ मे नत्थी है। इस लबे पत्र के लिए क्षमा प्रार्थी

ह०—बनारसीदास चतुर्वेदी

इस पत्र की प्रतिलिपि मुझे भेजते हुए उन्होंने लिखा, "यदि आपके फीजी जाने का कोई गुन्ताडा लग सके तो अच्छा।"

गुन्ताडा तो लग गया, अनायास ही फीजी के हाई कमिश्नर श्री भगवान सिंह ने सभवत बनारसी दास जी की ही प्रेरणा से प्रधानमत्री श्रीमती इदिरा गाधी को सुझाव दिया कि मुझे वह पत्रकारो की पक्ति मे, जो उनके साथ जाने वाले हो, सम्मिलित कर लें और ऐसा हुआ भी, परन्तु बाद मे न श्रीमती गाधी जा पायी और न मैं। इसके बाद जनता पार्टी की सरकार आयी और श्री अटल बिहारी वाजपेयी विदेशमत्री बने। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उन्हे पत्र लिखा कि फीजी मे 15 मई, 1979 को भारतीयो के प्रवेश की शताब्दी हो रही है। इस अवसर पर भारत सरकार को फीजी मे भारतीयो के योगदान पर एक पुस्तक तैयार करानी चाहिए। श्री वाजपेयी स्वय फीरोज़ाबाद गये और उन्होने चतुर्वेदी जी से आग्रह किया कि इस काम को वह स्वय उठा लें। भारत सरकार पूरी सहायता करेगी। परन्तु बनारसी दास जी ने यह सुझाव दिया कि यह काम युवा लेखको पर छोड़ा जाए और बाद मे उनके सुझाव के ही फलस्वरूप यह काम मुझे सौंपा गया।

इस पुस्तक को लिखने के लिए श्री बनारसी दास जी चतुर्वेदी ने अपनी सामग्री मुझे दे दी। सारे पत्र-व्यवहार के विषय मे बताया जिसे राष्ट्रीय अभिलेखागार मे देखा गया और जब पुस्तक तैयार हो गयी तो उसकी भूमिका भी लिखी। इसी सिलसिले मे जब मुझे फीजी जाने का अवसर मिला और मैं फीजी के अतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे नान्दी मे मई, 1980 मे पहुँचा तो कस्टम्स रेखा से बाहर आते हुए मुझे एक सज्जन मिले जिनको मैंने कभी नही देखा था, न उनसे मेरा पत्र-व्यवहार था। परन्तु श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने उनको पत्र लिख दिया था, और जब उन्हें फीजी के हाई कमिश्नर के यहाँ मेरे आगमन का समय मालूम हुआ तो वह मुझसे मिलने अपने नगर लोतोका से 15 मील दूर उस हवाई अड्डे पर अपने परिवार के साथ आ गये। फीजी के निवासियो मे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का कितना मान है, इसका पता मुझे तब लगा जब उन सज्जन, लोतोका के प्रसिद्ध बैरिस्टर श्री सुरेन्द्र प्रसाद ने मुझसे कहा कि आपको देखकर हम यही अनुभव कर रहे है कि जैसे हम श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का स्वागत कर रहे है जिन्होने हमारे लिए इतना प्रयत्न किया। श्री सुरेन्द्र प्रसाद लोतोका के मेयर रह चुके है और ससद सदस्य भी। वह फीजी की आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान है। उन्होने कभी श्री बनारसीदास चतुर्वेदी से भेंट नही की थी और मै तो उनके लिए एकदम अपरिचित था परन्तु श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के एक पत्र ने उन्हे मेरे लिए अत्यन्त सहायक बना दिया। उन्होने आग्रह किया कि जब मै सूवा से उस नगर मे आऊँ तो उनके यहाँ ही ठहरूँ। और जब मै ठहरा तो उन्होने स्वय मुझे अनेको भारतीयो से मिलाया और अन्य स्थानो पर मिलने की व्यवस्था की।

जब श्रीमती इन्दिरा गाधी पुन प्रधानमत्री बनी और फीजी यात्रा पर गयी तब श्री बनारसीदास जी ने फीरोज़ाबाद के 'युग-परिवर्तन' पत्र में अपने जन्म-दिवस के अवसर पर एक लेख लिखा था जिसमे उन्होने लिखा था कि 'मेरे कई स्वप्न पूरे हो चुके है, कितने ही अभी अधूरे पडे है—जैसे नई दिल्ली मे प्रवासी भवन की स्थापना। मेरा दृढ विश्वास है कि शीघ्र ही भारत सरकार द्वारा इस विषय मे कुछ काम होगा।" पत्र की प्रति भेजते हुए उन्होने मुझे लिखा था कि श्रीमती इन्दिरा गाधी ने लोतोका की मीटिंग मे बडी भावपूर्ण बाते कही थी। आशा है कि वह प्रवासी भवन के लिए दिल्ली मे भूमि-खड-प्रदान करेंगी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने जो भूमि खड दिया था उसे बीच मे ही एम० के० पाटिल ने हड़प लिया था। पुराने रिकार्ड मे यह बात मिल जाएगी। एक करोड प्रवासी भारतीयो के लिए दिल्ली मे प्रवासी भवन की स्थापना होनी ही चाहिए। पिछले वर्ष जब उनकी पुस्तक 'नव्बे वर्ष' निकली और फीरोज़ाबाद मे जब हमने उनका जन्म-दिवस मनाया तो उन्होने फिर श्रीमती इन्दिरा गाधी को एक पत्र लिखा जिसके साथ श्री जवाहर लाल नेहरू के पत्र की फोटोकापी भी निकलवाकर भेजी और उस पत्र पर अभी भी उनका पत्र-व्यवहार चल रहा है। सही बात तो यह है कि प्रवासी भारतीयो का कार्य उन्होने कभी छोडा नही। जब मैं पुस्तक लिख चुका तो उन्होने मुझे लिखा था कि मुझे अब इस विषय को अपना मिशन बना लेना चाहिए। यह विस्तार से मैंने इसलिए लिखा है कि पूज्य दादा जी यानी श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने जो कार्य अपने हाथ मे उठाया, उसे छोडा नही।

पत्रकारो का आन्दोलन एक ऐसा विषय है जिसके लिए उन्होने मुझे प्रेरणा दी और मुझसे कुछ सेवा भी करवाई। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी की कथनी और करनी मे कोई अतर नही होता। सन् 1945 मे मथुरा के अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सम्मेलन मे उन्होने जो अध्यक्षीय भाषण दिया था उसमे इस खतरे की ओर आगाह किया था कि पत्रकारिता के क्षेत्र मे पूँजीपतियो का प्रवेश बढ़ रहा है। पर यह कोरी

व्याख्यानबाजी नहीं थी। उन्होंने अपने इन विचारो के लिए खासी कीमत अदा की। इस अधिवेशन के लगभग एक वर्ष पश्चात् ऐसा अवसर आया कि दिल्ली मे एक पत्र के सचालक ने उन्हे पत्र का सपादक होने के लिए आमन्त्रित किया। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी बातचीत करने के लिए दिल्ली आये। उस समय उन्हे सचालक की ओर से बताया गया कि वेतन के रूप मे उन्हे 700 रुपये मिलेंगे और उनको इस बात का अधिकार होगा कि जिस किसी को चाहे वह अपना सहायक नियुक्त कर सकेंगे और उस पर नियत्रण रख सकेंगे। साथ ही यह भी बताया गया कि पत्र किसी खास पार्टी का न होगा और न वाद-विशेष का प्रचारक। ये सारी शर्तें श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के गौरव को ध्यान मे रखकर निर्धारित की गयी। लेकिन उन्होने इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। वह 18 नवम्बर, 1946 को दिल्ली से वापस टीकमगढ़ लौटे और 20 नवम्बर को उन्होने उस पत्र के कार्यकारी निदेशक को जो चिट्ठी लिखी उसके कुछ अश इस बात का परिचय देते है कि वह किस प्रकार के पत्रकार है। उन्होने लिखा, "13 तारीख को आप और मेरे बीच जो बातचीत हुई थी, उसका साराश निम्नलिखित है, 1 आप मुझे के सपादन के लिए 700 रुपये मासिक वेतन देंगे, 2 पत्र की नीति सर्वथा मेरे अधीन रहेगी, अपने सहायक मैं स्वय नियुक्त कर सकूँगा और उन पर नियत्रण भी खुद करूंगा, 3 यह पत्र किसी खास पार्टी का न होगा और न वाद-विशेष का प्रचारक।

"पेशेवर पत्रकारो को यह शर्तें स्वीकार हो सकती हैं, और इसके लिए मैं उनकी आलोचना नही करता और मेरा ख्याल है कि पूँजीपतियो की दृष्टि से ये शर्तें युक्तिसगत भी हैं, पर विनम्रतापूर्वक मैं निवेदन करूँगा कि शर्त न० 3 का पालन करना मेरे लिए सभव नही। मेरे द्वारा सपादित पत्रिका का अराजकतावादी होना अनिवार्य है। अपने विचारो को दबाना मेरे लिए बहुत ही मुश्किल है। मैं न खुद धोखा खाना चाहता हूँ और न आपको धोखे मे रखना चाहता हूँ।

"अपने प्रथम पत्र में मैंने आपको स्पष्टत निवेदन किया था कि पूँजीपतियो के इस क्षेत्र मे प्रवेश से मै आशकित हूँ। मेरा अब भी यही मत है। यदि पत्र मेरे हाथ मे आया तो उसका प्रथम लेख होगा 'पत्रकार क्षेत्र मे पूँजीपतियो का प्रवेश'। लीजिये पहले ही अक से हमारा और आपका झगडा शुरू हो गया। यह उदारता स्वर्गीय श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय में ही थी कि दस वर्ष तक वह मेरे स्वतन्त्र विचारो को सहन ही नही करते रहे, उन्हे प्रोत्साहन भी देते रहे। क्या आप और आपके साथी मुझे उतनी स्वतत्रता दे सकते हैं कि मै पूँजीपतियो के पत्रकार क्षेत्र में प्रवेश के विरुद्ध इस पत्र मे आन्दोलन उठाऊँ और उसे ज़ोर-शोर के साथ चलाऊँ? यदि आपका पत्र पूँजीवाद के विरोध और साम्यवाद के प्रचार को सहन कर सकता है तो फिर कहना ही क्या है, मै हाज़िर हूँ।

"किसी व्यक्ति विशेष से मेरा विरोध नही। यह प्रश्न दरअसल सिद्धात का है। और सिद्धातो की हत्या करके मैं पत्र-सपादन नही कर सकता। यह मैं स्वीकार करता हूँ कि जीवन मे अनेक समझौते करने पडते हैं। मैं तो बहुत ही कमज़ोर हूँ, मैंने बहुत समझौते किये भी है। राज्याश्रय मे अराजकतावादी का रहना ही घोर बिडबना है। यद्यपि यह बात ईमानदारी के साथ मुझे स्वीकार करनी है कि श्रीमान ओरछेश ने मुझ पर किसी भी प्रकार का नियत्रण नही रखा, फिर भी वहाँ से मैंने इस्तीफा दे दिया है। मिले रूखी रोटी जो आज़ाद रहकर तो है खौफे जिल्लत के हलवे से बेहतर—भविष्य के लिए यही मेरा मूल मत्र है। किसी चौबे के लिए हलवे का मोह छोड देना मुश्किल ही है।"

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को टीकमगढ़ मे 280 00 रुपये मिलते थे। दूसरी तरफ दिल्ली मे,

जहाँ दो महीने पहले ही श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता मे अतरिम सरकार स्थापित हो गयी थी (यह दिखाई दे रहा था कि दिल्ली शीघ्र ही एक बहुत बडे स्वतत्र देश की राजधानी बनने जा रही है)। एक साधन-संपन्न समाचार-पत्र के सपादक का पद और उस समय किमी भी हिंदी पत्रकार के लिए अलभ्य 700 रुपये का वेतन छोडकर रूखी रोटी के लिए तैयार रहना बडे साहस की बात थी, परतु जिस व्यक्ति ने अपने विचारो की खातिर राजकुमार कॉलेज, इन्दौर की, महात्मा गाधी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ की नौकरियाँ छोड दी हो, उसके लिए बेकारी की हालत मे भी इस महत्त्वपूर्ण अवसर को छोड देना कोई आश्चर्य की बात नही।

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी पत्रकारिता के लिए एक विशेष दृष्टिकोण रखते हैं और उनकी दूर-दृष्टि मे वह सब बाते बहुत पहले दिखाई देने लगी थी, जो हम आज के पत्रकार-जगत् मे देख रहे है। उन्होंने 24 दिसम्बर, सन् 1945 को अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सम्मेलन के मथुरा अधिवेशन मे जो भविष्य-वाणी की थी, वह आज सही दिखाई दे रही है। उन्होने कहा था "विचारो की स्वाधीनता हमारा मूल मत्र है और जो स्वतत्रता हम अपने लिए चाहते हैं उसे हमे दूसरो को भी भोगने देना चाहिए। हमे इस विषय मे बहुत सतर्क रहना चाहिए कि किमी पत्र को अपने विचारो के कारण किसी अनाचार का शिकार न होना पडे, चाहे वह अनाचार सरकार की ओर से हो, या जनता की ओर से। चाहे वह सरकार द्वारा जमानत माँगे जाने की शक्ल मे हो या कार्यालय पर भीड द्वारा हमला होने या हॉकरो को पीटे जाने के रूप मे। इस प्रकार के प्रत्येक अनाचार के प्रति हमे अपनी आवाज बुलन्द करनी चाहिए। जो पत्रकार यह समझे हुए है कि शासको के परिवर्तन मे, गोरो की जगह भूरे शासक आ जाने से, पत्रकारो को विचारो की स्वाधीनता मिल जायेगी, वे भयकर भ्रम मे है। शासन और स्वतत्रता दोनो परस्पर विरोधी शब्द हैं और हम शासको को, चाहे वे किसी रग, जाति या मुल्क के क्यो न हो, महात्मा नही मानते। स्वाधीनचेता पत्रकारो का जीवन निरन्तर सघर्ष का जीवन है और जब तक मनुष्यो मे दूसरो पर शासन करने की इच्छा विद्यमान है तब तक स्वाधीन-चेता पत्रकारो को विश्राम नही मिल सकता। प्रभुता पाइ काहि मद नाही—बाबा तुलसीदास ने बिलकुल ठीक कहा था। हमे इस विषय मे अत्यत सतर्क तथा सावधान रहने की जरूरत है। स्वदेशी सरकारो से भी पत्रकारो को काफी खतरा रह सकता है। अपने विरोधियो का दमन करना प्रत्यक सरकार के लिए सर्वथा स्वाभाविक है।"

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की करुणा अति विशाल है छोटे-से-छोटे साहित्यिक कार्यकर्ता के प्रति उन्हे प्रेम है। 'विशाल भारत' और 'मधुकर' के द्वारा उन्होने अनेको लेखको को प्रोत्साहन दिया। जब उन्हे यह पता लगता है कि कोई सकटग्रस्त है तो अपने मित्रो और शुभचिंतको से कहकर उसके लिए सहायता एकत्र करने मे उनका सारा समय लग जाता है। मुझे स्मरण है कि जब हम टीकमगढ मे साथ साथ काम कर रहे थे, उस समय उन्हे दो पत्रकार बधुओ की बीमारी का पता लगा। एक विनोद शकर पाठक जो 'विचार' के सहायक सपादक रह चुके थे, भरी गर्मियो मे ग्वालियर के एक अस्पताल मे तपेदिक से पीडित थे। श्री पाठक की सहायता के लिए उन्होने पचासो व्यक्तियो को लिखा कि आप दस-दस, पाँच-पाँच रुपये उन्हे भेजिये और सहायता पहुँचाइये। इसी तरह श्री विष्णु दत्त मिश्र तरगी के भाई श्री चन्द्रशेखर मिश्र को इलाज के लिए सहायता पहुँचाई। यद्यपि वे दोनो बधु जीवित नही रह सके, परन्तु मरते मरते उन्हे यह सन्तोष रहा कि उनकी भी सुध लेने वाला कोई है। हाल ही मे जब उन्हें पता लगा कि श्री सत्यभक्त बीमार है तो उनकी सहायता के लिए उन्होने श्रीमती इन्दिरा गाधी को लिखा जिसकी प्रति मुझे भी भेजी और श्रीमती गाधी की

ओर से ढाई हजार रुपये उन्हें भेज भी दिये गये। परन्तु उनकी सहानुभूति यहाँ तक ही सीमित नही थी। उन्होने 5 मार्च, 1960 मे देवरिया के भाटपार रानी के उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए कहा था कि "सबसे मुख्य सवाल यह है कि अपनी आयोजनाओ को कार्यान्वित करने के लिए नवीन कार्यकर्त्ता हमे कैसे मिले ? यह बात हमे खेदपूर्वक स्वीकार करनी पडेगी कि हमारे साहित्य-क्षेत्र मे आदर्श-वादिता की कमी है। हमारे प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित लेखक और कवि प्राय आत्म-केन्द्रित हो गये है। आचार्य प० महावीर प्रसाद द्विवेदी, समालोचक शिरोमणि प० पद्मसिह शर्मा और अमर शहीद गणेशशकर जी विद्यार्थी की परम्परा प्राय खत्म हो चुकी है। और नई पीढी को प्रोत्साहन देने का कार्य शायद ही कोई कर रहा हो। जिस तरह बडे बूढे पहलवान खलीफा बनकर नये पट्ठो को तैयार करते हैं उसी प्रकार यदि वयोवृद्ध साहित्यिक नवयुवको को अपने समय का कुछ भाग दे दे तो साहित्य क्षेत्र मे उत्साह की एक लहर फैल सकती है। अन्ततोगत्वा सारा प्रश्न साहित्य-तपस्वियो पर निर्भर होगा।"

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने स्वय अपने को साहित्यिक तपस्वी बनाया। उन्होने उदीयमान लेखको की रचनाएँ छापी ही नही, उन्हे प्रोत्साहित भी किया। आज हिन्दी साहित्य जगत् मे कुछ बहुत बडे नाम हमारे सामने है—स्व० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, स्व० डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, स्व० श्री रामधारी सिह दिनकर, स्वर्गीय श्री मती कमला चौधरी, स्व० श्री वशीधर विद्यालकार और वर्तमान लेखको मे श्री हरिवश राय बच्चन, श्री अज्ञेय, श्री सोहनलाल द्विवेदी और डॉ० शिवमगलसिह सुमन। इन महान् लेखको मे अपनी शक्ति थी पर उसका विकास, उसका निखार और प्रोत्साहन श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के द्वारा मिला। एक तरफ उन्होने साहित्य की महान विभूतियो को आगे बढाया और उनका उचित मूल्याकन किया, दूसरी तरफ उन्होने ऐसे साहित्य का जमकर विरोध भी किया जिसको वह उचित नही समझते। घासलेटी साहित्य के विरुद्ध उनका अभियान इतना सफल रहा कि साहित्य जगत् मे बडे-बडे लोग श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के डडे से काँपते थे।

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को अपने काल मे जितनी देशीय और अतर्देशीय ख्याति मिली, किसी हिन्दी लेखक या पत्रकार को नही मिली। फीजी से लेकर गयाना तक उनके नाम से प्रत्येक भारतवशी परिचित था, और जब उन्होने 'विशाल भारत' का सपादन किया तो निस्सदेह वह अपने समय के सर्वश्रेष्ठ सपादक माने जाते थे। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने हिन्दी लेखन और पत्रकारिता को अन्तर्राष्ट्रीय आयाम दिया। ससार की विभिन्न दिशाओ मे क्या उपलब्धियाँ थी, इसकी सूचना 'विशाल भारत' से मिलती थी। उन्होने न केवल एमर्सन और थोरो जैसे अमेरिकी विचारको मे भारतवासियो को परिचित कराया, बल्कि लेव टॉलस्टॉय, प्रिस क्रोपाटकिन, तुर्गनेव, मेक्सिम गोर्की और एण्टन चेखव जैसे रूस के महान् विचारको और लेखको का परिचय हिन्दी पाठको का दिया। यद्यपि 'विशाल भारत' ने कभी दावा नही किया कि वह एक प्रगतिशील पत्रिका है, परन्तु उस जैसी प्रगतिशील पत्रिका हिन्दी जगत् मे तो क्या, अन्य भारतीय भाषाओ मे भी आसानी से नही मिलती। 'विशाल भारत' मे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान, नाटक, कहानी, कविता सभी के उच्च कोटि के नमूने प्रदर्शित किये गये जिन्होने भावी पत्रकारो को मार्गदर्शन प्रदान किया। सन् 1933 मे श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' मे एक लेख लिखा—'कस्मै देवाय', जिसके द्वारा यह सूत्र प्रचारित किया गया कि हमे किसके लिए लिखना है, अपने लिए नही, जनता के लिए। यह आश्चर्य की बात है कि सन् 1943 मे यह लेख छपा था और सन् 1936 मे श्री प्रेमचन्द की अध्यक्षता

मे प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना हुई। स्वय श्री प्रेमचन्द को साहित्य जगत मे उचित स्थान दिलाने मे और उनको बराबर प्रोत्साहित करते रहने मे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रमुख भूमिका रही है, जिसे प्रेमचन्द साहित्य से परिचित लोग भली भाँति जानते है। अच्छे लेखको का प्रचार हो, उसके लिए जरूरी था कि जो शिष्ट नही है उसे ताकत के साथ दबाया जाए। यदि श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के काल मे पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र या श्री चतुरसेन शास्त्री और राधेश्याम कथावाचक बहुत आगे न बढ़ सके तो उसका कारण श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के वे लेख थे जो 'विशाल भारत' मे उनकी रचनाओ के बारे मे छपे थे। दूसरी तरफ जब श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' का प्रकाशन शुरू किया तो न केवल बुन्देलखण्ड का लोक साहित्य प्रकाश मे आया बल्कि अन्य भाषाओ के लोक साहित्य मे भी असाधारण गति आयी। यद्यपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने जनपदीय कार्यक्रम स्वीकार कर लिया था परन्तु उस समिति के सयोजक श्री चद्र-बलि शर्मा अपने आग्रह के कारण समिति का कार्य नही बढा सके और दुखी होकर श्री बनारसी दास चतुर्वेदी को उस समिति से त्याग-पत्र देना पडा। परन्तु बाद मे उसी साहित्य सम्मेलन ने भोजपुरी तथा हिन्दी की अन्य बोलियो पर शोध और सग्रह ग्रथ प्रकाशित किये। बुन्देलखण्डी लोक कहानियो के ढग की विभिन्न क्षेत्रो की लोक कहानियाँ प्रकाशित हुई और जिन लेखको को साहित्य मे पहचाना नही जाता था उनके नाम दूर-दूर तक फल गये। छोटे-छोटे केन्द्रो को विकसित करने की उनकी कल्पना आज भी उनके मन मे बलवती है। ब्रज साहित्य मडल के एक अधिवेशन मे उन्होने ब्रज साहित्य परिषद् की अध्यक्षता करते हुए जो विचार प्रकट किये थे वे राष्ट्रीय कार्य मे साहित्य के योगदान तथा किसान और मजदूर की बराबरी दोनो का सही प्रतिबिम्ब देते हैं। उन्होने कहा था "बकौल श्री कृष्ण दत्त पालीवाल हमारा मुल्क आजाद हो गया है, उसे आबाद करना है, हरा-भरा बनाना है। और उस महान् यज्ञ के लिए सहस्रो-लक्षो कार्यकर्ताओ की जरूरत पडेगी। ये कार्यकर्ता भिन्न-भिन्न कोटि के होगे, जिनके बीच मे छोटे बडे का भेद नही हो मकता। किसान-मजदूर के शारीरिक श्रम तथा लेखक व कवि के मानसिक श्रम मे छोटाई-बडाई का मापदड क्या कोई हो सकता है? किसी भवन के निर्माणार्थ इजीनियर, कारीगर और मजदूर सभी का पारस्परिक सहयोग आवश्यक है। दभी है वे, जो अपन कार्य को महत्त्वपूर्ण समझते हैं और दूसरो के कार्य को उपेक्षा की दृष्टि से देखते है। निस्सदेह आज की सबसे बडी समस्या हमारे लिए अन्न वस्त्र की है 'भूखे भजन न होइ गुपाला। हमे स्वय स्वेच्छापूर्वक अपने साहित्य को ही नही अपने जीवन क्रम को भी युगधर्मानुकुल बना लेना चाहिए। आपने चारो ओर के वातावरण के प्रति सवेदनशील होने मे ही सजीवता है और हमारे देश को सजीव साहित्यिको की जितनी आवश्यकता इस समय है उतने पहले कभी नही थी।"

अन्न वस्त्र की समस्या के हल हो जाने के बाद मानसिक भोजन का प्रश्न आता है। इसका अभि-प्राय यह हर्गिज नही है कि जब तक दस फीसदी अनाज की कमी पूरी न हो जाय तब तक के लिए हम सत-साहित्य के निर्माण का कार्य ही स्थगित कर दे। यह जबरदस्त भूल होगी, दोनो कार्य साथ-साथ चल सकते हैं और चलाये जाने चाहिए। एकामी विचारधारा हमारे राष्ट्रीय जीवन के लिए विघातक ही सिद्ध होगी।

श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ससार प्रसिद्ध पत्रकार है, सरकार ने उन्हें पद्मभूषण, देश ने उन्हें राज्य सभा की सदस्यता, विश्वविद्यालय ने उन्हे डॉक्टर की उपाधि दी या किसी सरकार ने किसी पुरस्कार से सम्मानित किया परन्तु उन्होने अपने तपोनिष्ठ जीवन के 90 वर्षों मे हमारी प्रेरणा के लिए अपनी कथनी और करनी द्वारा जो सदेश दिया है क्या उसका कोई प्रत्युपकार हो सकता है, हर्गिज नही। दादा जी का असख्य लेखको पर जो अयाचित प्रेम बरसता रहा है वह भारतीय साहित्य की एक अमूल्य पाती है, सो अलग।

ज्ञान-गंगा में विनोद-निर्झर

☐ नरेश चन्द्र चतुर्वेदी

श्रद्धेय दादा जी (प० बनारसी दास जी चतुर्वेदी) देश-विदेश मे विख्यात हिन्दी के ऐसे महान् लेखको मे है जो अपनी स्वाधीनता की रक्षा हेतु सब कुछ अर्पित कर देते है तथा उन महापुरुषो मे से हैं जो अपनी महानता का प्रदर्शन नही होने देते। दादा जी अपने व्यवहार मे किसी को भी छोटे होने का अहसास न होने देकर, समानता का स्तर प्रदान करके साथ-साथ चलने का सम्मान देते हैं। मानव मात्र के प्रति उनकी श्रद्धा और प्रेम स्पृहणीय है। व्यक्ति को छोटे-बडे के स्थूल भेद से बाँटने के बजाय वह उसके मानवीय गुणो के प्रशसक एव पारखी है। ससार के अनेक महापुरुषो की भाँति दादा जी मे विनोद-वृत्ति (ह्यूमर) भी गज़ब की है। ज्ञान की गगा मे विनोद के निर्झर प्रवाहित करने की कला मे वह अद्वितीय है। विनोद वृत्ति की सर्वोच्चता को उन्होने स्पर्श किया है। स्वय हँसते हुए दूसरो को हँसाने की प्रवृत्ति कमोबेश बहुत-से सत्पुरुषो मे मिल सकती है किन्तु स्वय पर हँसना और अपने पर दूसरो को हँसने का अवसर प्रदान करने की कला बहुत कम लोगो को आती है। दादा जी इस कला के आचार्य है। स्वय पर व्यग्य करना, दूसरे को व्यग्य करने देना और कभी-कभी स्थिति को हास्यास्पद होने देना असाधारण क्षमता का द्योतक है।

दूसरो के व्यग्य-विनोद को प्रसन्नतापूर्वक झेलने वाले दादा जी दूसरो के सद्गुणो तथा उनके द्वारा किये गये उपकारो की भूरि-भूरि प्रशसा खुलकर करते है। वह परनिन्दा से जितने ही दूर रहते हैं, कृतज्ञता ज्ञापन मे उतने ही सहृदय बन जाते हैं। अच्छे विचार और कामो की चर्चा करने मे वह सदैव और सर्वत्र मुखर रहते हैं। लेकिन किसी के विरुद्ध षड्यन्त्र, दुरभिसन्धि तथा जोड-तोड करके उसे नीचा दिखाने मे उनकी कोई रुचि नही रहती। यद्यपि उन्होने अपने साहित्य, पत्रकारिता तथा समाज जीवन के विस्तृत क्षेत्र मे अनेक व्यक्तियो, विचारो, कार्यों एव कृतियो का समय-समय पर डटकर विरोध किया और उसके परिणामस्वरूप उन्हे वैर-विरोध तथा तीखी आलोचनाओ का शिकार बनना पडा है, परन्तु आज उन कटु प्रसगो की चर्चा भी वह नही करना चाहते। मैंने उनसे निवेदन किया था कि वह अपनी आत्मकथा मे उन ऐतिहासिक व्यक्तियो, कृतियो, विचारो तथा घटनाओ का स्पष्ट रूप से उल्लेख कर दें ताकि लोग तत्कालीन परिस्थिति को समझ सके। उनके द्वारा चलाये गये साहित्यिक वाद-विवाद, घासलेटी साहित्य के विरुद्ध आन्दोलन, हिन्दी-हिन्दुस्तानी, निराला एव उग्र जैसे लेखको की वृत्तियो की आलोचना के प्रसग मार्मिक तो है ही ऐतिहासिक महत्त्व के भी है। परन्तु दादा जी ने उन कटु प्रसगो पर बहुत कम लिखा है। यत्र-तत्र कही चर्चा की भी है तो नाम

और सदर्भ को उद्धृत किये बिना ही की है। उपर्युक्त अवसरो पर दादा जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जो हमले हुए उनकी भी विस्तृत चर्चा उन्होने नही की।

इसमे कोई सन्देह नही कि दादा जी को सामान्य जीवन मे सफलता समझे जाने वाले अनेक अवसर मिले और साधन भी। दादा जी ने सदैव ही कहा और लिखा कि जितने साधन और अवसर उन्हे मिले उनका सदुपयोग वह नही कर सके। परन्तु दादा जी का कथन उनकी विनम्रता का द्योतक है, वास्तविकता नही। सच तो यह है कि जो भी अवसर उन्हे मिले उन्होने सार्वजनिक महत्त्व के कई काम सम्पन्न किये और उन साधनो तथा अवसरो का सदुपयोग किया। मै यहाँ उनके कुछ प्रसगो की चर्चा कर रहा हूँ।

दादा जी ने हिन्दी के स्थान पर गाधी जी की हिन्दुस्तानी का साथ दिया फलस्वरूप कानपुर निवासी हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि स्वर्गीय जगदम्बा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' ने उन पर तीखे व्यग्य करते हुए एक लम्बी कविता लिखकर छपायी थी जिसमे महात्मा गाधी और उनके साबरमती आश्रम को भी लपेट लिया गया था। उसकी कुछ पक्तियाँ देखे

श्रम करने से जन होते न विरत थे।
युवती युवक सब काम मे ही रत थे॥
× × ×
हिन्दी का न हित करे उर्दू के जो हामी हों।
गाधी सेवासघ आरमी के जो कि टामी हों॥

इतना ही नही, हितैषी जी ने दादा जी का सिर अपने डडे से फाड देने की घोषणा भी कर दी थी।

दादा जी ने उग्र और निराला के विरुद्ध जो कुछ लिखा उसके उत्तर मे उग्र ने भी लिखा और निराला ने भी। निराला के विरोध मे लिखने के कारण ही डॉ० रामविलास शर्मा ने चतुर्वेदी जी की खिचाई का कोई भी अवसर नही छोडा। डॉ० शर्मा के 'निराला की साहित्य साधना' और 'भारत मे अग्रेजी राज और मार्क्सवाद' इत्यादि मे चतुर्वेदी जी पर की गयी चोटे देखी जा सकती है।

दादा जी ससद (राज्यसभा) के बारह वर्ष तक सदस्य रहे। परन्तु ससदीय कार्यकाल मे रुचिपूर्वक हिस्सा लेना तो दूर वह ससद मे बहुत कम बैठते थे। अपने सहयोगी साथियो से भी आग्रह किया करते थे कि ससद की नीरस कार्यवाही मे समय बर्बाद न करके अपनी प्रतिभा के अनुसार कार्य करो। वह उन्हें स्वास्थ्य के लिए दोपहर को सोने का अचूक नुस्खा बताते रहते थे। उनकी इस बात को ससद सदस्य कविवर दिनकर ने अपनी एक कविता मे लिख भी दिया था——

कहाँ फँसे हम सब बनारसीदास सदा कहते हैं
जगल छोड कभी योगी क्या शहरो मे रहते है।
अगर आन ही फँसे यहाँ तो समय नही खोओ रे
जैसे मै सोया रहता तुम भी सुख से सोओ रे॥

प० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' यद्यपि दादा जी से उम्र मे छोटे थे परन्तु वह बहुत छूट ले लेते थे, डाँट-फटकार के साथ बीहड मजाक करने से नही चूकते थे। नवीन जी दादा जी के साथ सदैव ही मुक्त मन से बिना किसी प्रकार का सकोच रखे व्यग्य विनोद करते रहते थे और दादा जी एक प्रकार से नवीन जी के

मनोविनोद की भोज्य सामग्री ही बन जाते थे।

कानपुर के प्रसिद्ध शिक्षाविद् श्री हीरालाल खन्ना के अभिनन्दन के अवसर पर साहित्यिकों का भी अच्छा जमाव हो गया था। दादा जी सहित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, आचार्य नरेन्द्र देव, श्रीनारायण चतुर्वेदी इत्यादि उपस्थित थ। नवीन जी ने अपने निवास (स्व० श्री हरिशकर विद्यार्थी के बँगले) पर एकत्रित मडली मे एक दोहा यह कहकर सुनाया कि सियाराम शरण गुप्त ने बनारसीदास जी पर एक दोहा बनाया है।

दोहा सुनकर भोले-भाले, सीधे, सरल, विनयी सियाराम शरण जी परेशान, और यार लोगो मे हँसी का जोरदार ठहाका!

बाबू सम्पूर्णानन्द जी से दादा जी की मित्रता सन् 1915 मे डेली कॉलेज 'इन्दौर मे' जहाँ दोनो महानुभाव अध्यापक थे, हुई थी। बाबू जी बडी गम्भीर प्रकृति के थे। बहुत थोडे-से व्यक्ति ऐसे होगे जिन्होने उन्हे ठहाका मारकर हँसते देखा हो अथवा जिनके साथ मजाक या छेड छाड का सम्बन्ध रहा हो। दादा जी बाबू सम्पूर्णानन्द के ऐसे ही घनिष्ठ मित्र थे जिनसे छेड-छाड करने मे, व्यग्य करने मे बाबू सम्पूर्णानन्द जी भी कोई अवसर नही चूकते थे। सम्पूर्णानन्द जी अपने पत्रो तक मे विनोदपूर्वक दादा जी को सबोधित करते हुए 'श्रीयुत् टिप्पणी जी' अथवा टिप्पणी जी महाराज, लिखते थे। इस टिप्पणी की भी एक कहानी है। चतुर्वेदी जी के शब्दो मे ही देखे

"उन दिनो हमने एक पुस्तक प्रारम्भ की थी, जिसका नाम था 'चतुर्वेदियो की हीनता पर एक दृष्टि'। उस पुस्तक की रूपरेखा मैने एक नोटबुक मे दर्ज कर ली थी। एक दिन अपना क्लास पढा के लौटा तो क्या देखता हूँ कि उक्त नोटबुक मे ऊपर एक कविता लिखी हुई है। पद्य सस्कृत मे था—

वर्षान्ते तु यथा दशा ग्रीष्मादौ हिमराशय ।
चतुर्वेद्याख्या भूदेवा प्रणश्यन्ति कलौ युगे ।।
त्यक्तधर्मा गता दैन्य, कालिन्दीकूलसेविन ।
कच्छवच्चाश्रुतिज्ञास्ते, मल्लकर्म्मविशारदा ।।
वय प्राप्तस्वकन्यानाम्, प्रतिदानकरा खलु ।
छिन्नाभ्रस्य गतिस्तेषाम्, आर्यधर्म्ममहाद्विषाम् ।। (इति भविष्त्खण्डे)

अर्थात जिस प्रकार वर्षा के अन्त मे दश इत्यादि नष्ट हो जाते हैं और गर्मी के प्रारम्भ मे बर्फ, उसी प्रकार चतुर्वेदी नामक ब्राह्मण कलियुग से नष्ट हो जायेंगे। ये लोग अपने धर्म को छोडकर दीनता को प्राप्त हो चुके है, जमना किनारे पडा रहना इनका काम है और वेद के विषय मे इन्हे उतना ही ज्ञान है जितना कछुओ को। कुश्ती लडने मे ये कुशल है। अपनी बडी उम्र की लडकियो की सगाई ये बदले से करते है आर्य-धर्म के महान् द्वेषी इन चतुर्वेदियो की वही गति होगी जो तितर-बितर हो जाने वाले बादलो की होती है। —भविष्यपुराण

"इस कविता से भी बडी दिल्लगी रही। अध्यापक मडली ने इसे खूब पसन्द किया। उन दिनो मैं 'विद्यार्थी' नामक पत्र के लिए कभी-कभी सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिख दिया करता था। एक दिन मुसलमान अध्यापक बन्धु ने पूछा, 'यह क्या कर रहे हो?' मैंने कहा, 'टिप्पणी लिख रहा हूँ।' उसने अन्य अध्यापको से पूछा, 'यह टिप्पणी क्या बला है?' सम्पूर्णानन्द जी ने कहा, 'यह खुद ही टिप्पणी है।' बस उस दिन से

हमारा नाम ही टिप्पणी पड गया। सम्पूर्णानन्द जी बहुत वर्षों तक पत्रो मे इसी शब्द का प्रयोग करते रहे।"

सन् 1952 मे जब चतुर्वेदी जी राज्य सभा के सदस्य बने तो बाबू जी ने उनके अराजकतावादी और क्रोपाटकिन के भक्त होने पर व्यग्य करते हुए लिखा "नर्क मे प्रिंस क्रोपाटकिन की आत्मा के साथ मेरी सहानुभूति है जिनके अनुयायी का ऐसा नैतिक पतन हुआ।"

प० श्रीनारायण चतुर्वेदी दादा जी के समवयस्क अर्थात् कुछ महीने ही छोटे है परन्तु वह दादा जी से व्यग्य करने का कोई भी अवसर नही चूकते। प० श्रीनारायण चतुर्वेदी महान् विद्वान् होने के साथ हिन्दी के श्रेष्ठ हास्य-व्यग्य-लेखक भी हैं। विनोद शर्मा के नाम से उन्होने गहरे व्यग्य किये है। दादा जी के सतत् अभिनन्दन कार्य से खीझकर उन्होने विनोद शर्मा अभिनन्दन ग्रन्थ जैसी उच्चकोटि की व्यग्य कृति लिखकर प्रकाशित करायी थी। दादा जी की सादगी, सहज, सरल, सामान्यजनो से घुलने-मिलने की आदत के फल-स्वरूप घटित एक घटना पर उन्होने बडा ज़ोरदार विनोदात्मक लेख लिख दिया जिसमे मूँगफली बेचने वाली एक स्त्री ने दादा जी के मूँगफली का भाव पूछने पर उन्हे मूँगफली बेचने वाला समझकर बातचीत की।

दादा जी स्वय के विषय मे ख़ुद भी व्यग्य-विनोद करने से नहीं चूकते। ओरछा नरेश वीरसिह देव के यहाँ होली के हुडदग पर उन्होने एक छन्द लिखा जिसकी अतिम पक्ति थी

'डूब गयो चौबे रस रग के चबैच्चा मे'

और जब आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हे डी० लिट् की मानद उपाधि से सम्मानित किया तो दादा जी ने ख़ुद ही लिखा—

बडे-बडेन की अकल हू चरन लगी है घास।
फोकट मे डी० लिट्० भये श्री बनारसीदास॥

कभी-कभी वह ऐसी बाते भी मजाक मे कर देते हैं जिनसे अपरिचित लोगो को गलतफहमी हो जाना स्वाभाविक है। ऐसा ही एक मज़ाक उन्होने फीरोज़ाबाद के हिन्दी लेखक श्री रतनलाल बसल से कर दिया। बसल जी ने देर रात घर लौटते हुए दादा जी से पूछा, "दादा जी इतनी रात को आप कहाँ से आ रहे है?" दादा जी ने उत्तर मे कहा, "हमे ऐसी बाते पसन्द नही। किसी विधुर आदमी से यह पूछना कि रात्रि के समय वह कहाँ से आ रहा है, भला कोई शिष्टता की बात है।" कहना न होगा कि गम्भीरता से किये गये इस मज़ाक के अर्थ का अनर्थ भी हुआ।

दादा जी चाहे पत्र लिखें अथवा बातचीत करे सर्वत्र उनके विचार सहज अनुभूति से भरे एव मार्मिक होते हैं। विनोद प्रसगो की चर्चा करते हुए इतिहास के पृष्ठ जोडते जाते हे। दादा जी के जीवन का क्षितिज इतना विस्तृत और बहुरगी है कि वह जो भी बोलते-लिखते है, वह सहज अनुभूति मे ओत-प्रोत तथा मार्मिक होता है।

अपने हाल के मुझे लिखे लम्बे पत्र मे उनकी कुछ पक्तियाँ उदाहरण स्वरूप देखे

"दोपहर को दो या ढाई घटे विश्राम करने की मेरी आदत तीन, अगस्त 1920 से ही पडी हुई थी। नवीन जी ने एक कविता की थी

ससद मे पशु बहुत है सिह भेडिया स्यार
चौबे जी तिन मे लसत अजगर के अवतार।

"पूज्य दद्दा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से भी अच्छा मज़ाक रहता था। मै अपने हस्ताक्षर

अंग्रेजी मे 'बी० दास' किया करता था। दद्दा कहते थे कि तुम किस 'बी०' के दास हो, यह तो बताओ। एक बार मैंने कुछ झुंझलाहट के साथ दद्दा से कहा, 'मुझमे सभी मजाक करते है। गरीब की जोरू सब की भाभी।' उस पर दद्दा बोले, 'यही तो हम जानना चाहते हैं कि तुम किस गरीब की जोरू हो।'

चतुर्वेदी जी उपदेश नही देते परन्तु सभी को आनन्दपूर्वक जीवन जीने की बात कहते रहते हैं। लगभग 35 वर्ष पूर्व मुझे कुण्डेश्वर मे उन्होने प्रकृति के दर्शन कराये थे—वृक्ष, नदियो, झरने, पशु-पक्षी और गहन वन कान्तार के दर्शन लोक—साहित्य, लोक सस्कृति और जनपदीय आन्दोलन का महत्त्व समझाया था। कुछ वर्ष बाद राज्यसभा का सदस्य बन जाने पर दिल्ली मे जब मैं उनके पास ठहरा तो वह दोपहर को सोने, कुकर का पकाया भोजन करने तथा जवाकुसुम तेल से सिर की मालिश कराने का महत्त्व समझाते थे।

मानव-चरित्र का अध्ययन वह अपना व्यसन मानते हैं। यह कार्य साधारण नही है। खुली आँख, मुक्त मन और सहज भाव से जीवन को जाचना-परखना कोई मामूली कार्य नही है। परन्तु इस गैर मामूली काम को दादा जी ने सफलतापूर्वक किया है। उनके रेखाचित्र, ससँमरण, लेखो और पत्रो मे इस कठिन साधना के दर्शन कदम-कदम पर किये जा सकते हैं। दादा जी ने अपने जीवन मे महापुरुषो की खोज तो की है परन्तु सामान्य पुरुषो की भी कही उपेक्षा नही की। जो विशिष्टता उनमे देखी उसके प्रति श्रद्धा से सिर झुकाने मे उन्होने कभी मुँह नही मोडा और यही कारण है कि जहाँ देश विदेश के महापुरुषो पर उनकी कलम चली है वही रामधन चपरासी, देवीदयाल गुप्त, लल्लू कब लौटेंगे, अन्धी चमारिन जैसे चरित्र भी उन्होने लिखे है।

प० बनारसीदास चतुर्वेदी की इस सहज भावना ने ही हिन्दी के महानतम विद्वानो, लेखको से उनके जीवन की ऐसी अन्तरग सामग्री भी निकलवा ली है जो इतिहास की अन्यतम सामग्री बन सकी। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि महापुरुषो के जीवन की बडी ही प्राणवान और प्रामाणिक सामग्री उन्होने हिन्दी जगत् को उपलब्ध करायी है।

अपनी छोटी से छोटी कमी को पर्वत की ऊँची चोटी पर खडे होकर घोषित करना और दूसरे के छोटे से छोटे उपकार तथा गुण का सहस्र मुख होकर बखान करना तो मानव क्या देवो के लिए भी दुलभ होता है। गोस्वामी तुलसीदास तो मानव जीवन और चरित्र के अन्यतम चितेरे थे। उन्होने लिखा था

निज कवित्त केहि लाग न नीका,
सरल होउ अथवा अति फीका।
परन्तु जे पर भनिति सुनत हरषाही,
ते वर पुरुष जगत बहु नाही।

मुझे सदैव ऐसा लगता रहा है कि जगत् मे जो थोडे-से वर पुरुष दूसरे की भनिति पर हर्षपूर्वक कुछ कहते हैं उनमे से एक को मै भी पहचानता हूँ और उसी महापुरुष का नाम है—प० बनारसीदास चतुर्वेदी।

'महापुरुषो की खोज मे' जीवन अर्पित करने वाले इस सत्पुरुष को यदि श्रद्धा और सम्मान मिला है तो व्यग्य, विरोध, गालियाँ और कटूक्तियाँ भी कम नही मिली है। मैं समझता हूँ कि सामान्य मे विशिष्टता की खोज, व्यक्ति के अन्तर मे व्याप्त सर्वोत्तम की पूजा, निकृष्टता पर उत्कृष्टता की विजय—बस यही तो है प० बनारसीदास चतुर्वेदी की जीवन-यात्रा।

परिशिष्ट . ख

महर्षि दयानन्द शताब्दी पर मेरा प्रस्ताव

फरवरी सन् 1925 मे महर्षि दयानन्द की जन्म-शताब्दी के अवसर पर मथुरा मे निम्नलिखित प्रस्ताव मैंने उपस्थित किया था जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ था

(क) प्रत्येक आर्य सामाजिक शिक्षा-सम्बन्धी सस्था यथाशक्ति एक अथवा एकाधिक प्रवासी विद्यार्थियो को नि शुल्क भरती करने और उनका पूर्ण व्यय सहन करने की आयोजना करे।

(ख) उपनिवेशो मे शिक्षा प्रचार अथवा धर्म-प्रचार के लिए एक कार्यक्रम तैयार करने के लिए एक कमेटी नियत की जाय, जिसमे विशेषत औपनिवेशिक भारतीयो के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हो।

(ग) विदेशो मे अब तक आर्यसमाज द्वारा जो-जो कार्य हुए हैं उनका पूर्ण विवरण शीघ्र ही प्रकाशित किया जाय।

(घ) जो आर्य सामाजिक सस्थाएँ अथवा पत्र उपनिवेशो मे धर्म-प्रचार कर रहे है, उन्हे समुचित सहायता दी जाय।

(च) भारतवर्ष का प्रत्येक आर्य समाज उपनिवेशो से लौटे हुए प्रवासी भाइयो को अपने-अपने समाज मे स्थान दिलाने के लिए भरपूर प्रयत्न करे।

यह प्रस्ताव 58 वर्ष पहले रखा गया था। इस बीच मे मेरे विचारो मे परिवर्तन हो गया है और मैं सर्व-धर्म-समन्वय के पक्ष मे हूँ। वैसे वर्तमान समाज व्यवस्था मे आमूल परिवर्तन ही हमारा युग-धर्म है।

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी : जीवन-क्रम

जन्म तिथि 24 दिसम्बर, सन् 1892 ई०, तदनुसार तिथि पौष शुक्ल 2 सम्वत 1949 वि०।

जन्म स्थान फीरोजाबाद, जिला आगरा, उत्तर प्रदेश।

पिता जी श्री गणेशीलाल चौबे, मुदर्रिस प्राइमरी स्कूल, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, आगरा।

शिक्षा इण्टरमीडिएट, सन् 1914 ई०

अध्यापन गवर्नमेंट हाई स्कूल फर्रुखाबाद मे—सन 1913-14 ई० (सहायक अध्यापक के रूप मे)

हिन्दी अध्यापक राजकुमार कॉलेज, इन्दौर—सन् 1914 से 1920 तक।

शान्ति-निकेतन मे दीनबन्धु ऐण्ड्रूज के साथ—1920 से 1921 तक।

साबरमती आश्रम मे महात्मा गाँधी के सान्निध्य मे—सन् 1921 से 1925 तक।

पूर्व अफ्रीका की यात्रा—सन् 1925 ई० मे।

स्वतन्त्र पत्रकारिता के प्रयोग—सन् 1925 से 1926 ई० तक।

इस बीच कुछ समय 'आर्य मित्र' मे सहायक सम्पादक, पण्डित हरिशकर शर्मा, प्रधान सम्पादक के अधीन कुछ दिन (21 दिन) दैनिक 'अभ्युदय' का सम्पादन।

विशाल भारत का सम्पादन सन् 1928 से 1937 तक।

टीकमगढ़ मे निवास तथा 'मधुकर' और 'विध्यवाणी' का सम्पादन, सन 1936 से 1952 तक।

राज्यसभा मे सदस्य सन् 1952 से 1964 ई० तक।

रूस की यात्राएँ सन् 1959 तथा 1966 मे।

सार्वजनिक सेवाएँ

1 अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सघ के प्रधान (मथुरा अधिवेशन)
2 अखिल भारतीय श्रमजीवी पत्रकार सघ के प्रधान (मद्रास मे)
3 ब्रज साहित्य मण्डल की स्थापना
4 जनपदीय कार्य तथा अन्तर-जनपदीय परिषद का सगठन।

साहित्यिक आन्दोलन

1 अश्लील साहित्य के विरुद्ध 'घासलेट साहित्य विरोधी आन्दोलन'
2 'कस्मै देवाय' आन्दोलन।

कार्य-क्षेत्र

1 प्रवासी भारतवासियो की सेवा
2 शहीदो का श्राद्ध
3 साहित्य सेवियो की कीर्ति-रक्षा

4. तथाकथित छूटभइए साहित्यकारों को प्रोत्साहन
5 नगर फीरोजाबाद की स्वच्छता तथा सफाई के लिए प्रयत्नशील।

साहित्यिक सामग्री की सुरक्षा

1. राष्ट्रीय अभिलेखागार, जनपथ, नयी दिल्ली द्वारा
2. श्री के॰ एम॰ मुशी विद्यापीठ, आगरा मे चतुर्वेदी व्रज केन्द्र द्वारा।

ग्रन्थ-रचना तथा विशेषांक सम्पादन

1 फीजी द्वीप मे मेरे इक्कीस वर्ष (श्री तोताराम के नाम से)
2 प्रवासी भारतवासी
3 फीजी की समस्या
4 फ़ीजी मे भारतीय
5 रेखा-चित्र
6 सस्मरण
7 हमारे आराध्य
8 विश्व की विभूतियाँ
9 प्रिस क्रोपाटकिन का आत्म-चरित
10 भारत-भक्त ऐण्ड्रूज
11 दीनबन्धु ऐण्ड्रूज मिस मार्जोरी साइक्स के साथ
12 चाँद, विशाल भारत, मर्यादा तथा नवचेतन (गुजराती) के प्रवासी अक
14 **जनपदीय पत्रिकाएँ** ज्योत्गना (डी॰ ए॰ वी॰), अमृत (पी॰डी॰ जैन) तथा इस्लामिया आदि कॉलेजो की पत्रिकाओ के विशेषाको का सम्पादन।
15 **मुख्य व्यसन** पत्र-व्यवहार।

●●●